ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक १९

कइराय-सयंभूएव-किउ

रिट्ठणेमिचरिउ

(कविराज स्वयंभूदेव कृत अरिष्टनेमिचरित)

यादव-काण्ड

सम्पादन-अनुवाद
(स्व०) डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

भारतीय ज्ञानपीठ

वीर नि० सं० २५१२ विक्रम सं० २०४२ सन् १९८५
प्रथम संस्करण मूल्य ४०.००

स्व पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति मे
स्व साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित

एव

उनकी धर्मपत्नी स्व श्रीमती रमा जैन द्वारा सपोषित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि
प्राचीन भाषाओ के उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक,
ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यिक का अनुसन्धानपूर्ण
सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद
आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारो की
सूचियाँ, शिलालेख-सग्रह, कला एव स्थापत्य,
विशिष्ट विद्वानो के अध्ययन-ग्रन्थ और
लोकहितकारी जैन साहित्य-ग्रन्थ भी
इसी ग्रन्थमाला मे प्रकाशित हो
रहे हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक
सिद्धान्ताचार्य प कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ ज्योतिप्रसाद जैन

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-११०००३
मुद्रक
रूबी प्रिंटिंग सर्विस, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

दी टाइम्स रिसर्च फाउण्डेशन, बम्बई के सहयोग से सम्पादित-प्रकाशित

स्थापना फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि २४७०, विक्रम स २०००, १८ फरवरी १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ संस्थापना 1944

मूल प्रेरणा

दिवगता श्रीमती मूर्तिदेवी जी
मातुश्री साहू श्रेयास प्रसाद जैन

एव

स्व. साहू शान्ति प्रसाद जैन
संस्थापक, भारतीय ज्ञानपीठ

Jnanpith Moortidevi Granthamala *Apabhramsha Grantha No 19*

KAVIRAJA SVAYAMBHUDEVA'S

RIṬṬHAṆEMI-CARIU

(ARISHTANEMI-CHARITA)

YADAVAKANDA

Edited and Translated
by
(Late) Dr Devendra Kumar Jain, Indore

BHARATIYA JNANPITH

Vira Samvat 2512 1985 A D
First Edition, Price Rs. 40/-

BHARATIYA JNANPITH
MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA
FOUNDED BY

LATE SAHU SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE MOTHER SMT MOORTIDEVI

AND

PROMOTED BY HIS BENEVOLENT WIFE

LATE SRIMATI RAMA JAIN

IN THIS GRANTHAMALA CRITICALLY EDITED JAIN AGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRAMSHA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC, ARE BEING PUBLISHED IN THESE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES
ALSO
BEING PUBLISHED ARE
ATALOGUES OF JAINA-BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES ON ART AND ARCHITECTURE BY COMPETENT SCHOLARS, AND ALSO POPULAR JAIN LITERATURE

•

General Editors
Siddhantacharya Pt Kailash Chandra Shastri
Dr Jyoti Prasad Jain

•

Published by
Bharatiya Jnanpith
Head Office 18, Institutional Area, Lodhi Road, New Delhi-110003
Printed at Rubi Printing Service, Shahadra, Delhi-32

•

Published with the help of
THE TIMES RESEARCH FOUNDATION, BOMBAY

Founded on Phalguna Krishna 9, Vikrama Sam 2000 18th Feb., 1944

स्व० मातृश्री रामप्यारी वाई की पावन स्मृति को
जिनके जीवन से सुख और दु ख
स्वाभिमान और कर्मठता आँखमिचौनी
करते रहे, जीवन के अभावो को जिन्होंने
अपनी श्रमनिष्ठ ममता से पाटा
और जो १९७१ को
रामनवमी की ढलती दुपहरी मे
राम को प्यारी हो गयीं।

—देवेन्द्रकुमार

प्रधान सम्पादकीय

स्वयम्भूदेव (आठवी शताब्दी) अविवाद रूप से अपभ्रश के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं। उनकी महत्ता को स्वीकार करते हुए अपभ्रश के ही परवर्ती कवि पुष्पदन्त ने उन्हे व्यास, भास, कालिदास, भारवि, बाण आदि प्रमुख कवियो की श्रेणी मे विराजमान कर दिया है। भारतीय सस्कृति और साहित्य के जाने माने समीक्षक राहुल साकृत्यायन ने अपभ्रश भाषा के काव्यो को आदिकालीन हिन्दी काव्य के अन्तर्गत स्थान देते हुए कहा है—"हमारे इसी युग मे नही, हिन्दी कविता के पाँचो युगो के जितने कवियो को हमने यहाँ सगृहीत किया है, यह नि सकोच कहा जा सकता है कि उनमे स्वयभू सबसे बडे कवि थे। वस्तुत वे भारत के एक दर्जन अमर कवियो मे से एक थे।" वे 'महाकवि', 'कविराज', 'कविराज-चक्रवर्ती' आदि अनेक उपाधियो से सम्मानित थे।

स्वयभूदेव ने अपभ्रश मे 'पउमचरिउ' लिखकर जहाँ रामकथापरम्परा को समृद्ध बनाया है वही 'रिट्ठणेमिचरिउ' प्रबन्धकाव्य लिखकर कृष्ण-काव्य की परम्परा को आगे बढाया है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि प्रबन्धकाव्य के क्षेत्र मे स्वयभू अपभ्रश के आदि कवि हैं। वह अपभ्रश के रामकथात्मक काव्य के यदि 'वाल्मीकि' हैं तो कृष्ण काव्य के 'व्यास' हैं। अपभ्रश का कोई भी परवर्ती कवि ऐसा नही है जो स्वयभू से प्रभावित न हुआ हो।

स्वयभू ने अपनी रचनाओ मे अपने प्रदेश या जन्मस्थान का स्पष्ट उल्लेख नही किया है। स्व० डॉ० हीरालाल जैन का मत था कि हरिवशपुराण के कर्ता जिनसेन तथा आदिपुराण के कर्ता जिनसेन की तरह कवि स्वयभू भी दक्षिण प्रदेश के निवासी रहे होंगे क्योकि उन्होंने अपने काव्यो मे धनजय, धवलइया और वन्दइया आदि जिन आश्रयदाताओ का उल्लेख किया है वे नाम से दक्षिणात्य प्रतीत होते हैं। स्व० प० नाथूराम प्रेमी का विचार था कि स्वयभू कवि पुष्पदन्त की तरह ही बरार की तरफ के रहे होंगे और वहाँ से वे राष्ट्रकूट की राजधानी मे पहुँचे होंगे। जो भी हो, स्वयभू की कृतियो मे ऐसे अनेक अन्तरग साक्ष्य मिलते हैं जिससे उन्हे महाराष्ट्र या गोदावरी के निकट के किसी प्रदेश का माना जा सकता है।

स्वयभू की प्रस्तुत कृति 'रिट्ठणेमिचरिउ' का दूसरा नाम 'हरिवशपुराण' भी है। अठारह हजार श्लोक प्रमाण यह महाकाव्य ११२ सन्धियो (सर्गों) मे पूर्ण होता है। इसमे तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र के साथ श्रीकृष्ण और पाण्डवो की कथा का विस्तार से वर्णन है। कथा का आधार सामान्यत 'महाभारत' और 'हरिवशपुराण' रहा है लेकिन समसामयिक, राजनैतिक और सामाजिक चित्राकन हेतु घटनाओ मे यथास्थान अनेक परिवर्तन भी किये हैं। उससे प्रस्तुत काव्य मे मौलिकता आ गयी है। काव्य मे घटना बाहुल्य तो है ही, काव्य का प्राचुर्य भी जमकर देखने को मिलता है। इसमे कृष्ण-जन्म, कृष्ण की बाललीलाएँ, कृष्ण-विवाहकथा, प्रद्युम्न की जन्म-कथा और तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र का विस्तार से वर्णन किया गया है। साथ ही, कौरवो एव पाण्डवो के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा, उनका परस्पर वैमनस्य, युधिष्ठिर द्वारा द्यूत-

क्रीडा और उसमे सब कुछ हार जाना तथा पाण्डवो को बारह वर्ष का वनवास आदि अनेक प्रसगो का विस्तार से चित्रण है। कौरवो और पाण्डवो के युद्ध का वर्णन बडा सजीव बन पडा है।

कवि ने पद्धडिया छन्द के रूप में ऐसे अनेक पद्यो की रचना की है जिनसे न केवल कवि की जिनधर्म के प्रति भक्ति प्रकट होती है अपितु जिननाम के स्मरण की महिमा का भी पता चलता है। एक पद्य मे वे लिखते हैं कि जिनदेव के नाम के स्मरण से मद गल जाता है, अभिमान चूर हो जाता है। सर्प काटता नही। जाज्वल्यमान अग्नि भी शान्त हो जाती है। समुद्र भी स्थान दे देता है। अटवी मे जगली व्याघ्र आदि प्राणी भी नही सताते। सभी सासारिक बन्धन टूट जाते हैं और क्षण भर मे ही जीव मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जिस जिन के नाम का इतना माहात्म्य है वह जिन कैसा है, उसे कैसे पहचाना जाए आदि अनेक प्रश्नो के समाधान हेतु कवि ने एक स्थान पर उल्लेख किया है कि जो देव न रुष्ट होते हैं और न द्वेष करते हैं और जो न दया भी करते वे जिन हैं, जिनवर हैं।

'रिट्ठणेमिचरिउ' का सम्पूर्ण कथानक तीन काण्डो मे विभाजित है—यादव, कुरु और युद्धकाण्ड। प्रस्तुत कृति की कथावस्तु (तेरह सन्धियो में निवद्ध) यादवकाण्ड तक सीमित है। ग्रन्थ के सम्पादक एव अनुवादक डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन के आकस्मिक निधन के कारण यह कार्य एकाएक बीच मे रुक गया। इसके शेष भाग के शीघ्र प्रकाशन के लिए भारतीय ज्ञानपीठ प्रयत्नशील है।

१६ दिसम्बर, १९८५ —कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्राक्कथन

'रिट्ठणेमिचरिउ' (अरिष्टनेमिचरित) महाकवि स्वयम् का दूसरा अपभ्रश काव्यग्रन्थ है। सस्कृत मे इसका नाम 'हरिवशपुराण' है । इसका मूल और मुख्य कथानक महाभारत के कथानक के समानान्तर है जिसमे घटनाओ, पात्रो, चरित्रो और प्रसगो मे उल्लेखनीय साम्य-वैषम्य है। कवि के पहले काव्य-ग्रन्थ 'पउमचरिउ' (पद्मचरित) के सम्पादन का श्रेय डॉ० एच. सी भायाणी को है । १९५४ मे मैंने उसका हिन्दी अनुवाद किया था, जो कई उलझनो को पारकर, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पाँच खण्डो मे प्रकाशित हुआ है ।

'पउमचरिउ' की तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' स्वयभू की महत्त्वपूर्ण कृति तो है ही, साथ ही वह भारतीय कृष्ण-काव्यधारा की भी महत्त्वपूर्ण काव्यरचना है—ऐसी रचना जो कृष्ण काव्य-परम्परा के ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अनिवार्य है। पता नही, अभी तक किसी ने इतने महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन की दिशा मे पहल क्यो नही की। अवश्य ही, जर्मन विद्वान् डॉ० लुडविग आल्सडोर्फ ने पुष्पदन्त के महापुराण के अन्तर्गत उत्तरपुराण के एक खण्ड का (जो ८१ से ९२वी सधि तक है और जिसमे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की तीर्थंकर-प्रकृति के बन्ध से लेकर उनके निर्वाणगमन तक का चरित आता है, उसमे कृष्ण का चरित भी है) सम्पादन किया जो जर्मनी मे ही प्रकाशित हुआ। लेकिन 'महापुराण' स्वयभू के बाद की रचना है और उसके रचयिता अपभ्रश के महाकवि पुष्पदन्त हैं। उसकी तुलना मे 'रिट्ठ-णेमिचरिउ' मे कथा का विस्तार है। फिर भी, इसका अभी तक प्रकाशन सभव नही हो सका।

'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रस्तुत सस्करण उपलब्ध तीन प्रतियो के आधार पर तैयार किया गया है। इसमे पहली प्रति जयपुर से डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के सौजन्य से प्राप्त हुई। यह प्रति शेष दो प्रतियो की तुलना मे प्राचीन और कलात्मक है। शास्त्राकार पन्नो मे लिखित है। अक्षर मोटे हैं और प्रत्येक पृष्ठ के बीचो-बीच कुछ स्थान खाली छोडा गया है। इसमे कुल ५०८ पन्ने हैं यानी १०१६ पृष्ठ । पुरानी होने से पन्ने जीर्ण-शीर्ण हैं। कही-कही पक्तियाँ की पक्तियाँ कट गयी हैं, बीच मे वाक्य या शब्द गायब हैं। उनमे पूर्वापर सम्बन्ध बैठाना बहुत कठिन काम है। सुविधा के लिए इस प्रति को हम 'जयपुर' से प्राप्त होने के कारण 'ज' प्रति कहेगे।

शेष दोनो पाण्डुलिपियाँ स्व० ऐलक पन्नालाल सरस्वती भण्डार की ब्यावर शाखा से उपलब्ध हुई। 'जयपुर' प्रति की तरह इन प्रतियो की उपलब्धि की कहानी मनोरजक और समयसाध्य सिद्ध हुई जिसका परिचय यहाँ देना सभव नही है। बहरहाल यही बताना पर्याप्त है कि इन पाण्डुलिपियो के कारण आलोच्य ग्रन्थ के सम्पादन को वैज्ञानिक, प्रामाणिक और अधिक-से-अधिक शुद्ध बनाना सम्भव हो सका। सच तो यह है कि यदि ये पाण्डुलिपियाँ नही

मिलती, तो शायद 'रिट्ठणेमिचरिउ' का सम्पादन, प्रकाशन सभव ही नही होता। दोनो पाण्डुलिपियाँ किन्ही दो प्राचीन पाण्डुलिपियो की प्रतिलिपियाँ हैं जो बहुत अधिक प्राचीन नही हैं। लगता है सरस्वती-भवन के व्यवस्थापको को अपने भडार मे 'रिट्ठणेमिचरिउ' जैसे महाकाव्य का अभाव खटका होगा और उन्होंने किन्ही प्राचीन पाण्डुलिपियो के आधार पर उक्त प्रतियाँ तैयार करायी होगी। दोनो प्रतियो के प्रारम्भिक मिलान से यह स्पष्ट हो जाता है, कि ये दोनो भिन्न-भिन्न पाण्डुलिपियो से प्रतिलिपि की गई हैं। लिपिकार भी अलग-अलग हैं। दोनो अपभ्रशभाषा की रचना-प्रक्रिया से अपरिचित हैं। अत प्रतिलेखन मे अशुद्धियाँ और भूलें होना स्वाभाविक है। परन्तु इससे एक लाभ यह हुआ कि कम-से-कम पाठ-सशोधन और मूल-पाठ की प्रामाणिकता की जाँच करने मे पर्याप्त सहायता मिली। प्रस्तुत यादवकाण्ड का सम्पादन करते समय मुझे दृढ विश्वास हो गया है कि ब्यावर वाली दोनो प्रतियो मे 'अ' प्रति का आधार 'ज' प्रति है। अभी तक मुझे तीनो स्थानो से सम्पूर्ण ग्रन्थ का आधा भाग ही सम्पादन के लिए मिला है। सम्पादन कर इने लौटाने के बाद दूसरा आधा भाग मिलेगा, ऐसा वचन दिया गया। अत मैं यह कहने की स्थिति मे नही हूँ कि ब्यावर की प्रति का आधार 'ज' प्रति ही है। परन्तु यह निश्चित है कि वह जिस भी प्रति के आधार पर तैयार की गई हो, 'ज' प्रति के अधिक निकट है। पाठको को यह तथ्य पाठान्तरो के मिलान से स्वत स्पष्ट हो जाएगा जहाँ तक 'ब' प्रति के आधार का सम्बन्ध है, वह निश्चित रूप से 'ज' प्रति से भिन्न है। इस पकार, मुख्यत तीन पाण्डुलिपियो के स्थान पर दो ही पाण्डुलिपियाँ माननी चाहिए। ऐसा है भी। परन्तु कभी-कभी ब्यावर की 'अ' प्रति के कुछ पाठ, वर्तनी आदि बातें 'ज' प्रति से भिन्न हैं और ब्यावर की 'ब' प्रति से मिलती हैं। अत सम्पादन मे उसके महत्त्व को भी कम नहीं किया जा सकता, खासकर अपभ्रश जैसी लचीली भाषा मे लिखित रचना के सम्पादन में।

महाकवि स्वयभू के इस बृहद् ग्रन्थ 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे ११२ सर्ग हैं। इसमें तीन काण्ड हैं—यादव, कुरु और युद्ध। यादवकाण्ड में १३, कुरु में १६ और युद्ध में ६० सर्ग है। सर्ग की यह गणना युद्धकाण्ड के अन्त में अकित है। यह भी बताया गया है कि प्रत्येक काण्ड कब लिखा गया और उसकी रचना मे कितना समय लगा। प्रस्तुत पुस्तक मात्र 'यादव-काण्ड' से सम्बन्धित है (शेष दोनो खण्ड अगले भागो मे क्रमश प्रकाशित होगे)। यादव-काण्ड इस रचना का सबसे पहला और छोटा है।

आलोच्य सस्करण 'ज' प्रति को आधार मानकर चला है, क्योकि वह अपेक्षाकृत प्राचीन है, वह पहले प्राप्त हुई है, तथा दूसरी (ब्यावर) प्रति भी उससे मिलती-जुलती है। 'ज' प्रति के पाठो को जहाँ कथ्य सदर्भ और व्याकरण की दृष्टि से उपयुक्त नहीं समझा गया, वहाँ दूसरी प्रतियो के पाठो को मूल मे रखते हुए, अन्य प्रतियो के पाठ नीचे फुटनोट मे दे दिये गये हैं तथा प्रतियो का उल्लेख भी कर दिया गया है। पाण्डुलिपियो के विषय मे निम्नलिखित सकेतो का उपयोग किया गया है—

'ज'—जयपुर प्रति।

'अ'—ब्यावर की प्रति (जो जयपुर की प्रति से मिलती है।)

'ब'—प्रति (जिसका आधार 'ज' प्रति से भिन्न कोई अन्य प्रति है)।

इसमे सन्देह नही है कि आलोच्य साहित्य का विपुल भण्डार है। है पर एक ऐसे अल्पसख्यक समाज के सरक्षण मे जो मुख्यत व्यवसाय से सम्बद्ध रहा है। फिर भी

उसने तीर्थंकरो की वाणी को (चाहे वह किसी भी भाषा मे हो) आध्यात्मिक मूल्यो की अमूल्य धरोहर के रूप मे सुरक्षित रखना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझा। सयोग से उनके पास ऐसे विद्वान् नही थे जो बृहत्तर भारतीय भाषा और साहित्य के सदर्भ मे उसका वस्तुनिष्ठ अध्ययन करते और बताते कि आलोच्य भाषा और साहित्य केवल साम्प्रदायिक साहित्य नही है, बल्कि देश की मुख्यधारा से जुडा हुआ साहित्य है। वह एक ऐसी भाषा मे है जहाँ आर्य-भाषा एक से अनेक बनने की प्रसववेदना से व्याकुल हो उठी थी, राजनैतिक सत्ता के बिखराव और भौगोलिक इकाइयो के ध्रुवीकरण के कारण जनमानस और जनव्यवहार मे अनेक भाषाएँ ढल रही थी। इस प्रक्रिया के नमूने इस भाषा मे सुरक्षित हैं। वैसे भाषा-परिवर्तन के बीज उसकी उत्पादन-प्रक्रिया मे ही रहते हैं, तभी भाष्यकार पतजलि ने कहा था "एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रशा" (एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रश होते हैं)। परिवर्तन की यह प्रवृत्ति आलोच्यकाल मे भी सक्रिय थी। इतना ही नही, भाष्यकार के समय जो परिवर्तन एक शब्द को अनेक शब्दो मे ढाल रहा था, आगे चलकर उसने एक से अनेक भाषाओ को मूर्त रूप दे दिया। भाषा सम्बन्धी परिवर्तन की इस प्रक्रिया के नमूने जिस भाषा मे सुरक्षित हैं वह अपभ्रश है और जिन्होने उसे सुरक्षित रखा, वे हैं जैन कवि। वे कोई भी जैन हो, दिगम्बर या श्वेताम्बर अथवा उत्तर भारतीय या दक्षिण भारतीय, उन्होने जहाँ स्थानीय बोलियो के साहित्य को सुरक्षित रखा, वही दूसरी ओर मुख्यधारा की भाषा के साहित्य को भी अगीकार कर विपुल साहित्य रचा। यह सत्य है कि नदी से नदी नही निकलती, पर नहर तो निकाली जा सकती है। लेकिन आर्यभाषा एक ऐसी नदी है जिससे कई नदियाँ निकली और वह उन्हे प्राण ही नही देती,आकार भी देती है। इस देश मे ऐसे भी लोग रहे हैं जो भाषारूपी मुख्य नदी के साथ उसकी धाराओ के साहित्य को भी बिना किसी लौकिक स्वार्थ के सुरक्षित रखते रहे हैं। ऐसे लोगो मे जैन भी हैं। जैन एक सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय का मूल अर्थ है, जो सम्यक् प्रकार (भली भाँति) प्रदान करे। किसी आध्यात्मिक सद्-विचार को व्यवहार की दृष्टि से युक्तियुक्त बनाकर आचरण मे ढाल-कर सगठित होनेवाला मानव-समाज सम्प्रदाय कहलाता है। मनुष्य सामूहिक प्राणी है, इसलिए उसमें समूह होंगे ही। अपनी स्थिति, सामाजिक रीति नीति और धार्मिक मान्यताओ के अनुसार समूह बनाने और तोडने की स्वतन्त्रता उसे है। बनाने और मिटाने की यह प्रक्रिया सहज है, और इसी मे से व्यापक या बृहत्तर सस्कृति का विकास होता है। अत सम्प्रदाय मे रहना बुरा नही है, साम्प्रदायिक होना बुरा है। इससे सिद्ध है कि अपभ्रश जैनो की ही भाषा नही थी। यह कहना भी गलत है कि सस्कृत ब्राह्मणो की ही भाषा थी या पालि बौद्धो की। प्राकृत भी किसी एक सम्प्रदाय की भाषा नही थी। भाषाएँ सम्प्रदायो की नही, जनता की होती हैं। प्रारम्भ मे ब्राह्मण ब्रह्मविद्या के अगुआ थे। वे विचारो की स्थिरता के साथ, भाषा की स्थिरता के पक्ष मे थे। लेकिन विचार भी आगे बढ़ना है और उसे अभिव्यक्ति देनेवाली भाषा भी आगे बढती है। उसके आधार पर मुख्यधारा से जुडे रहकर नये समूह बनते हैं, साहित्य बनता है, उसे सुरक्षित रखने की व्यवस्था की जाती है, जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यह श्रेय जैन समाज को है। उसने सस्कृत के साथ प्राकृत, अपभ्रश और परवर्ती प्रान्तीय भाषाओ के सृजन को न केवल प्रेरणा देकर महत्त्व प्रदान किया, प्रत्युत उसे सुरक्षित भी रखा।

बृहत्तर भारतीय सस्कृति और उसके गतिशील मूल्यो का समग्रतर अध्ययन उक्त तीनो भाषाओ के साहित्य के अध्ययन के बिना सभव नही है। यदि नवी और दसवी सदी मे स्वयभू

और पुष्पदन्त अपने समय की काव्य भाषा में नही लिखते, तो सम्भवत 'पृथ्वीराज रासो', 'सूरसागर' और 'रामचरितमानस' का सृजन लोकभाषाओ मे सभव नही होता। 'नानापुराण-निगमागम' के वैचारिक उच्च शिखरो को जब तुलसी की अनुभूति छूती है और उससे उनकी भावधारा प्रवाहित होती है, तो वह 'देशी भाषा' मे निवद्ध होती है। इसी देशी-अभिव्यक्ति के कारण ही तुलसी जनमन को छू सके, उसके अपने वन गये। श्री वल्लभाचार्य की प्रेरणा से 'श्रीमद्भागवत' की ज्ञानमूलक भक्ति को प्रेमभक्ति मे परिवर्तित करने मे 'सूर' इसलिए सफल हो सके, क्योंकि उन्होंने व्रजभाषा में अपने सगुण-लीला पदो का गान किया।

मनुष्य बहुत कुछ निर्माण कर सकता है, वह जिस किसी भी चीज़ का आविष्कार कर सकता है, परन्तु वह विचार और भाषा को सीधे उत्पन्न नही कर सकता। प्राचीन विचार-चेतना और अभिव्यक्ति तथा नवीन आवश्यकताओ और अनुभवो के घात-प्रतिघात से नयी विचार-चेतना और उसका अभिव्यक्ति-शिल्प फूटता है। जैन कवियो, आचार्यों ने क्या किया और क्या नही किया, यह सब भुला भी दिया जाए, तो भी उक्त भाषाओ के साहित्य सृजन, सवर्धन ओर उसकी प्रामाणिक सुरक्षा उनका वहुत वडा योगदान है। इसे इस देश की वृहत्तर सस्कृति, समाज और इतिहास कभी भुला नही सकते, उपेक्षा का तो प्रश्न ही नही उठता। यह होते हुए भी यह सच है कि उसकी उपेक्षा हुई है और यही कारण है कि हिन्दी भाषा (खडी बोली) की उत्पत्ति और उसके साहित्य की विधाओ के स्रोत का प्रश्न दिग्भ्रम मे पडा हुआ है। प्रत्येक प्रश्न का हल नया प्रश्न वन जाता है।

महाकवि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना मे यह स्वीकार किया है कि इस देश मे दो प्रकार के कवि हुए—आर्ष कवि और प्राकृत कवि। 'आर्षकवि' से उनका अभिप्राय सस्कृत कवि से न होकर वाल्मीकि और व्यास से है जो जीवन की सहज प्रवृत्तियो के दबाव से मुक्त थे तथा उन्होने जो कुछ लिखा अनुभूति मे उसका साक्षात्कार कर लिखा। कालिदास आदि भी सस्कृत के कवि थे, परन्तु वे आर्ष कवि नही थे, दरबारी या राज्याश्रयजीवी कवि थे। उनमें अनुभूति की कलात्मक व्यजना है, कान्ता-सम्मत उपदेश है, परन्तु उनमे वह अन्तर्दृष्टि और तेज कहाँ है जो वाल्मीकि और व्यास को प्राप्त था। 'आदि रामायण' और 'महाभारत' केवल काव्य नही हैं, वे भारतीय जीवन, इतिहास और सस्कृति के आकर ग्रन्थ हैं। उनमे भारत के सन्दर्भ मे समूची मानवीय चेतना और सस्कृति का चित्र अकित है। उसके वाद आचार्य विमलसूरि हुए, जिन्होंने प्राकृत मे 'पउमचरियम्' के नाम से रामकाव्य की रचना की। उनके वाद सस्कृत मे जैन पुराण-काव्यो का सिलसिला चलता है। उसी के समानान्तर अपभ्रश मे तीर्थंकरो एव राम और कृष्ण के जीवन को आधार बनाकर प्रवन्धकाव्यो की रचना की गयी। इनमे महाकवि स्वयभू के 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ' तथा पुष्पदन्त के (महापुराण के अन्तर्गत) राम और कृष्ण काव्य प्रमुख हैं। इनकी रचनाओ को हम श्रमण सस्कृति के आकर ग्रन्थ कह सकते हैं। उसके वाद केवल 'सूरसागर और 'रामचरितमानस' के नाम आते हैं। तुलसीदास ने रामकाव्य के रचयिता उन प्राकृत कवियो को भी नमन किया है जिन्होंने भाषा मे राम के चरित का वखान किया है "जिन्ह भाषा हरिचरित वखाने"। तुलसी के अनुसार भाषा मे 'हरिचरित' की व्याख्या करनेवाला नमन करने योग्य है जवकि सस्कृत जैसी देववाणी मे प्राकृतजनो का गान करनेवाला कवि सामान्य प्रशसा का भी अधिकारी नही है। स्वयभू और पुष्पदन्त सामान्य कवि नही थे। उन्होंने अपभ्रश भाषा मे रामकाव्य और

कृष्णकाव्य की रचना की। इसके पहले और वाद मे भी, एक भी कवि ऐसा नही हुआ कि जिसने दोनो पर समान रूप से काव्य-रचनाएँ लिखी हो। इस प्रकार इनमे सम्पूर्ण रामकाव्य और कृष्णकाव्यधारा की निश्चित और अविच्छिन्न परम्परा मिलती है।

भारतीय काव्य-रचना के लगभग दो हजार वर्ष के इतिहास मे राम-कथा और कृष्ण-कथा को आधार मानकर काव्य रचनेवाले कुल सात कवि हुए—वाल्मीकि, व्यास, विमलसूरि, स्वयभू, पुष्पदन्त, सूर और तुलसी। इनमे भी राम-कथा और कृष्ण-कथा पर एक साथ काव्य-रचना करनेवाले कवि यदि कोई हैं तो वे हैं—स्वयभू और पुष्पदन्त। इन दोनो मे भी स्वयभू ने 'पउमचरिउ' के समानान्तर 'रिट्ठणेमिचरिउ' को महत्त्व दिया। अत समूची राम-काव्य और कृष्ण-काव्य परम्परा मे वे पहले कवि हैं जिन्होने दोनो के चरितो पर समानरूप से अधिकारपूर्वक काव्य-रचना की। उनके रामकाव्य 'पउमचरिउ' का सम्पादन-प्रकाशन लगभग २५ वर्ष पहले हो चुका है, परन्तु 'रिट्ठणेमिचरिउ' अभी तक अप्रकाशित है। १९७५ मे मैंने सोचा था कि क्यो न 'रिट्ठणेमिचरिउ' के सम्पादन को हाथ मे लिया जाए। कारण यह कि इसके अप्रकाशन से न केवल कृष्णकाव्य-परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कडी शेष रह जाती है, अपितु स्वयभू जैसे कवि के सम्पूर्ण काव्यसाहित्य का भी प्रकाशन अपूर्ण रह जाता है। जहाँ ये कवि सस्कृत राम-कृष्ण काव्य-परम्परा के अन्तिम कवि हैं, वहीं आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के आदि कवि हैं। इनकी रचनाओ के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के विना परवर्ती रामकाव्यो और कृष्ण काव्यो का सम्पूर्ण और वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नही है। यह लिखते हुए मैं इन काव्यो की सीमाओ से भलीभाँति परिचित हूँ। वैज्ञानिक अध्ययन से मेरा अभिप्राय यह कदापि नही है कि सारा परवर्ती राम-कृष्ण-काव्य इन कवियो की रचनाओ के आधार पर लिखा गया। परन्तु भाषा और कविता पर किसी एक सम्प्रदाय, प्रदेश या भाषा का एकाधिकार नही होता। वे जनमात्र की सपत्ति होती हैं। वे माध्यम हैं जिनके द्वारा विभिन्न जातियाँ और समूह रूढियो से वँधते हैं और मुक्त होते है। भाषा जाति के व्यवहार को गतिशील और मुक्त वनाती है, जवकि काव्य उसके मानस को गतिशील और तनावो से मुक्त करता है। रूढियो से मुक्ति की आकाक्षा ही मानवता का विस्तार करती है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य शरीर की जड आवश्यकताओ (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) वाली तात्कालिक और अल्पकालिक पूर्ति वाली पशु-सस्कृति का ही प्रतिनिधि होता, जिसका न तो अतीत होता है और न ही भविष्य। वह वर्तमान मे ही जीवित रहता। जब नयी भाषा और कविता अस्तित्व मे आती है, तो उनमे पुरानी रूढियो से मुक्त होने की तीव्रतर आकाक्षा होती है। वे अपनी जन्मदात्री परिस्थितियो तक सीमित नही रहती, उनका दूरगामी प्रभाव होता है। जब वाल्मीकि ने वैदिक ऋचाओ की जगह, 'मा निषाद' अनुष्टुप छन्द मे क्रौंच-वध को देखने से उत्पन्न शोक को व्यक्त किया तो वह नयी युग-सस्कृति का स्पन्दन वन गया। वाल्मीकि उसके सवाहक बने। इसीलिए लोकभाषा (सस्कृत) के कवि होने पर भी उन्हे 'आर्ष कवि' माना गया। अभी तक ऋषियो की सज्ञा उन कवियो को प्राप्त थी जो मन्त्रद्रष्टा (ऋषयो मन्त्र-द्रष्टार) थे, जवकि वाल्मीकि मन्त्रद्रष्टा नही, छन्दस्रष्टा थे। जिस सत्य की अभिव्यक्ति उन्होने काव्य मे की, वह आत्मसृष्ट या आत्म-दृष्ट न होकर अनुभूतिदृष्ट थी। वह विराट् और शाश्वत सत्य नही था, अपितु अल्प और क्षणिक अस्तित्व के अपघात-दर्शन से उपजा अनुभवसाक्ष्य सत्य था।

यदि अनुश्रुति को सही माना जाए, तो वाल्मीकि अपने प्रारम्भिक जीवन मे तमसा तीरवासी

एक साहसिक (डाकू)थे। उनके लिए नर-हत्या करने मे सकोच करने का प्रश्न ही नही था। अपने जीवन मे भोगे गए सत्य (क्रूरता) से वह जितने परिचित थे, उतना परिचित उनसे दूसरा कौन हो सकता है ? उस मृगयाजीवी युग मे क्रौंचवध जैसी घटना सामान्य घटना थी। उसे देखकर विचलित होने का प्रश्न ही नही उठता। मेरे विचार मे आदि कवि साक्षर ही नही, शिक्षित भी रहे होगे। यह कहना भी बहुत कठिन है कि वे सचमुच डाकू थे या उनके दस्युजीवन और कविजीवन के बीच कितना अन्तराल था। जो भी हो, परन्तु इतना तो सच है कि आदिकवि को काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा क्रौंचवध के दर्शन से उस समय मिली होगी जब मादा क्रौंच की काम-मोहित अतृप्त पीडा की अनुभूति उन्हें हुई होगी। अनुभूति 'होने की' अनुक्रिया है। 'भव' 'भूति' 'भूत' आदि शब्द 'भू' धातु से बने शब्द हैं जिनका अर्थ है घटित होना। दृश्य जगत् मे किसी होने (घटित होने) की प्रतीति जब मन को होती है तो वह अनुभूति का रूप ले लेती है। अनुभूति के लिए भाषा भी चाहिए, क्योकि अनुभूति मन की क्रिया है जो भाषा के बिना सभव नही है। कवि कल्पना के द्वारा जब अनुभूत सत्य की पुनर्रचना करता है और उसे अभिव्यक्ति देता है, तो वह कविता का रूप ले लेता है। आदिकवि की अनुभूति पुनर्रचित स्थिति मे क्रौंच के यथार्थ तक सीमित नही रहती, अपितु देशकालव्यापी यथार्थों से जुड जाती है। भोगा हुआ सत्य, चाहे अपना हो या दूसरे का दृष्ट, कल्पना मे पुनर्रचित होकर सबका सत्य बन जाता है। निषाद सामान्य स्थिति मे नर-मादा मे से किसी एक को मारता तो शायद उतनी बुरी बात नही थी, (हालाकि मारना बुरी बात तो है ही) परन्तु उसने नर-मादा मे से एक को उस समय मारा जब वे काममोहित थे। प्राणी मात्र की इच्छाओ के मूल मे काम है। कामतृप्ति का सुख सर्वोत्तम इसलिए माना गया है कि उसका सम्बन्ध प्रजनन से है। सक्रिय काम-वेदना की अतृप्ति मे मादा छटपटा रही है और आहत नर-पक्षी खून से लथपथ मृत पडा है। इस प्रकार निषाद की क्रूरता सृष्टि के भावी विकास के लिए विराम-चिह्न बन जाती है। और यही आदिकवि अपनी अनुभूति की पुनर्रचना मे दूसरी अनुभूतियो से जुडते हैं। उनके प्रातिभज्ञान मे निषाद रावण बनकर उभरता है, मादा सीता का रूप ग्रहण करती है। रावण सीता का अपहरण उस समय करता है जब वह राम के प्रति समग्रभाव से समर्पित थी। रावण का अह एक व्यवस्था को ही नही तोड रहा था, अपितु एक बसी हुई गृहस्थी को भी उजाड रहा था। राम मर्यादित कामवाली सस्कृति के पुरस्कर्ता थे, रावण अमर्यादित काम-सस्कृति का प्रतीक था। जब आदिकवि ने क्रौंचवध देखा, तब उनके समकालीन यथार्थ मे सीता-अपहरण की घटना घट चुकी थी। उसकी कसक उनके मन मे थी। क्रौंचवध के दृश्य ने दो अनुभूतियो को जोड़ दिया। मादा क्रौंच का शोक कवि का शोक बन गया जो सीता की वेदना से जुडकर मानवीकरण मे परिवर्तित हो गया, फिर वह एक छन्द के बजाय समूचे महाकाव्य मे ढल गया। कुछ लोग कविता के अन्त होने के काल्पनिक सकट से खिन्न और भयभीत हैं। उन्हे लगता है कि समाज को कविता की भाषा की जरूरत है। पर प्रश्न है कि जब कविता नही जन्मी थी और भाषा बनने मे थी, तब किसने उसे जन्म दिया था। आज भी क्रूरताएँ हैं। सभ्यता के विकास के साथ उनका रूप बदला है, उनकी मूल प्रवृत्तियां नही। एक स्थापित समाज-व्यवस्था मे जैसे-जैसे क्रूरताएँ मँडराने लगती हैं, उसकी प्रतिक्रिया एक ओर समाज-स्तर पर होती है तो दूसरी ओर भावना के स्तर पर। कविता का जन्म यही होता है। उसमे या तो प्रतीक बदलते हैं या प्रतीको के अर्थ।

कविता की तरह दर्शन भी कल्पनाशील होता है। अन्यथा इतने दर्शनो के उत्पन्न होने की क्या उपयोगिता है? गीता जब कहती है "स्वधर्मे निधन श्रेय" तो तात्कालिक सदर्भ मे उसका अर्थ है कि अपने धर्म यानी वर्ण-व्यवस्था द्वारा निश्चित कर्म करते-करते मर जाना अच्छा है, परन्तु दूसरे के कर्म को करना भयावह है। यह वात एक स्वीकृत और स्थापित समाज-व्यवस्था के सदर्भ मे कही गई है। आखिर, वर्णव्यवस्था का सत्य भी मानव-सत्य से जुडा हुआ है। यदि वह उससे टकराता है या उसे खण्डित करता है तो उसे बदला जा सकता है। वह समाज व्यवस्था का शाश्वत मूल्य नही है। गीताकार प्रारम्भ मे ही कह देता है "जव-जव धर्म की ग्लानि होती है, तब-तव मैं जन्म लेता हूँ।" और धर्म की ग्लानि अधर्म से नही, धर्म से भी हो सकती है, होती है। जो उस धर्मग्लानि को हटाकर नये मानव-मूल्य की स्थापना करता है वह अवश्य ही विशिष्ट व्यक्ति है (वह जो भी हो)। कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन की गतिशील प्रक्रिया मे नये-पुराने से जुडने-टूटने का क्रम अनिवार्य है। किसी युग के काव्य के मूल्याकन मे देखा यह जाना चाहिए कि कवि अपने सृजन मे कितना नये मूल्यो को पहचान सका है और वह कितना उनके प्रति समर्पित है तथा कितने शक्तिशाली ढग से उन्हे अभिव्यक्ति दे सका है। ये सारी बातें उस समय लागू होती हैं जब कविता उपलब्ध हो। अपभ्रश कविता का पूरा उपलब्ध होना अभी शेप है।

महाकवि के 'रिट्ठणेमिचरिउ' के सम्पादन की प्रबल इच्छा का एक कारण अपभ्रश भाषा के उस काव्य को समझना था जिससे खडी बोली जनमी, उसकी दूसरी बोलियाँ तथा अन्य आधुनिक प्रादेशिक भारतीय आर्यभाषाएँ भी जनमी। किसी प्राचीन युग-प्रतिनिधि रचना के सम्पादन का अर्थ मूल काव्य के सृजन से भी अधिक रचनात्मक होता है। सम्पादन और अनुवाद मे अन्तर है, वल्कि कहिए कि उनमे बिल्कुल भी साम्य नही है। सम्पादन के लिए पहली शर्त है कि किसी काव्य-रचना की भाषा की पकड हो। दूसरी शर्त है उस कवि की भाषा की पकड हो। भाषा के बाद उसकी रचना-शैली आती है। अर्थों और पाठो का निर्णय करते समय समूचे सदर्भों को देखकर भापा की पुनर्रचना करनी पडती है। विभिन्न प्रतियो मे उपलब्ध पाठान्तरो मे सही पाठ और प्रयोग का चयन भी एक समस्या है। छन्द और व्याकरण की दृष्टि से किस पाठ को महत्त्व दिया जाए—यह भी कम सिर-दर्द नही है। कहने का अभिप्राय यह है कि सम्पादन का अर्थ कवि और उसके रचना-ससार को आत्मसात् करना है। प्रतिलिपिकारो ने वर्तनी और वाक्य-रचना में जो परिवर्तन किये हैं उनमे ताल-मेल बैठाना भी टेढा काम है। इसके बाद उसके मूल्याकन का प्रश्न उठता है। सम्पादित 'रिट्ठणेमिचरिउ' का मुद्रण और प्रकाशन उतना कठिन नही था, जितना कि पाण्डुलिपियो को प्राप्त करना।

सबसे पहले, लम्बे पत्राचार के बाद, जयपुरवाली प्रति सितम्बर-अक्तूबर १९७७ मे मिली। इसको उपलब्ध कराने मे डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल और डॉ० हुकुमचन्द भारिल्ल ने जो श्रम किया उसके लिए मैं उनका हृदय से अनुगृहीत हूँ। यह पाण्डुलिपि बीच-बीच मे कटी-फटी है। अत मूल पाठ की अन्विति बैठाने मे बडी कठिनाइयाँ थी। कभी-कभी एक-एक शब्द के लिए कई दिन लग जाते, फिर भी सगति बैठाना कठिन रहा। इसी बीच डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच वालो ने मुझे सूचित किया कि इसकी दो प्रतियाँ श्री ऐलक पन्नालाल दिग० जैन सरस्वती भवन मे हैं। उनके क्रमाक भी उन्होंने भेजने का कष्ट किया। उक्त सरस्वती भवन बम्बई से स्थानान्तरित होकर इस समय तीन शाखाओ (व्यावर, झालटापाटन और उज्जैन)

मे स्थापित है । तीनो जगह मैंने पत्र लिखे, परन्तु लगातार इस नाम के ग्रन्थ के उपलब्ध न होने की सूचना मिली। जुलाई १६७८ मे मैं पुन स्थानान्तर की चपेट मे आ गया। १६७८ की दशहरा-दीपावली के अवकाश मे मैंने स्वय व्यावर जाने का कार्यक्रम वनाया और इसकी सूचना वहाँ के व्यवस्थापक श्री अरुणकुमार शास्त्री को दी। उन्होने अपने विस्तृत पत्र मे दोनों पाण्डुलिपियो के विद्यमान होने की सूचना देते हुए लिखा—"हमारे सदर्भ-विवरणो मे उक्त ग्रन्थ का नाम 'रिट्ठणेमिचरिउ' न होकर 'हरिवशपुराण' अकित है। विवरण पजिका की इस अपूर्णता के कारण आपको हर वार ग्रन्थ की अनुपलब्धि की सूचना देता रहा। ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी 'अथ हरिवश पुराण लिख्यते' लिखा है और ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे वतलाया गया है।"

आवश्यक प्रक्रिया पूरी कर श्री अरुणकुमार शास्त्री ने नवम्वर, ७८ मे दोनों पाण्डुलिपियो का आधा-आधा भाग भेज दिया। मैं अनुगृहीत हूँ—श्री पन्नालाल दिग० जैन सरस्वती भवन की तीनो शाखाओ से सम्बद्ध विद्वानो (सर्वश्री प० दयाचन्द शास्त्री उज्जैन, श्री श्रीनिवास शास्त्री झालरापाटन, श्री अरुणकुमार शास्त्री) का, उनके सौजन्यपूर्ण सहयोग के लिए।

तीनो पाण्डुलिपियो मे जयपुरवाली प्रति (ज) अत्यन्त जीर्ण है। यदि सरस्वती भवन से उक्त दो पाण्डुलिपियाँ न मिलती, तो प्रस्तुत सस्करण के सम्पादन मे सदेह वना रहता। यह भी सयोग की वात है कि जव मैं पुष्पदन्त के 'महापुराण' का अनुवाद कर रहा था, तव मेरा स्थानान्तर, इन्दौर से खडवा हुआ था और अव जव मैंने 'रिट्ठणेमिचरिउ' के सम्पादन मे हाथ लगाया तव पुन स्थानान्तरित होकर खडवा आया। अन्तर इतना ही है कि पहले इन्दौर से खडवा सीधे आया था और अव भोपाल होकर आया। सत्ता की राजनीति मे स्थानान्तरो की भूमिका नया मोड ले चुकी है। खडवा के इस दूसरे प्रवास (सितम्वर १६७८ से अगस्त १६८०तक) मे मैंने महावीर ट्रेडिंग कम्पनी, पघाना रोड मे रहकर यह खण्ड तैयार किया, इसके लिए मैं हूमड वन्धुओ का हृदय से आभारी हूँ।

मैं भारतीय ज्ञानपीठ के अध्यक्ष समादरणीय साहू श्रेयास प्रसादजी का एव मैनेजिंग ट्रस्टी श्री अशोक कुमार जैन का भी अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ से इसे प्रकाशित करने की स्वीकृति दी। साथ ही, मैं भाई लक्ष्मीचन्द्रजी का भी अनुगृहीत हूँ, उनकी इस उदारता के लिए। अपभ्रश साहित्य के प्रकाशन मे, भारतीय ज्ञानपीठ के माध्यम से साहू परिवार ने जो प्रयत्न किया है, वह चिरस्मरणीय और स्तुत्य है। प्राच्य विद्या के शोध अनुसधान से सम्वन्ध रखनेवाले लोग इसके लिए उनके कृतज्ञ हैं।

इस अवसर पर मैं जैन तत्त्वज्ञान के मर्मज्ञ श्रद्धेय पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री और सिद्धान्ताचार्य प०कैलाशचन्द्रजी शास्त्री तथा इतिहासमनीषी डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

१५-८-१६८० (स्वतन्त्रता दिवस) —देवेन्द्र कुमार जैन

भूमिका

महाकवि स्वयंभू और उनका समय

"महाकवि स्वयभू अपभ्रश-साहित्य के ऐसे कवि हैं जिन्होने लोकरुचि का सर्वाधिक ध्यान रखा है। स्वयभू की रचनाएँ अपभ्रश की आख्यानात्मक रचनाएँ हैं, जिनका प्रभाव उत्तरवर्ती समस्त कवियो पर पडा है। काव्य-रचयिता के साथ स्वयभू छन्दशास्त्र और व्याकरण के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

कवि स्वयभू के पिता का नाम मारुतदेव और माता का नाम पद्मिनी था। मारुतदेव भी भी कवि थे। स्वयभू ने छन्द मे 'तहा य माउरदेवस्स' कहकर उनका निम्नलिखित दोहा उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है—

लद्धउ मित्त भमतेण रअणा अरचद्देण।
सो सिज्जते मिज्जइ वि तह भरइ भरतेण[1]॥

स्वयभूदेव गृहस्थ थे, मुनि नही। 'पउमचरिउ' से अवगत होता है कि इनकी कई पत्नियाँ थी, जिनमे से दो के नाम प्रसिद्ध हैं—एक अइच्चवा (आदित्यम्वा) और दूसरी सामिअवा। ये दोनो ही पत्नियाँ सुशिक्षिता थी। प्रथम पत्नी ने अयोध्याकाण्ड और दूसरी ने विद्याधर-काण्ड की प्रतिलिपि की थी। कवि ने उक्त दोनो काण्ड अपनी पत्नियो से लिखवाये थे।

स्वयभूदेव के अनेक पुत्र थे, जिनमे सबसे छोटे पुत्र त्रिभुवनस्वयभू थे। श्री प्रेमीजी का अनुमान है कि त्रिभुवनस्वयभू की माता का नाम सुअव्वा था, जो स्वयभूदेव की तृतीय पत्नी थी। श्री प्रेमीजी ने अपने कथन की पुष्टि के लिए निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है—

सव्वे वि सुआ पजरसुअव्व पढि अक्खिराइ सिक्खति।
कइराअस्स सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भ सभूओ॥[2]

अपभ्रश मे 'सुअ' शब्द से सुत और शुक दोनो का बोध होता है। इस पद्य मे कहा है कि सारे ही सुत पिंजरे के सुओ के समान पढे हुए ही अक्षर सीखते हैं, पर कविराजसुत त्रिभुवन 'श्रुत इव श्रुतिगर्भसम्भूत' हैं। यहाँ श्लेष द्वारा सुअब्वा के शुचि गर्भ से उत्पन्न त्रिभुवन अर्थ भी प्रकट होता है। अतएव यह अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है कि त्रिभुवनस्वयभू की माता का नाम सुअव्वा था।

स्वयभू शरीर से बहुत दुबले-पतले और ऊँचे कद के थे। उनकी नाक चपटी और दाँत विरल थे। स्वयभू का व्यक्तित्व प्रभावक था। वे शरीर से क्षीण काय होने पर भी ज्ञान से पुष्टकाय थे। स्वयभू ने अपने वश, गोत्र आदि का निर्देश नही किया, पर पुष्पदन्त ने अपने

---

* डॉ० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य की कृति 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा' भाग ३ से जीवन-परिचय, प्रकानश द्वारा साभार।

१ अनेकान्त, वर्ष ५, किरण ८—९, पृ० २९९

२ जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम सस्करण, पृ० ३७४

महापुराण मे इन्हें आपुलसंघीय बताया है। इस प्रकार ये यापनीय सम्प्रदाय के अनुयायी जान पड़ते हैं।

स्वयम्भू ने अपने जन्म से किस स्थान को पवित्र किया यह कहना कठिन है, पर यह अनुमान सहज मे ही लगाया जा सकता है कि वे दाक्षिणात्य थे। उनके परिवार और सम्पर्की व्यक्तियों के नाम दाक्षिणात्य हैं। मारुतदेव, धवलइया, बन्दइया, नाग, आइच्चंबा, सामिअब्बा आदि नाम कर्नाटकी हैं। अतएव इनका दाक्षिणात्य होना अबाधित है।

स्वयम्भूदेव पहले धनञ्जय के आश्रित रहे और पश्चात् धवलइया के। 'पउमचरिउ' की रचना मे कवि ने धनञ्जय का और 'रिट्ठणेमिचरिउ' की रचना मे धवलइया का प्रत्येक सन्धि मे उल्लेख किया है।

स्थितिकाल

यद्यपि स्वयम्भूदेव ने अपने समय के सम्बन्ध मे कुछ भी निर्देश नहीं किया है, पर इनके द्वारा स्मृत कवि और अन्य कवियो द्वारा इनका उल्लेख किये जाने से इनके स्थितिकाल का अनुमान किया जा सकता है। कवि स्वयम्भूदेव ने 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे अपने पूर्ववर्ती कवियो और उनके कुछ ग्रन्थो का उल्लेख किया है। इससे उनके समय की पूर्वसीमा निश्चित की जा सकती है। पाँच महाकाव्य, पिंगल का छन्दशास्त्र, भरत का नाट्यशास्त्र, भामह और दण्डी के अलंकारशास्त्र, इन्द्र के व्याकरण, व्यास बाण का अक्षराडम्बर, श्रीहर्ष का निपुणत्व और रविषेणाचार्य की रामकथा उल्लिखित है। इन समस्त उल्लेखो मे रविषेण और उनका पद्मचरित ही अर्वाचीन है। पद्मचरित की रचना वि० सं० ७३४ मे हुई है। अतएव स्वयम्भू के समय की पूर्वावधि वि० सं० ७३४ के बाद है।

स्वयम्भू का उल्लेख महाकवि पुष्पदन्त ने अपने पुराण मे किया है और महापुराण की रचना वि० सं० १०१६ मे सम्पन्न हुई है। अतएव स्वयम्भू के समय की उत्तरसीमा वि० स० १०१६ है। इस प्रकार स्वयम्भूदेव वि० स० ७३४—१०१६ वि० स० के मध्यवर्ती हैं। श्री प्रेमीजी ने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है—'स्वयम्भूदेव हरिवंशपुराण के कर्त्ता जिनसेन से कुछ पहले ही हुए होंगे, क्योकि जिस तरह उन्होंने 'पउमचरिउ' मे रविषेण का उल्लेख किया है, उसी तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे हरिवंश के कर्त्ता जिनसेन का भी उल्लेख अवश्य किया होता यदि वे उनसे पहले हो गये होते। इसी तरह आदिपुराण, उत्तरपुराण के कर्त्ता जिनसेन, गुणभद्र भी स्वयम्भूदेव द्वारा स्मरण किये जाने चाहिए थे। यह बात नही जँचती कि बाण, श्रीहर्ष आदि अजैन कवियो की तो चर्चा करते और जिनसेन आदि का छोड देते। इससे यही अनुमान होता है कि स्वयम्भूदेव दोनो जिनसेनो से कुछ पहले हो चुके होगे। हरिवंश की रचना वि० स० ८४० मे समाप्त हुई थी। इसलिए ७३४ से ८४० के बीच स्वयम्भू का समय माना जा सकता है। डॉ० देवेन्द्र जैन ने इनका समय ई० ७८३ अनुमानित किया है। यह अनुमान ठीक सिद्ध होता है।"

रचनाएँ

कवि की अभी तक कुल तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं और तीन रचनाएँ उनके नाम पर और मानी जाती हैं—

१ पउमचरिउ, २. रिट्ठणेमिचरिउ, ३ स्वयम्भूछन्द ४ सोद्धयचरिउ, ५ पचमिचरिउ, ६ स्वयम्भूव्याकरण।[1]

---

१ जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम सस्करण, पृ० ३८७।

श्रीमद्भागवत : कृष्ण-कथा

श्रीमद्भागवत मे परीक्षित के पूछने पर आचार्य शुकदेव बताते हैं—प्राचीन काल मे यदुवशी राजा शूरसेन मथुरापुरी मे रहकर माथुर मण्डल और शूरसेन मण्डल का शासन करने लगे। उनके पुत्र वसुदेव देवकी से विवाह कर उसके साथ घर जाने को तैयार हुए। देवकी कस की चचेरी बहन थी। उसे प्रसन्न करने के लिए वह घोडो की रास पकड लेता है और स्वय रथ हाँकता है। इतने मे यह आकाशवाणी होती है कि देवकी के आठवें गर्भ से जो सन्तान होगी वह कस की मृत्यु का कारण होगी। कस भोजकवशी है। वह देवकी को ही मार डालना चाहता है। न होगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। वसुदेव के यह वचन देने पर कि प्रत्येक सन्तान उसे सौंप दी जाएगी, कस अपना विचार बदल देता है। पहला पुत्र होता है और वसुदेव उसे लेकर कस के पास पहुँचते हैं। कस उनकी सत्यनिष्ठा देखकर तथा यह सोचकर कि उसकी मौत आठवी सन्तान के हाथ मे है, नवजात शिशु को वापस कर देता है। इस बीच देवर्षि नारद कस को बताते हैं कि यदुवशी देवता हैं और कस की मृत्यु की तैयारी निश्चित रूप से हो रही है। कस हथकडियो और बेडियो से जकडकर वसुदेव-देवकी को बन्दीघर मे डाल देता है। छह पुत्रो की हत्या के बाद, विष्णु भगवान् योगमाया को वृन्दावन भेजते हैं और कहते हैं कि देवकी के गर्भ मे स्थित 'शेष' के अश को रेवती के गर्भ मे रख आओ। वह स्वय देवकी के गर्भ मे आते हैं और योगमाया यशोदा के गर्भ मे स्थित होती है। कृष्ण का जन्म होते ही बन्दीगृह के लोहे के दरवाजे स्वत खुल जाते हैं। शेषनाग अपने फनो से शिशु को वर्षा से बचाते हैं। वसुदेव कृष्ण के बदले मे नन्द की कन्या लेकर ब्रज से वापस लौटते हैं। कस को सतान होने की सूचना दी जाती है। कस आकर कन्या को पछाडता है। वह योगमाया बनकर आकाश मे चली जाती है, यह कहते हुए कि, "हे कस, तेरा मारनेवाला कही पैदा हो गया है।" कस वसुदेव-देवकी को बन्धनमुक्त कर उनसे क्षमा-याचना करता है। कस के दैत्य मत्री नगर-गांवो के बच्चो के वध की योजना बनाते हैं।

शिशु धीरे-धीरे बढता है। नन्द वार्षिक कर चुकाने के बहाने मथुरा जाते हैं और वसुदेव से मिलकर वापस आते हैं। पूतना राक्षसी शिशु का वध करने आती है। वह बालक को दूध पिलाती है। लेकिन बालक दूध के साथ उसके प्राण भी पीने लगता है। वह प्राण छोड़ देती है। नन्द को मथुरा से लौटने पर इस घटना का पता चलता है। करवट बदलने के उत्सव मे शिशु छकडे के नीचे सो रहा है, यशोदा व्यस्तता के कारण दूध पिलाना भूल जाती है। बालक के पाँव से छकडा उलट जाता है। आहट पाकर यशोदा आती है और शिशु को उठा लेती है। तृणावर्त बवडर बनकर आता है, और धूल फैलाकर शिशु को आकाश में ले जाता है। बालक गला दबाकर उसे मार डालता है। यदुवश के आचार्य गर्ग नन्द से मिलने आते हैं और चुपचाप बालक का नामकरण सस्कार करते हैं। कृष्ण बलराम के साथ क्रीडाएँ करते हैं। वे घुटनो, हाथो के बल चलते हैं, कभी घिसटते हैं, पाँव के घुंघरु बज उठते हैं। वे माताओ के पास आते हैं। बडे होने पर, वे दोनो ब्रज के बाहर लीलाएँ करते हैं। वे ब्रजवालाओ को निहाल कर तरह-तरह के खेल खेलते हैं। ब्रजवालाएँ यशोदा से शिकायत करती हैं वह दुहने के पहले बछड़ा छोड देता है, डाँटने पर हँसता है। बन्दरो को दूध-दही खिलाकर मटके फोड देता है। छीके पर रखा दही पाने के लिए वह क्या-क्या नही करता? पीढे पर पीढा रखता है, ऊखल पर चढता है,

किसी बालक के कन्धे पर चढता है। अँधेरे मे रखी चीजो को वह मणिमय आभूषणो के प्रकाश मे पहचान लेता है। कहने पर ढिठाई करता है। नन्द और यशोदा पूर्वभव मे द्रोणवसु और धरा थे। ब्रह्मा के आशीर्वाद से वे इस जन्म मे नन्द और यशोदा हुए। एक बार दही मथती हुई यशोदा के पास बालक कृष्ण आता है। वह दही मथना छोडकर दूध पिलाने लगती है। फिर उफनते दूध को उतारने जाती है। बालक को क्रोध आ जाता है और वह दही का मटका फोडकर दूसरे कक्ष मे चला जाता है। पूर्वभव के कुबेरपुत्र (नलकूबर और मणिग्रीव) को नारद ने वृक्ष बनने का अभिशाप दिया था। श्रीकृष्ण ऊखल घसीटते हुए यमलार्जुन वृक्ष के पास पहुँचते हैं, जो अभिशप्त नरकुबर थे। वह उनके बीच से निकलते हैं और वे दोनो वृक्ष तडतड करके टूट जाते हैं। उत्पातो के डर से नन्द गोकुल से वृन्दावन जाने का फैसला करते हैं। वृन्दावन मे बसने के बाद, एक दैत्य वहाँ बछडा बनकर आता है। श्रीकृष्ण उसकी पूँछ पकडकर कैथ वृक्ष पर पछाड देते हैं। फिर बकासुर का नाश करते हैं। उसके बाद अघासुर का। अघासुर अजगर का रूप बनाकर लेट जाता है। कृष्ण उसके मुँह मे घुसकर उसे फाड देते हैं। एक बार वह वन में बछडों को ढूंढने जाते हैं। इधर ब्रह्मा कुतुहलवश ग्वालबालो को छिपा देता है। ब्रह्मा को छकाने के लिए वे स्वय बछडा बन जाते हैं। वह ब्रह्मा को मोहित करते हैं। उन्हें सभी बालक और बछडे कृष्ण स्वरूप दिखाई देते हैं। ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं।

छह वर्ष के होने पर दोनो भाई गाये चराने जाते हैं। श्रीकृष्ण बलराम की स्तुति करते हैं। श्रीदामा और स्तोक कृष्ण से पडोस के वन मे चलने का आग्रह करते हैं। वहाँ वे गधे रूप मे आये हुए दैत्य का सहार करते हैं। धेनुकासुर, भाई के मारे जाने पर, उनपर आक्रमण करता है। वे उसे परिवार के लोगो सहित ताड के वृक्ष पर पछाड देते हैं। घर लौटते हैं। यमुना के कुण्ड मे रहनेवाले कालियानाग को नाथ देते हैं। नाग और उसकी पत्नियाँ भगवान् की स्तुति करती हैं। शुकदेव परीक्षित को कालियानाग का पूर्व वृतान्त बताते हैं। श्रीकृष्ण दिव्य माला गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और स्वर्ण-आभूपणो से अलकृत होकर निकलते हैं। नन्द को चिन्ता। दावानल से स्वजनो का उद्धार। दोनो ग्वालबालो के साथ वन मे क्रीडा करते हैं। एक राक्षस ग्वालबाल बनकर आता है, वह मित्र बनता है। ग्वालबाल भाडीर वट वृक्ष के पास पहुँचते हैं। प्रलम्बासुर बलराम को पीठ पर लाद कर भागना चाहता है परन्तु वह ऐसा कर नही पाता। बलराम उसे मार देते हैं। गायें गु जाटवी (सरकडो के वन) मे घुस जाती हैं। वे पता लगाकर उस वन मे पहुँचते हैं। तभी वन में आग लग जाती है। वह योगमाया से आग पी लेते हैं और गायें लेकर वापस आ जाते हैं। विभिन्न ऋतुओ मे वह वन में क्रीडा करते हैं। शरदऋतु में वेणुगीत का आयोजन होता है। मुरली की तान सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो उठती हैं, वे वृन्दावन की हर चीज की सराहना करती हैं, उन्हे प्रेम की व्याधि लग जाती हैं। वे प्रतिदिन लीलाओ का स्मरण करती हैं। हेमन्त ऋतु मे कात्यायनी देवी की पूजा करती हैं। सवेरे सवेरे समूह मे लीलागान करती हुई यमुना मे स्नान करती हैं। कृष्ण वस्त्र उठा लेते हैं और अकेले या सामूहिक रूप मे आकर वस्त्र लेने की बात करते हैं। (चीरहरण का अभिप्राय वृत्तियो का आवरण नष्ट हो जाना है और उनका, वृत्तियो का, आत्मा मे रम जाना 'रास' है। गीता मे धर्म से अविरुद्ध काम को परमात्मा का स्वरूप माना गया है।)

भूख मिटाने के लिए ग्वालबाल आगिरस यज्ञ मे पहुँचते हैं, जो वेदपाठी ब्राह्मणो द्वारा आयोजित था। ग्वालबाल कहते हैं—"हमें बलराम और श्रीकृष्ण ने भूख मिटाने आपकी

यज्ञशाला मे भेजा है अतः थोडा भात दे दीजिए।" वेदवादी ब्राह्मण उन्हे मना कर देते हैं। ग्वालवाल भूखे वापस आ जाते हैं। श्रीकृष्ण उन्हे ब्राह्मणो की पत्नियो के पास भेजते हैं, वे उन्हे अशन-वसन से सतुष्ट कर देती हैं। वे भगवान के दर्शन करती हैं। श्रीकृष्ण उनके प्रेम का अभिनन्दन करते हैं। वेदपाठी ब्राह्मण पछताते हैं। इसी प्रकार वे 'इन्द्रयज्ञ' का विरोध करते हैं, और जब इन्द्र कुपित होकर वर्षा करता है तो गोवर्धन उठाकर, उसका घमण्ड चूर-चूर कर देते हैं। स्वर्ग से आकर कामधेनु वधाई देती है और इन्द्र भी क्षमा माँगता है। वरुण का सेवक एक असुर नन्द को पकडकर ले जाता है, कृष्ण उन्हे छुडाकर लाते हैं। वरुण आकर उनकी स्तुति करता है। शरद् ऋतु मे रासलीला प्रारम्भ होती है। वशी की धुन सुनकर, गोपियाँ चल देती हैं। वे प्रियवियोग से विकल हैं। वे कृष्णमय हो उठती हैं‒

'पप्रच्छुराकाशवदन्तर वहि
भूतेषु सन्त पुरुष वनस्पतीन्।'

अर्थात् जो आकाश के समान भीतर-वाहर सव जगह स्थित हैं उनके वारे मे गोपियाँ पेड पौधो से पूछने लगती हैं।

श्रीकृष्ण थोडी दूर ही थे। वे कृष्ण की लीलाओ का अभिनय करती हैं, कृष्ण की खोज मे निकलती हैं। उन्हे किसी गोपी के चरणचिह्न के साथ भगवान् के चरणचिह्न दीख पडते हैं। उस गोपी को वे कृष्ण की आराधिका समझती हैं, वे कृष्णमय हो उठती हैं, व्याकुल होकर कृष्ण के आने की प्रतीक्षा करती हैं। वे श्रीकृष्ण के पिछले कार्यो का पुण्य स्मरण करती हैं, अधरामृत के पान से जीवनदान की प्रार्थना करती हैं और फूट-फूट कर रो पडती हैं। श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं, गोपियाँ भिन्न-भिन्न मुद्राओ मे उनका प्रतिग्रहण करती हैं। श्रीकृष्ण व्रजवालाओ को साथ लेकर यमुना-तीर जाते हैं। यहाँ गोपियो के पूछने पर प्रेम की विभिन्न स्थितियो का उल्लेख करते हुए कहते हैं—ये स्थितियाँ चार हैं—एक, जो अपने स्वरूप मे मस्त रहते है, उन्हे द्वैत नही भासता। दूसरे, वे हैं जिन्हे द्वैत की प्रतीति है, परन्तु वे कृतकृत्य हो चुके हैं। तीसरे, वे हैं जो यह नही जानते कि कौन हमसे प्रेम करता है। चौथे, वे हैं जो हित या प्रेम करनेवालो से भी द्रोह करते हैं। कृष्ण कहते हैं—"मैं प्रेम करनेवालो से इसलिए प्रेम नही करता क्योकि मैं चाहता हूँ कि प्रेम करनेवालो की वृत्ति मुझ मे लगी रहे। इसीलिए मैं मिल-मिलकर छिप जाता हूँ।" यमुना के किनारे वे रासलीला करते हैं। वे स्वय दो-दो गोपियो के वीच प्रगट हो जाते हैं। प्रत्येक गोपी समझती है कि उनका प्रिय उनके साथ है।

रास के मूल मे रस शब्द है 'रसो वै स'। रस स्वय श्रीकृष्ण हैं। जिस दिव्य क्रीडा मे एक ही रस अनेक रसो के रूप मे परिणत हो जाए वह रास है। इस मे वशीध्वनि गोपियो का अभिसार, श्रीकृष्ण से उनकी वातचीत, रमण राधा के साथ अन्तर्धान, पुन प्राकट्य, गोपियो द्वारा दिए गए वसनासन पर वैठना, कूट प्रश्नो का उत्तर, रासनृत्य, जलकेलि और वन-विहार जैसी अनेक क्रियाएँ सम्मिलित हैं। श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रासविलास का जो श्रद्धा से वार-वार श्रवण और मनन करता है, उसे पराभक्ति प्राप्त होती है।

नन्दवावा अन्य गोपो के साथ जाकर शिवरात्रि के दिन पशुपतिनाथ शकर और अम्विकाजी का भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं। एक अजगर नन्द को निगलना चाहता है कि तभी भगवान् उसे

भस्म कर देते हैं। यह पूर्वभव मे सुदर्शन नामक विद्याधर था जो शाप के कारण अजगर योनि को प्राप्त हुआ था। वह श्रीकृष्ण की अनुज्ञा लेकर चला जाता है। एक वार श्रीकृष्ण और वलराम गोपियो के साथ, पास के वन मे स्वच्छन्द विहार करते है। कुवेर का अनुचर शखचूड 'यक्ष' गोपियो का अपहरण करता है। दोनो भाई शालवृक्ष लेकर दौडते हैं। श्रीकृष्ण पीछा कर एक घूँसे मे उसका सिर धड से अलग कर देते हैं। वह उसका चमकीला मणि लेकर आ जाते हैं और वलराम को दे देते हैं।

'युगलगीत' मे गोपियो की वह प्रतिक्रिया व्यक्त है जो उस समय उनके मन मे उत्पन्न होती है जव कृष्ण प्रतिदिन वन मे गाय चराने जाते हैं। इनमे कृष्ण का सौन्दर्य, चेष्टाएँ, अलकरण आदि बातें समाहित हैं। एक दिन कृष्ण के व्रज मे प्रवेश करने के समय अरिष्ट दैत्य आता है। कृष्ण उसका वध करते हैं। अरिष्टासुर के वध के वाद नारद कम को वस्तुस्थिति वताते हैं। कस क्रुद्ध होकर वसुदेव को मार डालना चाहता है। नारद मना करते हैं। कस वसुदेव और देवकी को वन्दीगृह मे फिर से भिजवा देता है। वह केशी से वृन्दावन जाकर दोनो को मार डालने का आदेश देता है। मचो और अखाडो का निर्माण होता है। कस कृष्ण को लाने के लिए यदुवशी अक्रूर को भेजता है। अक्रूर धनुपयज्ञ का निमन्त्रण लेकर जाते हैं। केशी दैत्य अश्व के रूप में आता है। श्रीकृष्ण उसे परास्त करते हैं। देवता फूल वरसाते हैं। नारद आकर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं तथा भावी घटनाओ और वधो का पूर्व उल्लेख करते हैं। गोचारण के समय, वह भामासुर का वध करते हैं। अक्रूर व्रज की यात्रा करते हैं। नाना कल्पनाएँ करते हुए वे आते हैं। व्रजभूमि मे पहुँचकर वह रथ से उतरकर व्रज की धूलि मे लोट जाते हैं। दोनो भाई उन्हें घर के भीतर ले जाते हैं। नन्दवावा यह मुनादी करवा देते हैं कि कल वे मथुरा मेला देखने जाएँगे और राजा को गोरस देंगे। गोपियो पर इसकी गहरी प्रतिक्रिया होती है। वे अक्रूर को भला-वुरा कहती हैं। यमुना किनारे पहुँचकर अक्रूर स्नान करते हैं, वे दोनो भाइयो को रथ पर छोड आये थे, परन्तु उन्हे जल मे देखकर वह आश्चर्यचकित रह जाते हैं। जल मे उनका विष्णु रूप प्रतिविम्वित है। अक्रूर उनकी स्तुति करते हैं। व्रजवासी गोप और नन्द पहले से ही मथुरा के वाहर उपवन मे ठहरे हुए हैं। कृष्ण और वलराम अक्रूर को मथुरा भेज देते हैं और स्वय वहाँ ठहर जाते हैं। अक्रूर कस को कृष्ण के आने की सूचना देते हैं। कृष्ण के मथुरा मे प्रवेश करने पर वहाँ की वनिताओ की प्रतिक्रिया। धोवी से कपडे लूटते हुए, दर्जी से प्रसन्न होते हुए, सुदामा माली के घर जाते हैं। वह उनकी पूजा करता है। रास्ते मे उनकी कुब्जा से भेंट होती है, जो चन्दन का पात्र लेकर जा रही थी। वह अगभग के साथ, अपने को समर्पित कर देती है। श्रीकृष्ण उसके अगो को सीधा कर देते हैं। वह एक सुन्दर स्त्री वन जाती है। वह घर चलने का आग्रह करती है। कृष्ण वाद मे आने का आश्वासन देकर आगे वढ़ जाते हैं।

रगशाला मे धनुष चढ़ाकर और सेना को परास्त कर कृष्ण-वलराम आगे वढते हैं। यह समाचार सुनकर कस आग ववूला हो जाता है। दूसरे दिन मल्लयुद्ध का आयोजन होता है जिसमे दोनो भाग लेते हैं। कुवलयपीड का उद्धार कर वह अखाडे में मल्लो को पराजित करते हैं—कृष्ण चाणूर को और वलराम मुष्टिक को। कृष्ण कस का काम तमाम कर देते हैं। कस

अनुगत हूँ, अत वियोग का प्रश्न ही नही उठता। सारे साधन मुझमे आकर उसी प्रकार मिलते हैं जिस प्रकार समुद्र में नदियाँ। मैं तुमसे मिलूँगा, निराश होने का कोई कारण नही।"

यह सुनकर गोपियाँ सतुष्ट हो जाती हैं। वे कृष्ण की एक-एक लीला का स्मरण करती हैं। कृष्ण की सामाजिक और राजनैतिक सफलताओ पर वे हर्ष प्रकट करती हैं। वे जानना चाहती हैं कि क्या मथुरा की स्त्रियो के प्रति भी उनका ऐसा ही प्रेम है। दूसरी सखी कहती है, "वे प्रेम-मोहिनी कला के विशेषज्ञ हैं अत: ऐसी कौन होगी जो उन पर नही रीझेगी?" तीसरी गोपी पूछती है, "नागरिक स्त्रियो से कभी उनकी बात चलती है या नही? क्या कृष्ण उन रात्रियो का स्मरण करते हैं जिनमे हमने रासलीला की थी? क्या वे फिर हमारी सुध लेंगे?" एक गोपी को यह आशका है कि राजा बनने पर उन्हे कई राजकुमारियाँ मिल सकती हैं, फिर वे हमारी याद क्यो करने लगे? अपना काम पूर्ण होने से, उन्हे किसी से क्या प्रयोजन?" एक पिंगला वेश्या की यह बात दुहराती है कि "आशा न रखना ही सबसे बडा सुख है (पर सौख्य हि नैराश्य स्वैरिण्याह पिंगला) फिर भी उनकी आशा छोडना सम्भव नही। गोपियाँ उद्धव को सारे स्थान दिखाती हैं जिनसे कृष्ण का सम्बन्ध था। वे वियोग मे कृष्ण से अपनी रक्षा चाहती हैं।

लेकिन उद्धव के माध्यम से प्रिय का सन्देश सुनकर गोपियाँ शान्त हो रहती हैं। उद्धव महीनो व्रज मे रहते हैं। प्रिय मे गोपियो की निष्ठा देखकर उद्धव प्रसन्न हो उठते हैं। वह प्रेममय दिव्य महाभाव बडे-बडे मुनियो को दुर्लभ है।

भगवान् की लीलाकथा का रस जिसने चख लिया वह भूल नही सकता। उद्धव वृन्दावन मे रह जाना चाहते हैं जिससे गोपियो की चरणधूल मिल सके। वे व्रजरज को प्रणाम करते हैं। पश्चात् उद्धव मथुरा के लिए प्रस्थान करते हैं।

कुब्जा अपने घर पर कृष्ण और उद्धव की पूजा करती है। उद्धव आसन से उठकर जमीन पर बैठते हैं। वह कुब्जा के साथ क्रीडा करते हैं। फिर वे उद्धव के साथ लौटते हे। वे और बलराम अक्रूर से उनके घर भेंट करते हे। अक्रूर उनकी सेवा करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं। श्रीकृष्ण अक्रूर को पाण्डवो की कुशलता पूछने हस्तिनापुर भेजते हैं क्योकि पाण्डु की मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी मे ले आये हैं। अक्रूर जाकर सबसे मिलते हैं और स्थिति का अध्ययन करने के लिए महीनो वहाँ रहते हैं। अक्रूर धृतराष्ट्र का कुल-गौरव बढाने की बात कहते हैं। धृतराष्ट्र स्वीकार करते हैं कि पुत्रो की ममता के कारण उनका चित्त विपम हो उठा है। बाद मे अक्रूर मथुरा आकर श्रीकृष्ण को वहाँ का सारा समाचार सुनाते हैं।

शुकदेव परीक्षित् से कहते हैं—कस की दो रानियाँ थी, अस्ति और प्राप्ति। पति की मृत्यु के बाद वे अपने पिता जरासन्ध के पास चली जाती हैं। वह अपने दामाद के वध से क्रुद्ध होकर तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ यदुवशियो की राजधानी मथुरा को घेर लेता है। कृष्ण और बलराम जरासन्ध का सामना करते हैं। बलराम उसे ललकारते हैं। जरासन्ध सेना के साथ उन्हें घेर लेता है। मथुरा की वनिताओ मे इसकी गहरी प्रतिक्रिया होती है। उन दोनो के प्रहार से जरासन्ध की सेना धराशायी हो जाती है। देवता फूल बरसाते हैं। कई बार यह क्रम चलता है। अठारहवी बार कालयवन युद्ध करने आता है और म्लेच्छो की तीन करोड सेना के साथ मथुरा नगरी को घेर लेता है। कृष्ण और बलराम परामर्श कर पश्चिमी समुद्र मे जलदुर्ग बनवाने का फैसला करते हैं। वास्तुकला के अनुसार सुन्दर नगरी बसाई जाती जाती है। श्रीकृष्ण माया के द्वारा सबको वहाँ पहुँचा देते हैं। बलरामजी मथुरा मे रहने लगते हैं और श्रीकृष्ण सादे

वेश मे द्वारिका आ जाते हैं। कालयवन उनका पीछा करता है। श्रीकृष्ण उसको खूब छकाते हैं। श्रीकृष्ण पर्वत की गुफा मे घुस जाते हैं। जरासन्ध गुफा मे घुसता है। उसकी ठोकर से मुचुकन्द उठता है, उसकी क्रोधाग्नि अत्यन्त प्रबल हो उठती है। मुचुकुन्द वस्तुत मान्धाता का पुत्र था। श्रीकृष्ण उसे दर्शन देते हैं। फिर वे म्लेच्छसेना का नाश कर, सबका धन छीनकर द्वारिका आ जाते हैं।

जरासन्ध पुन आक्रमण करता है। दोनो भाई भागते हैं, जरासन्ध उनका पीछा करता है। वे प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ जाते हैं। ढूंढने पर जब वे नहीं मिलते तो वह आग लगवा देता है और मान लेता है कि वे जल गये। पश्चात् जरासन्ध मगध देश लौट आता है।

रुक्मिणी विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या है। बडे भाई का नाम रुक्मि है। चार छोटे भाई भी हैं—रुक्मरथ, रुक्ममालि, रुक्मबाहु और रुक्मकेश। रुक्मिणी श्रीकृष्ण मे अनुरक्त है। रुक्मि कृष्ण से द्वेष रखता है। वह अपनी बहिन का विवाह शिशुपाल से कराना चाहता है। रुक्मिणी एक विश्वासपात्र ब्राह्मण श्रीकृष्ण के पास द्वारिकापुरी भेजती है। वह जाकर श्रीकृष्ण को सब वृत्तान्त सुनाता है। वे ब्राह्मण से कहते हैं, "मैं भी विदर्भकुमारी को चाहता हूं।" रुक्मिणी का सकेत था कि विवाह के एक दिन पूर्व होनेवाली देवी की कुलयात्रा मे दुलहिन को जाना पडता है, इसलिए वहाँ नगर के बाहर गिरिजा के मन्दिर के सामने वह उनके चरणो की धूल प्राप्त करना चाहेगी।

इधर रुक्मि के जोर देने पर भीष्मक शिशुपाल से अपनी कन्या का विवाह करने की तैयारी कर रहे होते हैं। गिरिजा मन्दिर से श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर ले जाते हैं। रुक्मि प्रतिरोध करता है, परन्तु रुक्मिणी के भाई के प्राणो की भीख मांगने पर कृष्ण उसे विरूप बनाकर बहिन के दुपट्टे से बांध द्वारिका ले आते हैं। बलराम उसे मुक्त कर देते हैं। रुक्मि अपमान और लज्जा के कारण कुण्डिनपुर नही जाता, वह भोजकटक नगरी बसाकर उसमे रहने लगता है, इस प्रतिज्ञा के साथ कि वह कृष्ण को मारकर रुक्मिणी के साथ कुण्डिनपुर मे प्रवेश करेगा।

श्रीमद्भागवत के अनुसार, कामदेव वासुदेव का ही अश है। वह पहले रुद्रदेव की क्रोधाग्नि मे भस्म हो गया था, जो अब रुक्मिणी के पुत्र के रूप मे प्रद्युम्न के नाम से उत्पन्न हुआ। कामरूपी शम्बरासुर उन्हे उठाकर समुद्र मे फेंक देता है। उसे एक मच्छ निगल लेता है। घूम-फिरकर वही मच्छ शम्बरासुर के रसोईघर मे पहुँच जाता है। फाडने पर उसमे शिशु प्रद्युम्न निकलता है, जिसे दासी मायावनी को दे दिया जाता है। मायावती पूर्व जन्म की रति है। वह दाल-भात बनाती है। वह शिशु को प्यार से पालती है। मायावती उस पर मुग्ध हो उठती है। प्रद्युम्न के पूछने पर वह अपना परिचय देती है। शम्बरासुर को मारने के लिए वह प्रद्युम्न को माहामाया नाम की विद्या सिखाती है। प्रद्युम्न शम्बरासुर से युद्ध करता है। विजयी प्रद्युम्न को मायावती रति आकाशमार्ग से द्वारिकापुरी ले जाती है। प्रद्युम्न को देखकर रुक्मिणी को अपने पुत्र की याद आ जाती है। नारद वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हैं।

सत्राजित् ने पहले कृष्ण को कलक लगाया था लेकिन अब वह स्यमतक मणि सहित अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को दे देता है। यह मणि उसे सूर्य ने उपासना से प्रसन्न होकर दिया था। 'मणि' को देवमन्दिर मे स्थापित कर दिया जाता है। वह मणि प्रतिदिन आठ भार[1] सोना

---

[1] भार का परिणाम ४ व्रीहि=१ गुंजा, ५ गुजा=१ पण, ८ पण=१ धरण, ८ धरण=१ कर्ष, ४ कर्ष=१ पल, १०० पल=१ तुला, २० तुला=१ भार।

देता है। श्रीकृष्ण वह मणि उग्रसेन को देने के लिए कहते हैं, जिसे वह अस्वीकार कर देता है। सत्राजित् का भाई प्रसेन वह मणि पहिनकर जगल मे जाना है। एक सिंह उसे मारकर मणि छीन लेता है, उससे यक्षराज जाम्ववान छीन लेता है। सत्राजित् कृष्ण पर शका करता है। श्रीकृष्ण यक्षराज की गुफा से उस मणि को ढूंढकर लाते हैं। श्रीकृष्ण जाम्ववान को घूसो से मार डालते हैं। श्रीकृष्ण वारह दिनो तक जव गुफा से नही निकले तो लोग घर चले जाते हैं। श्रीकृष्ण के न लौटने पर द्वारिका मे कुहराम मच जाता है। लोग सत्राजित् को वुरा-भला कहने लग जाते हैं। द्वारिकावाले दुर्गादेवी की उपासना करने लग जाते हैं। श्रीकृष्ण आकर सत्राजित् को मणि सौंप देते हैं। अन्त मे श्रीकृष्ण उससे सत्यभामा स्वीकार कर लेते हैं, साथ ही वह स्यमतक मणि न लेकर उसके वदले मे उससे निकलने वाला सोना लेते रहना स्वीकार कर लेते हैं।

लाक्षागृह में पाडवो के जल मरने की वात सुनकर, श्रीकृष्ण और वलराम हस्तिनापुर जाते हैं और भीष्म पितामह आदि से मिलकर सान्त्वना प्रकट करते हैं। इधर द्वारिका मे अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वा से कहते हैं, "तुम सत्राजित् से स्यमतक मणि छीन लो, क्योकि उसने हमसे छलकर सत्यभामा श्रीकृष्ण को व्याह दी।" पिता के वध को देखकर सत्यभामा जोर से विलखती है, फलत श्रीकृष्ण शतधन्वा को मार डालते हैं। अक्रूर और कृतवर्मा द्वारिका से भाग खडे होते हैं। अक्रूर श्वफल्क के पुत्र थे। अक्रूर के द्वारिका से चले जाने पर वहाँ वहुत उत्पात होते हैं। श्रीकृष्ण अक्रूर को वुलवाते हैं और स्यमतक मणि के वारे मे पूछते हैं और एक वार उसे दिखा देने के लिए कहते हैं जिससे वलराम, सत्यभामा और जाम्ववती का सन्देह दूर हो जाए।

सवका सन्देह दूर कर श्रीकृष्ण वह मणि अक्रूर को लौटा देते हैं। इसके वाद श्रीकृष्ण के कई विवाह हुए। वह पाण्डवो से मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ जाते हैं। वर्षाकाल वही विताते हैं। वे अर्जुन के साथ शिकार खेलने जाते हैं। सूर्यपुत्री कालिन्दी, जो यमुना मे रहती है, कृष्ण से विवाह करती है। वे युधिष्ठिर के पास जाते हैं। श्रीकृष्ण विश्वकर्मा से कहकर पाण्डवो के लिए सुन्दर भवन का निर्माण करा देते हैं। खाडव वन अग्निदेव को दिलवाने के लिए वे अर्जुन के सारथी वन जाते हैं। खाडव वन मे भोजन मिल जाने पर अग्निदेव प्रसन्न होकर गाडीव धनुष, चार श्वेत घोडे, एक रथ, दो अटूट वाणो वाले तरकस और अभेद्य कवच देते हैं।

कृष्ण द्वारिका लौटते हैं। वहाँ कालिन्दी का पाणिग्रहण करते हैं। अवन्ती के राजा विन्द और अनुविन्द दुर्योधन के पक्षधर हैं, उनकी वहन मित्रवन्दा कृष्ण को चाहती है। वह उनकी वुआ की कन्या है। कृष्ण कोसल देश के राजा की कन्या सत्या से भी विवाह सात वैलो को परास्त कर करते हैं। वह द्वारिका आ जाते हैं। कृष्ण की वुआ श्रुतकीर्ति केकय देश मे रहती है। उसकी कन्या भद्रा है। उसका भाई सन्तर्दन उसे कृष्ण को दे देता है। मद्रदेश के राजा की कन्या सुलक्षणा का कृष्ण स्वयवर मे हरण करते हैं। भौमासुर का वधकर कृष्ण उसकी सोलह हजार कन्याओ का उद्धार करते हैं और उनसे विवाह कर लेते हैं। पश्चात् श्रीकृष्ण गदा के प्रहार से मुर राक्षस का अन्त करते हैं। भौमासुर के वध पर श्रीकृष्ण के गले मे पृथ्वी वैजयन्ती माला डाल देती है। वह कुण्डल, वरुण का छत्र और महामणि भी देती है। भगवान् की स्तुति के स्वर निकलते है। भौमासुर के पुत्र भगदत्त को अभयदान मिलता है।

श्रीकृष्ण इन्द्र के उपवन से कल्पवृक्ष उखाड कर लाते हैं और द्वारिका के उपवन मे उसे लगा देते हैं। राजकुमारियाँ श्रीकृष्ण की सेवा करती हैं। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की सबसे प्रिय पत्नी है। रुक्मि की कन्या रुक्मिवती स्वयवर मे प्रद्युम्न का वरण करती है। रुक्मिणी की कन्या चारुमती का विवाह कृतवर्मा के पुत्र बलि से होता है। रुक्मि अपनी पोती रुक्मिणी के पोते (नाती) अनिरुद्ध को व्याह देता है, यद्यपि यह विवाह धर्म के अनुकूल नही होता। विवाहोत्सव मे रुक्मि बलराम से जुआ खेलता ह और मारा जाता है।

बाणासुर महात्मा बलि का पुत्र है। ताण्डवनृत्य मे वाद्य बजाकर उसने शिव को प्रसन्न कर लिया है। उसकी कन्या ऊषा स्वप्न मे प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखकर मोहित हो जाती है। उसकी सहेली चित्रलेखा कई चित्र बनाती है। उनमे से वह अनिरुद्ध को अपना प्रिय बताती है। चित्रलेखा आकाशमार्ग से अनिरुद्ध का अन्त पुर मे ले जाती है। दोनो रमण करते हैं। ऊषा को गर्भ रह जाता है। पहरेदारो स पता चलने पर, बाणासुर अन्त पुर मे जाता है। वह अनिरुद्ध को नागपाश से बाँध लेता है। नारद से अनिरुद्ध का पता पाकर श्रीकृष्ण शोणितपुर पर हमला करते है। शकर बाणासुर की सहायता करते हैं। अन्त मे शकर के अनुरोध पर श्रीकृष्ण बाणासुर के हाथ काटकर उसे छोड दते है। अनिरुद्ध और ऊषा का विवाह होता है।

बलराम नन्द और गोपियो से मिलने क लिए व्रज जाते है, नन्द व यशोदा को प्रणाम करते हैं। ग्वालबाल, गोपियाँ उनसे श्रीकृष्ण के समाचार पूछती है और जानना चाहती हैं कि क्या वे हमारी याद करते हैं? क्या वे नन्द और यशोदा को देखने के लिए यहाँ आएँगे? क्या वे हमारी सेवा का स्मरण करते हैं? वे हमे छोडकर परदेश चले गये। वे अपने ग्राम्य चरित्र के दैन्य को स्वीकार करती हुई नगर की स्त्रियो पर व्यग्य करती हैं। उन्हे विश्वास है कि नगर-वनिताएँ चतुर होने से कृष्ण की मीठी-मीठी बातो मे नही फँसी होगी। वे अतीत की स्मृति कर रोने लगती हैं। बलराम उन्हे सान्त्वना देते हैं। वे चैत और वैशाख के महीने वही बिताते हैं। वे गोपियो के साथ यमुना मे जलक्रीडा करते हैं।

इधर बलराम की अनुपस्थिति मे पौड्रक वासुदेव होने का दावा करता है। कृष्ण पौड्रक और काशीनरेश पर आक्रमण कर युद्ध मे उनके सिर धड से अलग कर देते हैं। काशीराज का पुत्र सुदक्षिण, पिता का वध करनेवाले श्रीकृष्ण के वध के लिए, शकर के उपदेश से दक्षिणाग्नि की अभिचार विधि से आराधना करता है। वह कृष्ण के लिए अभिचार (मारण का पुरश्चरण) करता है। मूर्तिवान अग्निदव यज्ञ-कुण्ड से उठता है और द्वारिका को भस्म करने के लिए पहुँचता है। श्रीकृष्ण इस माहेश्वरी कृत्य को पहचान जाते है, सुदर्शन चक्र से वे उसकी हत्या कर देते है। बलराम भौमासुर के मित्र द्विविद वानर के उत्पात को शान्त करते हैं। जाम्बवती का पुत्र साम्ब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को स्वयवर से हरकर ले आता है। कौरव उसका पीछा करते हैं। वे साम्ब को बाँधकर लक्ष्मणा को हस्तिनापुर ले आते हैं। इसकी यदुवशी पर गहरी प्रतिक्रिया होती है। यदुवशी आक्रमण करना चाहते हैं, परन्तु बलराम रोक देते हैं। वह हस्तिनापुर आकर एक उपवन मे ठहर जाते है और उद्धव को धृतराष्ट्र के पास भेजते है। कौरव उनकी अगवानी करते हैं। वे नववधू के साथ साम्ब को वापस करने की माँग करते हैं। कौरव यह सुनकर तिलमिला उठते हैं। कौरवो के अपशब्दो से बलराम को क्रोध आ जाता है। वे हल की नोक से हस्तिनापुर को उखाड देते है। कौरव क्षमा माँगकर साम्ब और लक्ष्मणा को लौटा देते हैं। भारी दहेज के साथ बलराम वापस लौटते हैं। नारद श्रीकृष्ण की

दिनचर्या देखने जाते हैं। वे पाते हैं कि योगमाया से श्रीकृष्ण सब जगह मौजूद हैं। जरासध के द्वारा वन्दी राजाओ का दूत श्रीकृष्ण के पास आता है। वह कृष्ण की सुधर्मा सभा मे मिलता है। तभी नारद वहाँ आ जाते हैं। यादवो के इस विचार पर कि आक्रमण करके जरासध को जीत लिया जाए, उद्धव परामर्श देते हैं कि राजसूय यज्ञ और शरणागतो की रक्षा के लिए जरासध पर विजय प्राप्त करना ज़रूरी है लेकिन भीम ही उसे द्वन्द्वयुद्ध मे हरा सकते है। दूसरे वह वडा ब्राह्मण-भक्त है। श्रीकृष्ण जरासध के पास गिरिव्रज दूत भेजते हैं। श्रीकृष्ण द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान करते हैं। राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीमसेन, अर्जुन और कृष्ण गिरिव्रज जाते हैं। वे ब्राह्मण के वेष मे जाते हैं। दैत्यराज जरासध इस तथ्य को जानते हुए भी उन्हें युद्ध की भीख देता है। वह भीम से द्वन्द्वयुद्ध मे मारा जाता है। जरासध की मृत्यु के वाद, वदी राजाओ को मुक्त कर कृष्ण इन्द्रप्रस्थ वापस आ जाते हैं। राजसूय यज्ञ मे 'अग्रपूजा' के प्रश्न को लेकर विवाद खडा हो जाता है। श्रीकृष्ण इसके लिए सवसे अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं। शिशुपाल सहदेव के प्रस्ताव का न केवल विरोध करता है, प्रत्युत श्रीकृष्ण को भला-बुरा कहता है। उनके भक्त शिशुपाल पर आक्रमण करना चाहते हैं परन्तु श्रीकृष्ण ही चक्र से उसका सिर धड से अलग कर देते हैं। शिशुपाल के निधन के वाद, युधिष्ठिर अवभृथ-स्नान (यज्ञान्त स्नान) करते हैं।

लीला-वर्णन का मुख्य स्रोत

'रिट्ठणेमिचरिउ' के यादवकाण्ड मे यादवो और कृष्ण से सम्वन्धित जिस वृत का वर्णन है, उसका महाभारत मे उल्लेख नही है। महाभारत मे जिस वृत्त का उल्लेख है वह आलोच्य कृति के कुरुकाण्ड और युद्धकाण्ड मे आता है। प्रश्न है कि कृष्ण के जन्म से लेकर बाल्यकाल तक की जिन घटनाओ का वर्णन 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे है और जिनका प्रभाव हिन्दी साहित्य की कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि 'सूर' के सगुण-लीला गान मे देखा जाता है, उनका स्रोत क्या है ?

'पउमचरिउ' मे स्वयभू स्पष्टरूप से स्वीकार करते हैं कि उन्होंने आचार्य रविषेण के प्रसाद से, परम्परा से आयी हुई रामकथा रूपी नदी मे अवगाहन किया। परन्तु ऐसा कोई उल्लेख 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्रारम्भिक प्रस्तावना मे उपलब्ध नही है। आचार्य रविषेण का समय है ६७४ और 'हरिवशपुराण' का ७८३ ई०। पुष्पदन्त ने स्वयभू का उल्लेख किया है। वह १०वी सदी मे हुए। इससे यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि स्वयभू का आविर्भाव ८वी-९वी शती मे हुआ। लेकिन दो सौ वर्षों की यह लम्वी अवधि, किसी कवि के जीवन-वृत्त और रचनाकाल का निश्चित विंदु निर्धारित करने मे कोई अर्थ नही रखती।

ई० ७७८ मे उद्योतनसूरि की 'कुवलयमाला' मे यह उल्लेख है—

> "वुहजण-सहस्स-दइय हरिव सुप्पत्तिकारय पढम।
> वदामि वदिय पिहु हरिवस चेव विमलपय॥"

आचार्य जिनसेन द्वारा रचित 'हरिवशपुराण' की भूमिका मे, सम्पादक अनुवादक प० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने उक्त श्लोक का यह अर्थ किया है—

'मैं हजारो वुधजनो के लिए प्रिय हरिवशोत्पत्तिकारक प्रथम वन्दनीय और विमलपद की वन्दना करता हूँ।' यहाँ श्लेष से विमलपद के (विमलसूरि के चरण, और विमल हैं पद जिसके

ऐसा हरिवंश) दो अर्थ घटित होते हैं।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के सम्पादक स्व० डॉ० हीरालाल जैन के उक्त अवतरण पर यह टिप्पणी है। उन्होंने (पं० पन्नालालजी ने) 'कुवलयमाला' में विमलकृत हरिवंशपुराण या चरित के उल्लेख का कथन किया है किन्तु उन्होंने उक्त अंश के उस पाठ को सर्वथा भुला दिया है जिसे 'कुवलयमाला' के सम्पादक (डॉ० उपाध्ये) ने अपने संस्करण मे स्वीकार किया है। उसमे 'हरिवंस' की जगह 'हरिवरिस' पाठ होने से कुछ अन्य अर्थ भी निकाला जा सकता है। उन्होने रविषेणाचार्य कृत 'पद्मपुराण' का प्रस्तुत रचना मे, तथा 'महापुराण' मे इस रचना का अनुकरण किये जाने का उल्लेख किया है, किन्तु इन महत्त्वपूर्ण मतो का जितनी सावधानी और गम्भीरता से प्रमाणीकरण वांछनीय था, वह यहाँ नही पाया जाता। प्रश्न है, क्या 'कुवलयमाला' के 'विमलपद' मे प्राकृत 'पउमचरिउ' के रचयिता विमलसूरि का उल्लेख है या किसी दूसरे विमलसूरि का ? तथ्य यह है कि जिनसेन के पूर्व लिखित 'हरिवंशपुराण या चरित' अभी तक उपलब्ध नही है। अत इस विषय मे कुछ कहना अटकल लगाना मात्र है। 'पउमचरिउ' के रचयिता विमलसूरि जैन चरित काव्य-परम्परा के आदि कवि हैं फिर भी स्वयंभू ने आचार्यों की लम्बी परम्परा मे उनका उल्लेख नही किया। वह अपने रामकाव्य का सम्बन्ध सीधा रविषेण से जोडते हैं। यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि रामकाव्य-परम्परा की तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे पूर्ववर्ती कृष्णकाव्य-परम्परा का प्रारम्भ मे उल्लेख करना कवि ने क्यो नही उचित समझा ? जबकि उद्योतनसूरि का सन्दर्भ और आचार्य जिनसेन का हरिवंशपुराण उनके सम्मुख था।

यहाँ यह भी उल्लेख है कि हरिवंशपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन (महापुराण के रचयिता जिनसेन से भिन्न) ने ६६वें सर्ग मे भगवान महावीर से लेकर लोहाचार्य तक की आचार्य-परम्परा दी है। फिर वीर-निर्वाण के ६८३वर्ष के वाद की अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—विनयधर, श्रुतिगुप्त, ऋषिगुप्त, शिवगुप्त, मन्दरार्य, मित्रवीर्य, बलदेव, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ति, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिषेण, ईश्वरसेन, नन्दिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शान्तिषेण, जयसेन, अमितसेन, कीर्तिषेण और जिनसेन (हरिवंश के रचयिता)। लोहाचार्य का अस्तित्व वि० स० २१३ माना जाता है। इन नामो मे विमलसूरि का नाम नही है।

कुवलयमाला के उक्त श्लोक का एक अर्थ यह भी हो सकता है (मूल पाठ मे किसी प्रकार का परिवर्तन किये बिना)—

"हजारो बुधजनो के प्रिय और वन्दित, हरिवंश के उत्पत्तिकारक को प्रथम वन्दना करता हूँ और फिर विमलपद विशाल हरिवंश को।" हरिवंश से यह स्पष्ट नही है कि यह वंश का नाम है या ग्रन्थ का। जो भी हो, यदि यह पुराण का नाम है तो उसके और उसके रचयिता के बारे मे कुछ नही कहा जा सकता। जिनसेन के हरिवंशपुराण का रचनाकाल ७८३ ई० है। उद्योतन सूरि ७७८ मे हुए। अत यह निश्चित है कि यदि सदर्भित श्लोक मे 'हरिवंश' पाठ ही है तो जिनसेन आचार्य के पहले एक और हरिवंश लिखा जा चुका था जो अभी तक अनुपलब्ध है। वह उपलब्ध भी हो जाए तो भी वस्तुस्थिति मे अन्तर नही पडता। यह प्रश्न तब भी अनुत्तरित रहता है कि 'हरिवंशपुराण' या 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे वर्णित कृष्ण की बाल-

लीलाओ का मुख्य स्रोत क्या है। बहुत-सी चमत्कारी लीलाएँ श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव करते हैं, श्रीकृष्ण का बेटा प्रद्युम्न करता है, परन्तु जिस तरह की लीलाएँ श्रीकृष्ण के बचपन और यौवन से जुडी हुई है, वे नयी हैं और ऐसी हैं कि जिनकी उपेक्षा करना जैन पुराणकारों के लिए सम्भव नही था। जैसाकि कहा जा चुका है, और जैसाकि पाठक देखेंगे कि चाहे स्वयभू हो या पुष्पदन्त, दोनो कृष्ण की बाल दैवी-लीलाओ का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, दूसरे कारणो के अलावा, इसका एक कारण लोकरुचि भी रहा होगा। चूंकि जिनसेनाचार्य के 'हरिवशपुराण' और महाकवि स्वयभू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' में वर्णित उक्त लीलाओ और दूसरी बातो मे कतिपय असमानताओ के बावजूद काफी कुछ समानताएँ हैं, अत तुलनात्मक अध्ययन के लिए 'हरिवशपुराण' के घटनाक्रम का सक्षिप्त विवरण यहाँ देना उचित होगा।

हरिवश की उत्पत्ति का विवरण देते हुए हरिवश-पुराण के रचयिता उसका सम्बन्ध कौशाम्बी के राजा सुमुख और वनमाला से जोडते हैं। इसका उल्लेख पिछले पृष्ठो मे किया जा चुका है। जहाँ तक प्रारम्भ से लेकर समुद्रविजय द्वारा राज्य की बागडोर सम्हालने तक का सम्बन्ध है यह घटनाक्रम दोनो मे बहुत कुछ समान है।

यादव-काण्ड के तीन नायक

'रिट्ठणेमिचरिउ' के यादवकाण्ड मे तीन लीलानायक हैं—वसुदेव, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न। शम्बुकुमार प्रद्युम्न के बाद आता है, वैसे वह भी कम करामाती और शौर्य सम्पन्न नही है, परन्तु कवियो ने विस्तार-भय से उसके व्यक्तित्व को अधिक नही उभारा। ये तीनों यदुवशी हैं। उन्हे लीलाविलास पूर्वभव के पुण्य के प्रभाव से मिला या यह आदिपुरुष 'हरि' के रक्त का प्रभाव था, यह शोध का विषय है। वसुदेव और प्रद्युम्न की लीलाओ के वर्णनक्रम मे 'रिट्ठणेमिचरिउ' क लीला वर्णन क्रम से थोडी भिन्नता है, जिसकी चर्चा अन्यत्र प्रसग आने पर की जाएगी। बहरहाल श्रीकृष्ण के बाल्यकाल की लीलाओ से लेकर कसवध का (कस भी यदुवशी था) जो रूप 'हरिवशपुराण' मे मिलता है, वह यहाँ दिया जाता है। जिनसेन लिखते हैं—जैसे-जैसे देवकी का गर्भ बढ रहा था वैसे-वैसे कस उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु कृष्ण सातवें ही माह मे उत्पन्न हो गये, इसलिए कस को इसका पता नही चल सका। उनके जन्म पर शुभ चिह्न प्रकट हुए। घनघोर वर्षा के कारण वसुदेव ने छत्र तान लिया और बलराम ने बालक को उठा लिया। रात मे वे घर से निकले, गोपुर के द्वार बालक के पैरो के स्पर्श से खुल गये। वे चुपचाप नगर के बाहर आ गये। बालक की नाक मे पानी की बूंद चली गयी और वह जोर से छीका, उसका स्वर गम्भीर था। गोपुर के ऊपर उग्रसेन रहते थे। उन्होने असीस दी, "तू निर्विघ्न रूप से चिरकाल तक जीवित रह।" बलदेव और वसुदेव ने उग्रसेन से यह रहस्य किसी को न बताने का अनुरोध किया। नगर के बाहर एक बैल अपने सीग के प्रकाश मे उन्हे ले गया। श्रीकृष्ण के प्रभाव से यमुना का अखण्ड प्रभाव खण्डित हो गया। वे नदी पारकर वृन्दावन पहुँचे। अत्यन्त विश्वसनीय सुनद गोप और यशोदा की पुत्री से बदलकर वे वापस आ गये। प्रसव की खबर लगने पर कस देवकी के कमरे मे गया, यह सोचकर कि कही इसका पति मेरी मृत्यु का कारण न बन जाए, उसने नवजात कन्या की नाक चपटी कर दी।

उधर वृन्दावन मे बालक का नाम कृष्ण रखा गया। यह अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ चिह्नो तथा रेखाओ से युक्त थे। इस बीच कस का भला चाहने वाला वरुण ज्योतिषी उससे कहता है कि

काम-तमामकर, तलवार लेकर आक्रमण करते हुए कस को पटककर मार डालते हैं। श्रीकृष्ण हँस पडते हैं। वह अनावृष्टि के साथ वसुदेव के पास जाते हैं। उग्रसेन-पद्मावती को बन्धनमुक्त करते हैं। इधर जीवद्यशा अपने पिता जरासध के पास पहुँचती हैं।

कृष्ण के पास राजा सुकेतु का दूत आता है और सत्यभामा से विवाह करने का निवेदन करता है। कृष्ण निवेदन स्वीकार कर लेते हैं। वलराम सत्यकेतु के भाई रतिमाल की कन्या रेवती का पाणिग्रहण करते हैं।

इधर जीवद्यशा से पूरी बात सुनकर जरासध यम के समान भयकर अपने पुत्र कालयवन को भेजता है। शत्रुओ से सत्रह वार युद्धकर वह अतुल मालावर्त पर्वत पर वीर- गति को प्राप्त होता है। पश्चात् जरासध का भाई अपराजित जाता है। तीन सौ छयालीस वार युद्ध कर वह भी अन्त मे श्रीकृष्ण के वाण का लक्ष्य वनता है।

शौर्यपुर मे, तीर्थंकर नेमिनाथ के गर्भ मे आने के पहले ही समुद्रविजय के घर पन्द्रह माह तक रत्नो की वर्षा होती है। शिवादेवी स्वप्न देखती हैं। इन्द्र के आदेश पर कुवेर माता-पिता का अभिषेक करते हैं। नेमि जन्म लेते हैं। सुमेर पर्वत पर उनका अभिषेक होता है। कुवेर शौर्यपुर की शोभा वढाता है। इन्द्र जिनेन्द्र की स्तुति करता है। शौर्यपुर मे शिशु नेमि वढने लगते हैं। वह जब कुछ वडे होते हैं तो इन्द्र 'महानन्द' नाटक का अभिनय करता है जिसमे ताण्डव नृत्य सम्मिलित है।

अपराजित की मृत्यु सुनकर जरासध सतप्त हो उठता है। वह मित्र-राजाओ को युद्ध मे पहुँचने का निमन्त्रण देकर कूच करता है। वृष्णि और भोजकवश के लोग विचारविमर्श कर शौर्यपुर से वाहर निकलते हैं, पश्चिम दिशा मे कही आश्रय की खोज मे। उन्हें विंध्याचल मिलता है। जरासध पीछा करता है। भाग्य के नियोग से अर्धभरत क्षेत्र मे निवास करनेवाली देवियाँ अपनी विक्रिया से वहुत-सी चिताएँ रचकर यादवो को उनमे जलता हुआ दिखाती हैं। एक वुढिया से यह जानकर कि यादव आग मे जल मरे, वह लौट जाता है। दशार्ह, महाभोज, वृष्णि और कृष्ण समुद्रतट पर पहुँचते हैं, उसमे प्रवेश करना सम्भव नही देखकर कृष्ण और वलराम तीन दिन का उपवास करते हैं। इन्द्र के आदेश से समुद्र हट जाता है। कुवेर द्वारिका नगरी की रचना करता है। वारह योजन लम्बी और नौ योजन चौडी। सव लोग वहाँ रहने लगते हैं। नेमिकुमार का भी वचपन वहाँ वीतने लगता है।

नारद मुनि, कृष्ण की अनुज्ञा से उनके अन्त पुर मे प्रवेश करते हैं। सत्यभामा दर्पण मे मुँह देखने के कारण, उन्हे नही देख पाती है। नारद इसे अपनी अवज्ञा समझते हैं। मन मे गाँठ बाँधकर, वह राजा भीष्म के रनिवास मे जाते हैं। उनकी दृष्टि विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी पर पडती है। वह उसके हृदय-पटल पर कृष्ण का सौन्दर्य चित्राकित कर देते हैं और उसका चित्रपट बनाकर द्वारिका मे कृष्ण को दिखाते हैं। इधर रुक्मिणी की बुआ उसे मुनि अतिमुक्तक के भविष्य कथन की याद दिलाती है जिसके अनुसार उसे श्रीकृष्ण की पट्टरानी होना है। रुक्मि अपनी वहिन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है। बुआ रुक्मिणी का अभिप्राय जानकर श्रीकृष्ण को लेखपत्र पहुँचाती है जिसमे उल्लेख है कि रुक्मिणी नागदेव की पूजा के दिन वाहर उद्यान मे मिलेगी। श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचकर उसका अपहरण करते हैं। वह अपने हाथो उसे रथ पर बैठाते हैं। शिशुपाल और श्रीकृष्ण में जवर्दस्त भिडत होती है। पहले तो रुक्मिणी को विश्वास नही होता कि श्रीकृष्ण और वलराम रुक्मि की भारी सेना से निपट

सकेंगे। बाद मे उसे विश्वास हो जाता है और वह उनसे अपने भाई के प्राणो की भीख माँगती है।

युद्ध जीतकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारिका आते हैं। एक दिन कृष्ण रुक्मिणी के द्वारा उगला हुआ पान वस्त्र के छोर मे बांधकर सत्यभामा के पास जाते हैं। वह उसे सुगन्धित द्रव्य समझकर, पीसकर अपने शरीर पर मल लेती है। कृष्ण उसकी खूब हँसी उडाते हैं। सत्यभामा रुक्मिणी को देखने का आग्रह करती है। वह रुक्मिणी को मणिमय वावडी के किनारे खडाकर, सत्यभामा के पास आते है। और बोलते है, "तुम उद्यान मे चलो, मैं रुक्मिणी को लेकर आता हूँ।" सत्यभामा आगे जाती है और कृष्ण पीछे-पीछे जाकर झाडी की ओट मे छिपकर खडे हो जाते हैं। रुक्मिणी आम्र की शाखा के सहारे पजो के वल खडी हुई है, आँखे फलो पर हैं। सत्यभामा उसे देवी समझती है और अजली से फूल बखेर देती है। वह अपने सौभाग्य की भीख माँगती है और सौत के लिए दुर्भाग्य। इतने मे कृष्ण आ जाते हैं। रुक्मिणी सत्यभामा को प्रणाम करती है। दोनों मे सुलह हो जाती है।

हस्तिनापुर से दुर्योधन कृष्ण को खबर भेजता है जिसमे यह उल्लेख है—यदि मेरे कन्या हुई, तो दोनों रानियो—सत्यभामा और रुक्मिणी मे से जिसके पुत्र होगा, वह उसका पति होगा। यह समाचार पाकर, रुक्मिणी और सत्यभामा मे यह तय हो जाता है कि जिसके पुत्र न होगा उसकी कटी हुई केशलता को विवाह के समय पैरो के नीचे रखकर वरवधू स्नान करेगे। दोनो के एक साथ पुत्र हुए परन्तु रुक्मिणी के पुत्रजन्म की सूचना पहले मिलने पर वह वडा घोषित किया जाता है। धूमकेतु नामक असुर रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न को उठाकर ले जाता है, और खदिरवन मे तक्षशिला के नीचे उसे रखकर चला जाता है। मेघकूट नगर का राजा कालसवर अपनी पत्नी कनकमाला के साथ उसे अपने घर ल जाता है। कनकमाला बालक को इस शर्त पर स्वीकार करती है कि उसे युवराज बनाया जाएगा।

जागने पर पुत्र को न पाकर रुक्मिणी खूब विलाप करती है। श्रीकृष्ण उसे खोजने का आश्वासन देते हैं। वह जैसे ही शिशु को खोजने का प्रयत्न करते है वैसे ही नारद आ जाते हैं, और उन्हे पुत्र मिलने की आशा वँधाते हैं। नारद रुक्मिणी को खुद ढाढस वँधाते हैं। वह वहाँ से सीमधर स्वामी के पास (पुष्कलावती देश के पुण्डरीकिणी देश मे) जाते हैं। चक्रवर्ती पद्मरथ के पूछने पर, सीमधर स्वामी प्रद्युम्न के पूर्वभवो का वर्णन करते हैं जो मधु और कैटभ के पयार्यो तक चलती है। मधु का जीव रुक्मिणी की कोख से प्रद्युम्न के रूप मे जन्मता है जव कि कैटभ का जीव जाम्ववती की कोख से शम्ब के नाम से जन्म लेगा। यह वृतान्त जानकर नारद मेघकूट नगर जाते हैं। वहाँ से द्वारिका जाते हैं और रुक्मिणी को शुभ सूचना देते हैं कि प्रद्युम्न प्रज्ञप्ति विद्या प्राप्त कर सोलहवें वर्ष मे अवश्य आएगा।

एक समय नारद कृष्ण की सभा मे आते हैं, और जाम्ववती के बारे मे कहते हैं। कृष्ण जाम्व विद्याधर की कन्या जाम्बवती से विवाह करते हैं। जाम्ववती का भाई विश्वक्सेन भी उनके साथ आता है। इसके वाद श्रीकृष्ण और भी अनेक कन्याओ से विवाह करते हैं। उनमे से कुछेक के नाम इस प्रकार हैं—

१ श्लक्षणरोम की कन्या लक्ष्मणा, २ राष्ट्रवर्धन की कन्या सुसीमा, ३ मेरु की कन्या गौरी, ४ हिरण्यनाभ की कन्या पद्मावती, और ५ इन्द्रगिरि की कन्या गान्धारी।

इस प्रकार सत्यभामा, रुक्मिणी और जाम्बवती को मिलाकर उनकी कुल आठ पट्टरानियाँ होती हैं।

रिट्ठणेमिचरिउ और हरिवंशपुराण

रिट्ठणेमिचरिउ के यादवकाण्ड की कुछ घटनाएं और कथाएँ 'हरिवंशपुराण' मे नही हैं। ऐसा होना सहज है। 'हरिवंशपुराण' पुराण है, और पुराण विस्तार चाहता है। इस कारण अन्तर होना स्वाभाविक है। 'हरिवंशपुराण' के अनुसार नेमिनाथ का जन्म शौर्यपुर में होता है जबकि रिट्ठणेमिचरिउ के अनुसार उनका जन्म द्वारिका मे होता है। यह अन्तर तथ्यात्मक अन्तर है, जो विस्तार से विचार की अपेक्षा रखता है। स्व० डॉ० हीरालाल जैन तथा स्व० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के प्रधान सम्पादक द्वय) ने 'हरिवंशपुराण'(डॉ०पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित)की भूमिका मे लिखा है—"पुराण विषयक जैन ग्रन्थो की सख्या सैकडो मे है और वे प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश तथा तमिल, कन्नड आदि सभी भारतीय भाषाओ मे मिलते हैं। इन विविध रचनाओ मे वर्णन-भेद पाया जाता है जिसका परस्पर तथा वैदिक पुराणो के साथ तुलनात्मक अध्ययन-अनुसधान एक रोचक और महत्त्वपूर्ण विषय है। जैन 'हरिवंशपुराण' मे उक्त प्रकार से विषय-प्रतिपादन के साथ-साथ हरिवंश की एक शाखा यादवकुल और उसमे उत्पन्न हुए दो शलाकापुरुषो का चरित्र विशेष रूप से वर्णित हुआ है। एक बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और दूसरे नवें नारायण श्रीकृष्ण। ये दोनो चचेरे भाई थे। इनमें से एक ने अपने विवाह के समय निमित्त पाकर सन्यास ले लिया और दूसरे ने कौरव-पाण्डव युद्ध मे अपना बल-कौशल दिखलाया। एक ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श प्रस्तुत किया, दूसरे ने भौतिक लीला का। एक ने निवृत्ति-परायणता का मार्ग प्रशस्त किया, दूसरे ने प्रवृत्ति का। इसी प्रसग से 'हरिवंशपुराण' में महाभारत का कथानक सम्मिलित पाया जाता है। इस विषय की सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रंश की प्राचीन रचनाएँ बहुसख्यक हैं। 'हरिवंशपुराण' के नाम से सस्कृत मे धर्मकीर्ति, श्रुतकीर्ति, सकलकीर्ति, जयसागर, जिनदास व मगरस कृत काव्यग्रन्थ हैं।

'पाण्डवपुराण' नाम से श्रीभूषण, शुभचन्द्र, वादिचन्द्र, जयानन्द, विजयगणि, देवविजय, देवप्रभ, देवभद्र और शुभवर्धन कृत काव्यग्रन्थ हैं।

नेमिनाथचरित के नाम से सूराचार्य, उदयप्रभ, कीर्तिराज, गुणविजय, हेमचन्द्र, भोजसागर, तिलकाचार्य, विक्रम नरसिंह, हरिषेण, नेमिदत्त आदि कृत रचनाएँ ज्ञात हैं।

प्राकृत में रत्नप्रभ, गुणवल्लभ और गुणसागर द्वारा रचित रचनाएँ हैं। तथा अपभ्रंश मे स्वयभू, धवल, यश कीर्ति, श्रुतकीर्ति, हरिभद्र, रयधू द्वारा रचित पुराण व काव्य ज्ञात हो चुके हैं।

इन स्वतन्त्र रचनाओ के अतिरिक्त जिनसेन, गुणभद्र व हेमचन्द्र तथा पुष्पदत कृत सस्कृत एव अपभ्रंश महापुराणो में भी यह कथानक वर्णित है, एव उसकी स्वतन्त्र प्राचीन प्रतियाँ भी पाई जाती हैं। हरिवंशपुराण, अरिष्टनेमि या नेमिचरित, पाण्डवपुराण व पाण्डवचरित आदि नामो से न जाने कितनी सस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश रचनाएँ अभी भी अज्ञात रूप से भण्डारो में

पडी होनी सम्भव हैं। प्राचीन हिन्दी और कन्नड मे रचित ग्रन्थ भी अनेक हैं। अत प्रस्तुत ग्रन्थ (हरिवंशपुराण) के सम्पादक ने अपनी प्रस्तावना के पृष्ठ दो पर प्रस्तुत रचना के अतिरिक्त एक सस्कृत और एक अपभ्रश रचनामात्र का जो उल्लेख किया है उससे इस विषय पर जैन साहित्य-रचना के सम्बन्ध मे भ्रम नही होना चाहिए।"

उक्त विद्वानो ने 1962 मे जैन पुराण-साहित्य के सम्पादन, प्रकाशन और तुलनात्मक अध्ययन की जो आवश्यकता प्रतिपादित की थी, उसमे अभी तक विशेष प्रगति परिलक्षित नही हुई है। कोई भी पुराण साहित्य हो वह भारतीय जीवन और सस्कृति का सन्दर्भ ग्रन्थ है, क्योकि उसमे समग्र जीवन का प्रतिविम्ब अकित होता है, पुरानता के वावजूद उसमे समकालीनता का वोध होता है। यह सच है कि सारा पुराणसाहित्य मौलिक, प्रामाणिक और जीवनवोध से भरपूर नही है, फिर भी ऐतिहासिक स्रोत का पता लगाने के लिए चुनी हुई पुराण-कृतियो का, सघन वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के साथ, सम्पादन-प्रकाशन पहली और महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। सस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रश किसी सम्प्रदाय या प्रदेश की भाषाएँ न होकर, एक ही राष्ट्रीय अभिव्यक्ति की माध्यम रही हैं। उन भाषाओ मे लिखित पुराण साहित्य का जितना सास्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व है, उससे कही अधिक उसका भाषिक महत्त्व है और जव तक 'हरिवश पुराण' से सम्वन्धित प्राचीन स्रोनो और साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओ का ऐतिहासिक अनुक्रम मे अध्ययन नही होता तव तक तथ्य सम्बन्धी मतभेदो का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण सम्भव नही है। इसके लिए जरूरी है कि आचार्य जिनसेन और गुणभद्र, और स्वयभू के पूर्ववर्ती हरिवश साहित्य की खोजकर उसे प्रकाश मे लाया जाए। उक्त सामग्री के अभाव मे यह कहना कठिन है कि जिनसेन के हरिवशपुराण का प्रभाव 'रिट्ठणेमिचरिउ' पर कितना है, या है ही नही, या 'रिट्ठणेमिचरिउ' की कथावस्तु, रचना-प्रेरणा और सदर्भ का उपजीव्य क्या है।

रिट्ठणेमिचरिउ : यादवकाण्ड

'रिट्ठणेमिचरिउ' (अरिष्टनेमिचरित) का दूसरा नाम 'हरिवशपुराण' है। अरिष्टनेमि जैनो के वाईसवें तीर्थंकर हैं, उनका सम्बन्ध हरिवश से है। जन्म से लेकर मोक्ष-प्राप्ति तक उनके जीवन की प्रमुख घटनाओ और कार्यो की सही जानकारी के लिए हरिवश की उत्पत्ति, उसकी प्रमुख शाखाओ और पात्रो के प्रमुख जीवन-कार्यों का उल्लेख जरूरी है। यही कारण है कि 'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रारम्भ यादवकाण्ड से होता है, जिसकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

परम्परागत मगलाचरण, आत्मविनय और हरिवश के महत्त्व का कथन कर चुकने के वाद, कवि सवके आशीर्वाद से कथा प्रारम्भ करता है। मगधराज श्रेणिक अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी से पूछता है, "जिनमत मे हरिवश किस प्रकार है ? दूसरो के मत मे यह कथा उल्टी है।" राजा श्रेणिक के मन मे भ्रान्ति है जिसे वह दूर करना चाहता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो हमारे पास यह जानने का कोई प्रमाण नही है कि वस्तुतः भगवान महावीर के समय जैन मत और दूसरे मत मे हरिवश की कथा का स्वरूप क्या था। राजा श्रेणिक दूसरे मत की जिस हरिवश-कथा की आलोचना करता है वह वस्तुत व्यास द्वारा रचित 'महाभारत' की कथा है जो भगवान महावीर के समय लोगो को ज्ञात थी या नही—यह कहना कठिन है

फिर भी जब राजा श्रेणिक कहता है कि दूसरे मत मे हरिवशकथा उल्टी-उल्टी सुनी जाती है, जैसे नारायण नर की सेवा करते हैं, वलराम खेती करते हैं, घोडो का सवरण करते हैं। धृतराष्ट्र और पाण्डु का जन्म नियोग से हुआ, द्रौपदी के पाँच पति वताये जाते है। इस प्रकार असत्य कथन किया जाता है। भीष्मपितामह के वारे मे श्रेणिक को शका है कि यदि उन्हे इच्छा-मरण का वर प्राप्त था तो उन्होंने कालगति क्यो की ? द्रोणाचार्य धनुर्विद्या मे अजेय थे तो उनकी मृत्यु क्यो हुई ? कर्ण यदि कान से जन्म लेता तो उसे जन्म देने वाली कुन्ती क्यो नही मर जाती ? क्या मनुष्य घडे से उत्पन्न होता है ? फिर कुरुकुलगुरु अगस्त घडे से कैसे पैदा हुए ? भाई आपस मे कितने ही लडें, वे एक-दूसरे का खून नही पी सकते। वस्तुत ये शकाएं स्वयभू के समय की हैं, जिनका समाधान खोजने के लिए अन्य जैन पुराणकारो की तरह कवि ने भी 'रिट्ठणेमिचरिउ' की रचना की। गौतम गणधर, राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में, जो कुछ कहते हैं उसका सार इस प्रकार है—

हरिवश मे दो प्रमुख पुरुष हुए शूर और सुवीर[1] जो क्रमश शौरीपुर और मथुरा के राजा थे। शूर से अधकवृष्णि जनमे और सुवीर से नरपति वृष्णि। अधकवृष्णि का विवाह पाराशर की पुत्री और व्यास की वहिन सुभद्रा से हुआ जिससे उसे दस पुत्र उत्पन्न हुए—१ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ प्रजापति स्तिमितसागर, ४ हिमगिरि (हिमवान), ५ अचल ६ विजय, ७ धारण, ८ पूरण, ९. अभिचद और १० वसुदेव। ये दस धर्मों के समान थे और 'दशार्ह' (दस योग्य) के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके अतिरिक्त दो कन्याएँ थी—कुन्ती और मद्री। मथुरा के राजा नरपतिवृष्णि को पत्नी पद्मावती से तीन पुत्र (उग्रसेन, महासेन और देवसेन) तथा एक कन्या (गाधारी) थी। इसी समय मागधमण्डल मे राजा जरासध अत्यन्त समृद्ध और शक्तिशाली हो उठा था। उसके पिता का नाम वृहद्रथ था जो राजगृह नगर का स्वामी था। वृहद्रथ, राजा वसु के पुत्र सुवसु की परम्परा मे हुआ। जिसने नागपुर मे राजधानी की स्थापना की। जरासध की पट्टरानी कालिन्दीसेना थी। जरासध के अपराजित आदि कई भाई थे। उसका प्रभाव दूर-दूर तक था।

एक दिन शौयपुर के गन्धमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ मुनि प्रतिमायोग मे ध्यान-लीन थे।

---

१ जैन परम्परा के अनुसार पहला वश इक्ष्वाकुवश था। उससे सूर्यवश और चन्द्रवश उत्पन्न हुए। इसी समय कुरुवश और उग्रवश तथा अन्य दूसरे वश उत्पन्न हुए। तीर्थंकर शीतलनाथ के समय हरिवश की उत्पत्ति हुई। जम्बूद्वीप के वत्सदेश की कौशाम्वी नगरी का राजा सुमुख था। वह वीरक सेठ की सुन्दर पत्नी वनमाला का अपहरण कर लेता है। विरह से व्याकुल सेठ दीक्षा ग्रहण कर तप करता है और मरकर प्रथम स्वर्ग मे देव होता है। राजा सुमुख-दम्पती भी वाद मे जैन धर्म धारण कर, दूसरे जन्म मे विजयार्ध पर्वत पर 'आर्य और मनोरमा' नामक दम्पती होते हैं। पूर्वभव के वैर के कारण देव (सेठ का जीव) विद्याओं को भेदकर उन्हें चम्पापुर मे छोड देता है। आर्य अपनी पत्नी के साथ वही का राजा बन जाता है। उसका पुत्र 'हरि' हुआ। इसी राजा की परम्परा मे कुशाग्रपुर (राजगृह) मे राजा सुमित्र हुआ। उसकी पत्नी का नाम पद्मामती था। इन्ही से मुनिसुव्रत (वीसवें) तीर्थंकर का जन्म हुआ। मुनिसुव्रत तीर्थंकर का पुत्र सुव्रत था। उसका पुत्र दक्ष। उसके इला नाम की पत्नी से ऐलेय नामक पुत्र और मनोहारी कन्या थी।

पूर्व बैर के कारण सुदर्शन नामक यक्ष मुनि पर उपसर्ग करता है। उपद्रव शान्त होने पर मुनि धर्मोपदेश देते हैं। उनसे अपने पूर्वभव सुनकर अंधकवृष्णि और नरपतिवृष्णि जिनदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। समुद्रविजय शौरिपुर की बागडोर सभाल लेते हैं और उग्रसेन मथुरा की। अंधकवृष्णि के सबसे छोटे पुत्र वसुदेव के सौन्दर्य की नगर की स्त्रियो पर व्यापक प्रतिक्रिया होती है। नागरिकों की शिकायत पर राजा समुद्रविजय अपने भाई को चतुराई से घर मे ही खेलने के लिए कहते हैं। वसुदेव भाई की बात मान लेते हैं। लेकिन उबटन ले जाती हुई धाय से सही बात जानकर वह अपने एक अनुचर के साथ घोडे पर बैठकर चुपचाप घर से निकल जाते है। यहाँ से वसुदेव की रोमाचक और साहसी यात्राएँ शुरू होती है। मरघट मे पहुँचकर वह सहचर को दूर खडा करते हैं तथा सारे आभूषण चिता मे डालकर घोडे की पीठ पर पत्र बांधकर चले जाते हैं। सहचर घर जाकर इसकी सूचना देता है। घर के लोग आकर पत्र और गहनो को देखकर निश्चय कर लेते है कि सचमुच वसुदेव की मृत्यु हो गयी। अनेक लीलाओ और यात्राओ मे सफलता पाने के बाद, जिस समय वसुदेव अरिष्टनगर मे रोहिणी के स्वयवर मे भाग लेते हैं, उस समय उनके साथ कई सुन्दर युवतियाँ थी और वह सात सौ साल पूरे कर चुका था। रोहिणी पटह वादक के रूप मे उपस्थित वसुदेव के गले मे वरमाला डाल देती है। यह देखकर कुलीनता का दावा करनेवाला सामन्तवर्ग भडक उठता है। घमासान लडाई के बाद, समुद्रविजय और वसुदेव की नाटकीय ढग से भेंट होती है। इस प्रसग मे उनकी जरासध से भी भिडत होती है। अन्त मे वसुदेव का रोहिणी से विवाह हो जाता है।

वसुदेव शौर्यपुर मे धूमधाम से प्रवेश करते हैं। कालान्तर मे रोहिणी से बलराम का जन्म होता है। वसुदेव धनुर्वेद विद्या के आचार्य भी हैं। कस उनकी शिष्यता ग्रहण करता है। गुरु-शिष्य म खूब पटती है। इस बीच मगधनरेश जरासध घोषणा करता है कि जो सिंहरथ को बाँधकर लाएगा, उसे मनचाहा राज्य और कन्या दी जाएगी। गुरु-शिष्य जाकर सिंहरथ को बाँधकर ले आते हैं। वसुदेव जरासध से कहते है कि कस ने सिंहरथ को पकडा है अत कन्या उसे दी जाए। यह विश्वास हो जाने पर कि कस कुलीन है, जरासध उसे अपनी कन्या जीवजसा के साथ मथुरा देश दे देता है। मथुरा का राज्य मिलते ही कस अपने माता-पिता उग्रसेन और पद्मावती को बन्दी बना लेता है। पश्चात् वह शौर्यपुर से गुरु वसुदेव को बुलाकर अपनी चचेरी बहन देवकी का विवाह उनसे कर देता है। वे दोनो मथुरा मे ही रहने लगते हैं।

एक दिन जीवजसा देवकी का रजस्वल वस्त्र मुनि अतिमुक्तक को दिखाती है। मुनि कुपित होकर कहते हैं—तुम्हारे पिता (मगधराज) की मृत्यु इसके पास है। जीवजसा डर जाती है। वह सारा वृत्तान्त अपने पति कस को सुनाती है। वह वसुदेव से यह प्रतिज्ञा करा लेता है कि 'देवकी के गर्भ से जो भी पुत्र होगा, उसे मैं चट्टान पर पछाड़ूँगा।' उन्हे 'हाँ' कहने के सिवाय दूसरा चारा पास नहीं रहता। और मुनि अतिमुक्तक वसुदेव-दम्पती को आश्वस्त करते हैं कि उनके पहले छह पुत्र चरमशरीरी हैं, उनका बाल न बाँका होगा। सातवाँ पुत्र नारायण के हाथ दोनो (कस और जरासध) की मृत्यु होगी। दोनो निश्चिन्त हो जाते हैं। वसुदेव-दम्पती के एक एक कर छह पुत्र उत्पन्न होते हैं, कि वे कस के हवाले कर दिया जाता है। वे नैगमदेव के द्वारा रक्षा किये जाते हैं।

अकस्मात् देवकी की यशोदा से भेंट होती है। दोनो गर्भवती हैं। यशोदा प्रस्ताव करती है कि वह उसकी के बच्चे का पालन करेगी और उसके बच्चे का देवकी। देवकी इसे स्वीकार

कर लेती है। कृष्ण का जन्म होता है। वसुदेव उसे उठाते हैं और तभी बलराम छत्र धारण करते हैं। वे उसे नन्द-यशोदा को सौंपकर उनकी कन्या लेकर आ जाते हैं। बालक धीरे-धीरे बढने लगता है। इसकी गोकुल मे अच्छी प्रतिक्रिया होती है और मथुरा मे बुरी। कस के मन मे आशका हो उठती है। कस के पास पूर्वजन्म मे सिद्ध हुई देवियाँ आती हैं। वह उन्हे आज्ञा देता है कि नन्द के घर जाकर शिशु कृष्ण को मार डालें। आदेश के अनुसार, देवियाँ वहाँ पहुँचती हैं लेकिन पराजित होकर लौट आती हैं।

एक दिन देवकी और बलराम कृष्ण को देखने के लिए गोकुल जाते हैं। देवकी बालक को देखकर प्रसन्न हो उठती है। वह गोपियो की उन बातो को सुनती है, जो वे शिशु कृष्ण से कहती हैं। दुग्धकलश से अभिषेक कर वे दोनो लौट जाते हैं।

कस कृष्ण को मारने के लिए तरह-तरह के षड्यन्त्र रचता है परन्तु हर बार वह असफल रहता है। कस के बुलावे पर बलराम और कृष्ण मथुरा पहुँचते हैं। वही युद्ध मे श्रीकृष्ण कस को पछाड देते हैं। उग्रसेन की धरती उन्हें ही सौंप दी जाती है। बलराम का रेवती, और श्रीकृष्ण का सत्यभामा से विवाह सम्पन्न होता है। नन्द और यशोदा को भी वहाँ बुलवा लिया जाता है। वे जाकर शौर्यपुर मे रहने लगते हैं।

अपने पति कस की मृत्यु से दु खी जीवजसा जरासध के पास जाकर सारा वृतान्त सुनाती है। जरासध बदला लेने के लिए अपने भाई को वहाँ भेजता है। कृष्ण और उसकी सेना का आमना-साम्ना होता है। अन्त मे पराजित होकर वह लौट जाता है। जरासध क्रुद्ध होकर इस बार अपने भाई के निर्देशन मे सम्पूर्ण सेना भेज देता है। इस प्रकार तीन सौ छयालीस बार युद्ध होता है। जरासध के भाई कालयवन के भयकर आक्रमण देखकर, यादवसेना उस समय पश्चिमी तट पर हट जाना उचित समझती है। देवियाँ कृत्रिम धुआँ और आग दिखाकर यह भ्रम उत्पन्न कर देती हैं कि यादवसेना और कृष्ण का परिवार जलकर खाक हो गया। शत्रु का अन्त समझकर कालयवन लौट जाता है।

यादव-सेना गिरनार पर्वत पर पहुँचती है। वहाँ से वह समुद्र की ओर कूच करती है। कृष्ण और बलराम समुद्र मे रास्ता पाने के लिए दर्भासन पर बैठकर उपवास करते हैं। तभी इन्द्र के आदेश से एक देव आता है और समुद्र को सन्देश देता है। समुद्र बारह योजन हट जाता है। इन्द्र के ही आदेश से वहाँ कुबेर द्वारिका नगरी का निर्माण करता है। दोनो भाई नगरी मे प्रवेश करते हैं।

इधर शिवादेवी सोलह सपने देखती हैं। सत्रह देवियाँ गर्भशोधन करने आती हैं। नेमि तीर्थंकर का जन्म होता है। इन्द्र नेमिजिन की स्तुति करता है। श्रीकृष्ण रुक्मिणो का हरण करते हैं, रुक्मिणी का पता उन्हें नारद मुनि देते हैं। इस कार्य मे बलराम उनकी मदद करते हैं। शिशुपाल इसका विरोध करता है। युद्ध होता है। रुक्मिणो भयभीत होती है। दोनो भाई रुक्मिणी के साथ द्वारिका में प्रवेश करते हैं। नारद मुनि जम्बूवती कन्या का पता देते हैं। दोनो भाई उपवास कर हरिवाहिनी और खड्गवाहिनी विद्याएँ प्राप्त करते हैं और कृष्ण जम्बूवती से विवाह कर लेते हैं।

एक दिन श्रीकृष्ण सत्यभामा के भवन के उद्यान मे रुक्मिणी का प्रवेश कराते हैं। सौतिया डाह का सुन्दर द्वन्द्व रचा जाता है। रुक्मिणी और सत्यभामा मे ठन जाती है। दोनो मे यह तय होता है कि पहले जिसके पुत्र का कुरुराज की कन्या से विवाह होगा, दूसरी के सिर के बाल

स्नान करते हुए के पैर के नीचे होंगे ।

दोनो के एक साथ पुत्र होते हैं। चूंकि रुक्मिणी के पुत्र की सूचना पहले मिलती है अत उसका पुत्र प्रद्युम्न बडा मान लिया जाता है और सत्यभामा का छोटा। दैवयोग से प्रद्युम्न को उसके पूर्वभव का बैरी धूमकेतु उठा ले जाता है और खदिरवन मे शिला के नीचे दबाकर चला जाता है। विद्याधर दम्पती सवर-कचनमाला उसे पाल-पोसते हैं। बालक कई लीलाओ का केन्द्रबिन्दु और अनेक सिद्धियो का धारक बनता है। कचनमाला उसके रूप पर मुग्ध हो जाती है। इच्छा पूरी न होने पर लाछन लगाती है। अन्त मे वह बालक कालसवर और उसके सैकडो पुत्रो को पराजित करता है।

द्वारिका मे रुक्मिणी पुत्र-वियोग मे दु खी है। श्रीकृष्ण उसे ढाढस बंधाते हैं। नारद बालक की खोज मे निकलते हैं। वह बालक के साथ विमान से जब लौटते हैं तो उन्हें भानुकुमार की बरात द्वारिका जाती हुई दिखाई देती है। प्रद्युम्न आकाश मे विमान खडाकर, नीचे उतरकर, अपनी लीलाओ का प्रदर्शन करता है। पाण्डवो के स्कधावार को अवरुद्ध कर लेता है। वहाँ से वह द्वारावती जाता है। सत्यभामा को तरह-तरह से तग करता है, उसका उद्यान उजाड देता है। तभी रुक्मिणी सुन्दर निमित्त देखती है। प्रद्युम्न माँ से भेंट करता है। इसी समय नाई आता है सत्यभामा का सन्देश लेकर। प्रद्युम्न अपमानित कर भगा देता है। कृष्ण और प्रद्युम्न की परस्पर भेंट होती है। दुर्योधन की पुत्री से प्रद्युम्न का विवाह होता है। सत्यभामा यह सबूत चाहती है कि यह युवा उसी का पुत्र है। नारद विस्तार से सारी घटना का उल्लेख करते हैं। यह मालूम होने पर कि मधु का दूसरा भाई कैटभ भी स्वर्ग से अवतरित होकर कृष्ण का पुत्र होगा, सत्यभामा चाहती है कि रजस्वला होने के चौथे दिन कृष्ण उससे समागम करें जिससे वह यशस्वी पुत्र की माता बन सके। परन्तु प्रद्युम्न विद्या की सहायता से जम्बुवती को उसके रूप मे भेज देता है, उससे शम्बुकुमार का जन्म होता है। रुक्मिणी विदर्भराज से दूसरी कन्या माधवी अपने पुत्र के लिए माँगती है। विदर्भराज दूत को डाँटकर भगा देता है। प्रद्युम्न और शम्बुकुमार कुण्डनपुर जाते हैं। कन्या के बाप के यह कहने पर कि चण्डालकुल मे कन्या दे देना अच्छा परन्तु जिसने अपनी माँ और भाई का अपमान किया है उसको कन्या देना अच्छा नही---दोनो उत्पात मचा देते हैं। कन्या स्वय विद्रोह कर बैठती है और अपनी सखी से कहती है कि मैंने स्वयवर माला से इनका वरण कर लिया, कहाँ का बाप और कहाँ की माँ ? मेरी इच्छा इन पर है, जो कुछ हुआ सो हो गया अब कुल से क्या ? वे दोनो कन्या को वधू बनाकर ले आते हैं।

वंशों का विकास : जैन पौराणिक परम्परा

जैन पौराणिक मान्यता के अनुसार, मूल वश दो हैं—इक्ष्वाकुवश और विद्याधरवश। इनमे इक्ष्वाकुवश मानव वश है। मानववश और विद्याधर वश के मेल से राक्षस-वश कीउत्पत्ति हुई। आगे चलकर इक्ष्वाकुवश के दो भेद हुए---सूर्यवश और चन्द्रवश। चन्द्रवश का विकास बाहु-बलि के पुत्र सोमयश से हुआ। जहाँ तक यादववश के विकास का सम्बन्ध है वह हरिवश का ही एक परवर्ती विकास है। तीर्थंकर शीतलनाथ के समय, वासुदेश का राजा सुमुख कौशाम्बी नगरी मे रहता था। उसने अपने ही नगर के सेठ वीरक की पत्नी वनमाला का अपहरण कर लिया था, दोनो जैनधर्म मे निष्ठा के कारण आगामी जन्म मे विजयार्ध पर आर्यक और मनोरमा

नाम से विद्याधर और विद्याधरी उत्पन्न हुए। वीरक सेठ का जीव मरकर देव होता है और आलिंगनबद्ध उन दोनो (विद्याधर-दपम्ती) को चम्पानगर में फेंक देता है। वे वही रहने लगते हैं, जहाँ वे 'हरि' नामक बालक को जन्म देते हैं। यही से हरिवंश इस प्रकार शुरू हुआ—
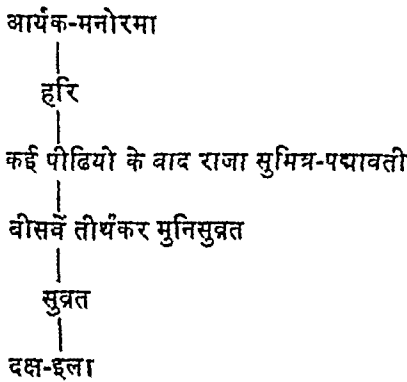
दक्ष अपनी ही कन्या मनोहारी को पत्नी बना लेता है। इला रूठकर, अपने पुत्र ऐलेय के साथ दुर्गम वन मे चली जाती है और इलावर्धन नगर बसाती है। राजा होने पर ऐलेय ताम्र-लिप्ति और नर्मदा के तट पर माहिष्मती नगर की स्थापना करता है। यहाँ से हरिवंश की दूसरी स्वतन्त्र शाखा फूटती है, जिसमे अरिष्टनेमि और मत्स्य नामक राजा प्रमुख थे।

राजा मत्स्य हस्तिनागपुर और भद्रपुर नगरो को जीत लेता है। उसके सौ पुत्रो मे आयोधन सबसे प्रतापी था। आयोधन के आगे के वंश की परम्परा इस प्रकार मिलती है—
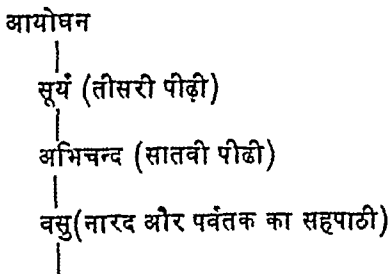
आयोधन
|
सूर्य (तीसरी पीढ़ी)
|
अभिचन्द (सातवी पीढी)
|
वसु(नारद और पर्वतक का सहपाठी)
|
दस पुत्र (वसु के पतन के बाद एक-के-बाद एक आठ पुत्रो की मृत्यु, नौवाँ पुत्र सुवसु नागपुर चला गया तथा दसवाँ बृहद्रथ मथुरा में जा बसा।)

बृहद्रथ की परम्परा मे यदु राजा हुआ।
|
नरपति
|
शूर — वीर
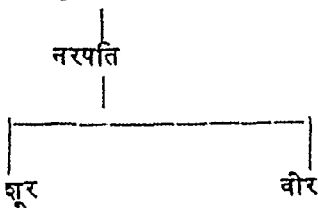
'रिट्ठणेमिचरिउ' मे हरिवश का प्रारम्भ इन्ही दोनो भाइयो (शूर और वीर) से होता है जो इस प्रकार है—
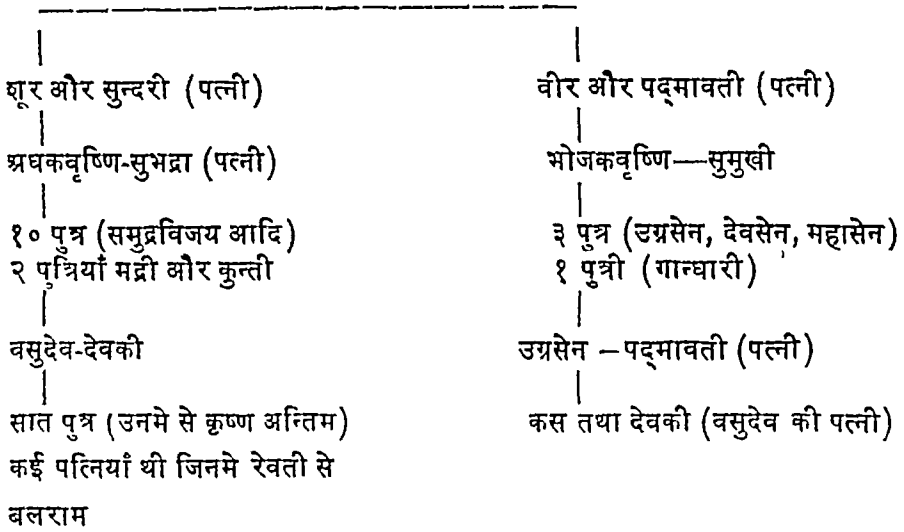
राजा वसु का जो पुत्र (सुवसु) नागपुर जा बसा था, उसकी परम्परा मे वृहद्रथ हुआ जो जरासध का पिता था। जरासध और कालिन्दीसेना से जीवजसा कन्या हुई। जरासध के कई भाई और पुत्र थे। उक्त वशवृक्ष और उसकी शाखाओ से स्पष्ट है कि यादवकुल का मूलपुरुष 'यदु' हरिवश की उस शाखा से हुआ जो दक्ष के समय स्वतन्त्र हो गयी थी। यदु के पोतो (शूर और वीर) से यदुवश दो शाखाओ मे फैलता है, परन्तु उनमे सौहार्द है। दूसरी पीढी मे एक शाखा मे वसुदेव हुए और दूसरी मे देवकी और कस। इस प्रकार वे सगोत्री थे परन्तु कस अपनी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से कर देता है। मगध का राजवश और विदर्भ का राजवश भी हरिवश की विच्छिन्न हुई (इला-ऐलेय) शाखा के पत्ते थे। पाण्डवकुल अलग था। परन्तु यदुकुल की कन्याएँ कुन्ती, मद्री और गान्धारी उन्हें ब्याही थी। तीर्थंकर नेमिनाथ समुद्रविजय-शिवादेवी से उत्पन्न हुए। समुद्रविजय वसुदेव के बडे भाई थे। इस प्रकार कृष्ण और नेमि दोनो चचेरे भाई थे। वसुदेव और कस मे एक पीढ़ी का अन्तर है। कस और कृष्ण मे भी एक पीढी का अन्तर है। परन्तु अपनी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से करने के कारण वह बहनोई बने और कृष्ण भानजे। कस के विद्रोह का प्रत्यक्ष कारण माता-पिता (उग्रसेन और पद्मावती) का क्रूर व्यवहार है। वास्तविकता का पता चलने पर वह विद्रोह ग्रथि बन जाता है। जीवजसा देवकी का रमणवस्त्र दिखाकर आग मे घी का काम करती है। जैन पुराणकारो का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि राग की क्रिया-प्रतिक्रिया से एक ही कुल के लोग न केवल एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं, बल्कि उनमे भयकर युद्ध ठन जाते हैं। चूंकि जैन पुराणकार दूसरे मत (वैदिक मत) मे प्रचलित हरिवश परम्परा से जैन हरिवश-परम्परा का अन्तर बताने के लिए ही पुराण की रचना करते हैं अत यहाँ हिन्दू पुराणो की हरिवश परम्परा का जानना आवश्यक है जिससे सही स्थिति का पता लग सके।

महाभारत : वंश-परम्परा

महाभारत के अनुसार[1] सूर्यवश और चन्द्रवश की परम्परा इस प्रकार है—
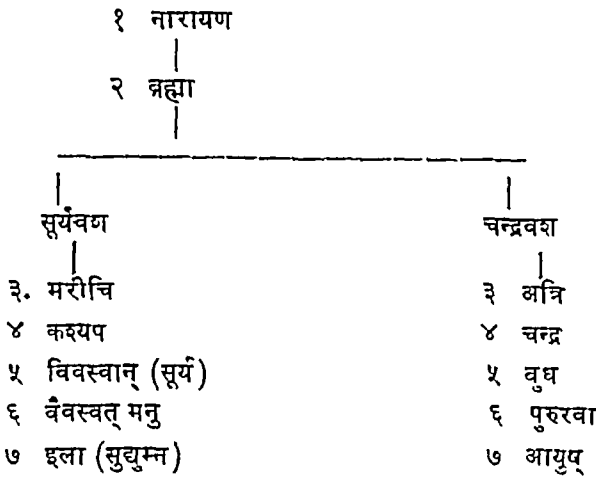
चन्द्रवश की आगे की वशावलि इस प्रकार है—

८ नहुप, ९ ययाति, १० पुरु, ११ जनमेजय, १२ प्राचिन्वान्, १३ सयाति, १४ अहयाति, १५ सार्वभौम, १६ जयसेन, १७ अवाचीन, १८ अरिह, १९ महाभौम, २० अयुतनायी, २१ अक्रोधन, २२ देवातिथि, २३ अरिह, २४ ऋक्ष, २५ मतिनर, २६ तसु, २७ इलिन, २८ दुष्यन्त, २९ भरत, ३० सुमन्यु, ३१ सुहोत्र, ३२ हस्ती, ३३ विकुण्ठन, ३४ अजमीढ, ३५ सवरण, ३६ कुरु, ३७ विदुर, ३८ अनश्वा, ३९ परीक्षित, ४० भीमसेन, ४१ प्रतिश्रवा, ४२ प्रतीप, ४३ शतनु, ४४ विचित्रवीर्य, ४५. धृतराष्ट्र, ४६ धृतराष्ट्र के पुत्र ।

इस प्रकार पाण्डव आदिनारायण की ४६वी पीढी मे आते हैं।

चन्द्रवंश और पाण्डववंश

स्व० डॉ० चिन्तामणि राव वैद्य के अनुसार मनु की पुत्री इला और चन्द्र से चन्द्रवश की उत्पत्ति हुई ।[2] पहला राजा पुरुरवा हुआ । पुरुरवा और उर्वशी की प्रेमकथा ऋग्वेद मे भी है। दूसरे राजा ययाति हैं ।

ययाति नहुप के दूसरे पुत्र थे। इनके वडे भाई यतियोग का आश्रय लेकर ब्रह्मीभूत हो गए थे। ययाति की दो पत्नियाँ थी—देवयानी और शर्मिष्ठा। दोनो से पाँच पुत्र हुए ययाति-देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा ययाति-शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पुरु।

देवयानी शुक्राचार्य की कन्या थी, अत ययाति मुनिकोप के डर से उससे विवाह नही करते। लेकिन वाद मे स्वीकृति मिल जाने पर वह विवाह कर लेते हैं। शर्मिष्ठा के पुत्रों का पता चलने पर देवयानी अपने पिता के पास जाती है और उन्हे सारी वात वताती है। शुक्रा-

---

१ कल्याण, वर्ष ३, सख्या ११, सितम्बर १९५८

२ कल्याण, वर्ष ३, सख्या, १०, अगस्त १९५८

चार्य इन्हे जराग्रस्त होने का शाप देते हैं। पुरु अपना यौवन पिता को दे देता है, क्योंकि शुक्राचार्य के अभिशाप का निवारण एकमात्र यही था कि यदि पुत्र अपना यौवन दे दे तो राजा ययाति युवा हो सकता है। हजारो वर्षों तक विषय-सेवन करने पर भी तृप्ति नही होने पर, ययाति पुरु को यौवन वापस देकर और उसका राज्याभिषेक कर वन के लिए प्रस्थान करता है। इतिहासविदो का मत है कि यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज, पुरु से कौरव और अनु से म्लेच्छ हुए।

ययाति की दूसरी पत्नी शर्मिष्ठा वृषपर्वा की पुत्री थी। श्री वैद्य का मत है कि पुरु के वश मे पहला राजा दुष्यन्त हुआ। भरत के वशज हस्ति ने हस्तिनापुर बसाया। हस्ति के प्रपौत्र कुरु ने गगा और यमुना के दोआब के ऊपरी क्षेत्र मे कुरुक्षेत्र का विस्तार किया। गगा के पूर्व और दक्षिण मे बसने वालो को ब्राह्मण-ग्रन्थो मे उन्नत और प्रतापी बताया गया है। चन्द्रवशी राजा सिन्धुनदी के तट पर राज करते थे। राजा वृषपर्वा (ईरान के राजा) का राज्य ययाति के राज्य से लगा हुआ था।

उक्त दोनो कथनो की तुलना से हम इस समान निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाभारत के अनुसार, चन्द्रवशी ययातिपुत्र यदु से जिस समय यादव हुए उसी समय, ययाति के दूसरे-दूसरे पुत्रो से अन्य अनेक क्षत्रियवशो का विकास हुआ। चन्द्रवश और सूर्यवश के आदि पुरुष नारायण हैं। जैन परम्परा के अनुसार भी यादवो का आदिपुरुष यदु था। यदु मूलत हरिवश का था तथा हरिवश का मूल पुरुष 'हरि' था जो विद्याधर दम्पती आर्यक और मनोरमा की सन्तान था। जैन परम्परा सूर्यवश और चन्द्रवश की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवश से मानती है।

नर-नारायण और नरोत्तम

महाभारत मे वेदव्यास का यह मगलाचरण है—

"ओ नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत्।"

इसमे पहले नारायण को नमस्कार है, फिर नर को और तब नरोत्तम को। विद्वानो का मत है कि 'नर-नारायण' मूल उपास्य देव हैं। ये 'नर-नारायण' ही अर्जुन और कृष्ण के रूप मे अवतार लेते हैं। महाकवि स्वयभू ने 'अर्जुन' के अर्थ मे 'नर' का प्रयोग किया है। महाभारत के अनुसार नर और नारायण एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। नर और नारायण की स्तुति के बाद नरोत्तम को नमस्कार किया गया है। यह नरोत्तम श्रीकृष्ण हैं, ये नारायण ऋषि के अवतार नही। नरोत्तम कृष्ण ही सबके मूल, सर्वव्यापी, सर्वातीत, सच्चिदानन्दघन, स्वय भगवान्, परात्पर ब्रह्म हैं। अवतार रूप मे वह परमब्रह्म स्वरूप वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण हैं। 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे श्रीकृष्ण की जिन बाललीलाओ का वर्णन और यौवनलीलाओ का सकेत है उनका स्रोत महाभारत नही है। महाभारत मे श्रीकृष्ण पहले पहल आदिपर्व मे राजा द्रुपद की राजधानी मे द्रौपदी के स्वयवर के अवसर हमारे सामने आते हैं। लक्ष्यभेद के फलस्वरूप द्रौपदी अर्जुन के गले मे जयमाला डाल देती है। इस पर कौरव युद्ध प्रारम्भ कर देते हैं। श्रीकृष्ण तब पाण्डवो का पक्ष लेते हैं और कर्ण को परास्त करते हैं। पाण्डवो को ब्राह्मणवेप मे देखकर उपस्थित राजा सामूहिक युद्ध की बात सोचते हैं परन्तु कृष्ण सबको समझा-बुझा देते हैं। दूसरी बार बलराम के साथ श्रीकृष्ण उस समय उपस्थित होते हैं जब पाण्डव माँ कुन्ती और द्रौपदी

के साथ हस्तिनापुर जाते हैं। वह भीष्म, द्रोण, विदुर आदि के साथ धृतराष्ट्र को समझाकर इस बात के लिए राजी करते हैं कि पाण्डवो को उनका न्यायसम्मत आधा राज्य दिया जाए। उन्हे 'खाण्डवप्रस्थ' मिलता है। उनके आदेश पर इन्द्र खाण्डवप्रस्थ मे इन्द्रपुरी के समान 'इन्द्रप्रस्थ' नगरी की रचना करता है। वे धूमधाम से नगर मे प्रवेश करते हैं। तीसरी बार, वह तब सामने आते हैं जब बारह वर्ष के वनवास-काल मे तीर्थों का पर्यटन करते हुए पाण्डव प्रभास तीर्थ पहुँचते हैं। वे चिरसखा अर्जुन से मिलने आते हैं। अर्जुन के साथ वे द्वारिका नगरी जाते हैं। चौथी बार वह खाण्डववन-दाह के प्रसग मे दिखाई देते हैं। पाँचवी बार, युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ के समय आते हैं। वह बडी कुशलता से जरासध का वध करवाते हैं। इसके बाद राजसूय यज्ञ शुरू होता है। उसमे ब्राह्मणो के पैर पखारने का काम श्रीकृष्ण स्वय अपने ऊपर लेते हैं। श्रीकृष्ण की प्रशसा शिशुपाल को सहन नही होती। वह भडक उठता है। वह युद्ध के लिए उन्हे ललकारता है। सौ अपराध क्षमा करने के बाद, श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र से उसका सिर धड से अलग कर देते हैं। छठी बार, वह द्रौपदी के चीरहरण प्रसग पर उपस्थित होते हैं और वस्त्रावतार धारण कर अपनी भगवत्ता प्रकट करते हैं। सातवी बार वह पाण्डवों के वनवास प्रसग पर, उनसे वन मे मिलने जाते हैं और आवेश मे कहते हैं—लगता है कि यह धरती दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दु शासन के रक्त का पान करेगी। वह कृष्णा (द्रौपदी) से कहते हैं—'शिशुपाल के भाई शाल्व ने द्वारिका पर आक्रमण कर दिया था। उसे परास्त करने मे समय लग गया अत मैं नही आ सका। यदि आ सकता तो युधिष्ठिर का जुआ खेलने से रोक देता।' मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि, मुझे पुरातन प्रलय के समय जिन देवता भगवान् (बालमुकुन्द)का दर्शन हुआ था वही ये कृष्ण हैं। आठवी बार वह दुर्वासा के कोप से द्रौपदी की रक्षा करते हैं। दुर्वासा युधिष्ठिर के अतिथि बनकर आते हैं। युधिष्ठिर उनसे भोजन का आग्रह करते हैं। परन्तु द्रौपदी भोजन कर चुकी होती है। वह सकट मे पड जाती है। उस समय श्रीकृष्ण उसकी सहायता करते हैं। नौवी बार वह विराट की सभा मे अभिमन्यु-उत्तरा के विवाह मे सम्मिलित होते है। वहाँ यह प्रश्न उठाया है कि पाण्डवो का राज्य किस प्रकार वापस दिलाया जाए। युद्ध मे सहायता करने के लिए अर्जुन और दुर्योधन श्रीकृष्ण के पास द्वारिका पहुँचते हैं। उनमे से एक (अर्जुन) पैरो के पास बैठता है और दूसरा सिहराने। अर्जुन दस करोड सेना के विकल्प मे श्रीकृष्ण को अपने पक्ष मे रखना पसन्द करता है, भले ही वह युद्ध मे न लडें। दुर्योधन इस बात से प्रसन्न है कि कृष्ण की दस करोड सेना उसकी ओर से लडेगी।

□

विषय अनुक्रम

घत्ता—सासय-सुक्ख-णिहाणु अमरभाव-उप्पायणु।
कण्णजलिहिं पिएहु जिणवर-वयण-रसायणु ॥१॥

चिंतवइ सयंभु काइं करमि।
हरिवंस-महण्णउ केम तरमि॥
गुरुवयण-तरंडउ लद्धु णवि।
जम्महो वि ण जोइउ कोवि कवि॥
णउ णायउ बाहत्तरि कलउ।
एक्कु वि ण गंथु परिमोक्कलउ॥
तहिं अवसरि सरसइ धीरवइ।
करि कव्वु दिण्ण मइं विमलमइ॥
इंदेण समप्पियउ वायरणु।
रसु भरहेण वासें वित्थरणु॥
पिंगलेण छंद-पय-पत्थारु।
भमहें दंडिणिहिं अलंकारु।
बाणेण समप्पियउ घणघणउ।
तं अक्खरडंबरु अप्पणउ॥
सिरिहरिसें णियउ णिउत्तणउ।
अवरेहिं मि कइहिं कइत्तणउ॥
छड्डणि-दुवई-धुवइहिं जडिय।
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय॥
जणणयणाणंद जणेरिए।
आसीसिए सव्वहु केरिए॥
पारंभिय पुणु हरिवंसकह।
ससमय-परसमय-विचार-सह॥

घत्ता—जो शाश्वत सुख का निधान है तथा अमरभाव को उत्पन्न करनेवाला है, जिनवर के ऐसे वचन रूपी रसायन (अमृत) का कानो की अंजलि से पान करो ॥१॥

कवि स्वयंभू विचार करता है कि क्या करूँ? हरिवंशरूपी महासमुद्र को किस प्रकार पार करूँ? मैंने गुरुवचन रूपी नाव प्राप्त नही की और न जन्म से किसी कवि के काव्य को देखा। मैंने बहत्तर कलाओ को नही जाना। एक भी ग्रन्थ को खोलकर नही देखा। उस अवसर पर सरस्वती धीरज बँधाती है—'तुम काव्य की रचना करो। मैंने तुम्हे विमल मति (प्रतिभा) दी।' तब इन्द्र ने व्याकरण दिया, भरत ने रस और व्यास ने विस्तार करना दिया। पिंगलाचार्य ने छंद और पदो का प्रस्तार दिया, भामह और दंडी ने अलंकार-शास्त्र दिया, बाण ने वह अपना सघन अक्षराडंबर दिया। श्रीहर्ष ने अपना निपुणत्व दिया। दूसरे कवियो ने अपना कवित्व दिया। छड्डणी, दुवई और ध्रुविकाओ से जडित पद्धडिया चतुर्मुख ने प्रदान किया। लोगो के नेत्रो को आनन्द देनेवाली सबकी असीस से मैंने तब यह हरिवंश-कथा प्रारंभ की जो स्वमत और परमत के विचारो को सहन करनेवाली है।

घत्ता—पुच्छई मागहणाहु भव-जर-मरण-वियारा।
थिउ जिणसासणि केम कहि हरिवंसु भडारा ॥२॥

णउ फिट्टइ अज्जवि भंति मणे।
विवरेरउ सुव्वइ सव्वजणे ॥
णारायणु णरहो सेव करइ।
रहु खेड्डइ घोडा सवरइ ॥
धयरट्ठपंडु अदार[1]जणिया।
कोतिहि भत्तार-पचभणिया ॥
पचालिहि पडव पच जहि।
वोल्लेव्वउ[2] सच्चु-असच्चु तहि ॥
दुच्चरिउ जि लोयहे मडणउ।
णउ चिंतवंति जस खडणउ ॥
सच्छदमरणु गगेउ जइ।
तो तेण काइ किय कालगइ ॥
सचावेण सरेण वि जइ अजउ।
तो दोणु काइ रणे खयहो गउ ॥
कण्णेण कण्णु जइ णीसरइ।
तो कोंति वियंति किण्ण मरइ ॥

घत्ता—माणुस कलसेण होइ कुरुगुरु कलस-समुब्भव।
जइवि विरुद्धा सुट्ठु रुहिर पियंति ण बधव ॥३॥

घत्ता—मगधनाथ (श्रेणिक) पूछता है—जन्म, जरा और मृत्यु का नाश करनेवाले हे आदरणीय ! वताइए, जिन-शासन मे हरिवश की कथा का क्या स्वरूप है ? ॥२॥

आज भी मन से भ्रांति नष्ट नही होती। सव लोगो मे यह उल्टी वात सुनी जाती है कि नारायण नर की सेवा करता है, रथ हाँकता है, घोड़े की देखभाल करता है, धृतराष्ट्र और पडु अदारजनित—अन्य स्त्री से उत्पन्न हैं (नियोग प्रथा के अनुसार, व्यास द्वारा, राजा विचित्र वीर्य की विधवाओ मे उत्पन्न हैं।), जहाँ पाचाली के पाँच पाडव कहे जाते हैं, वहाँ आप वतायें कि सत्य और असत्य क्या है ? दुश्चरित्र ही जिन लोगो का मडन है, वे यश के खडित होने की चिंता नही करते। यदि भीष्म पितामह का मरण स्वच्छद था, तो उन्होने कालगति क्यो की ? यदि धनुष और तीर से द्रोणाचार्य अजेय थे तो वह युद्ध मे विनाश को क्यो प्राप्त हुए ? कर्ण यदि कान से निकले तो उन्हें जन्म देनेवाली कुन्ती की मौत क्यो नही हुई ?

घत्ता—भले ही मनुष्य घट मे उत्पन्न होता हो, कौरवो के कुलगुरु अगस्त का जन्म घट से हुआ हो, भाई अपने भाई से कितना ही विरुद्ध क्यो न हो जाए, वे एक दूसरे का रक्तपात नही करते ॥३॥

---

१. ज—अपरे जणिया। २ अ व—वोलवउ सच्च समच्च तहि।

तं णिसुणेवि वयणु मुणिमणोहरु ।
सुणि सेणिय वाहरइ गणहरु ॥
सूरवीर हरिवंस पहाणा ।
सउरी-महुरा-पुरवर-राणा ॥
अंधयविट्ठि जाणिज्जइ[1] एक्कें ।
णरवइविट्ठि पुणु अण्णेक्कें ॥
सूरसुयहो तहो रज्जु करंतहो ।
सउरीपुरहो परिपालंतहो ॥[2]
सत्तावीस जोअण सुहियहो ।
वासहो सगहो परासर दुहियहो[3] ॥
पुत्त सुहद्दहे दस उप्पण्णा ।
ण दहलोयवाल अवइण्णा ॥
तेत्थु समुद्दविजउ पहिलारउ ।
पुणु अक्खोहु रणभर-धुरधारउ ॥
थिमिउ पयावइ सायरु उप्पज्जइ ।
हिमगिरि-अचलु-विजउ जाणिज्जइ ॥
धारणु पूरणु सहुँ अहिचंदें ।
पुणु वसुएउ जाउ आणंदें ॥

घत्ता—ताहँ सहोयरियाउ कोंति मद्दि वि बे कण्णउ ।
ण दहधम्म-हुआउ[4] खंति-दयाउ उप्पण्णउ ॥४॥

मुनियों के लिए सुन्दर उन वचनों को सुन कर गणधर (गौतम) कहते हैं—हे श्रेणिक ! सुनो, हरिवंश के प्रमुख सूर और वीर श्रेष्ठ नगरों शौर्यपुरी और मथुरा के राजा थे। एक (सूर) से अंधकवृष्णि का जन्म हुआ और दूसरे से नरपतिवृष्णि का। राज्य करते हुए और सत्ताईस योजन आयाम वाली शौर्यपुरी का परिपालन करते हुए सूर के पुत्र अंधकवृष्णि से व्यास की बहन, और पाराशर की पुत्री सुभद्रा से दस पुत्र उत्पन्न हुए, मानो दस लोकपाल ही अवतीर्ण हुए हों। उनमें समुद्रविजय पहला था। दूसरा अक्षोभ्य युद्ध के भार की धुरी को धारण करनेवाला था। फिर स्तमित, प्रजापति और सागर उत्पन्न हुए। फिर हिमवान, अचल और विजय (नाम से) जाने जाते हैं। अभिचन्द के साथ धारण और पूरण का जन्म हुआ, फिर आनन्दपूर्वक वसुदेव उत्पन्न हुए।

घत्ता—उनकी कुन्ती और माद्री नाम की दो कन्याएँ सगी बहनें थी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दस धर्मों से शान्ति और क्षमा का जन्म हुआ हो। ॥४॥

---

१ ज, ब—जाणिज्जइ। २ ज, अ, ब—सउरीपुरवर परिपालत हो। ३ ब में दुरियहे पाठ सही है, परन्तु तुक के कारण दुहियहो पाठ रखा गया। ४ ब—हुयाउ।

'णरवइ-विट्ठए रज्जु करतें।
महुरापुरवरु परिपालतें॥
वासहो-तणिय बहिणि पउमावइ।
परिणिय चदे रोहिणी णावइ॥
तहो णदणु दिणमणि[2] व उग्गउ।
उग्गसेण उग्गाह मि उग्गउ॥
पुणु महासेणु महारणे उज्जउ।
देवसेण देवाह मि पुज्जउ॥
पुणु गधारि-कण्ण-बलवतहो॥
मगहामडलु परिपालतहो।
दुद्धरसमर-भरोड्डियकधहो।
णिरुवम रिद्ध जाय जरसधहो॥
मड तिखड वसुधरी सिद्धी।
रयण-णिहाणाद्धद्ध समिद्धी॥
जायव-मडल-कुरुव-हाणी।
रावण रिद्धिहें अणुहरमाणी॥

घत्ता—ताम तिलोय-पईउ मिलिय-सुरामर-विंदहो।
सउरीपुरि उप्पण्णु केवलणाणु मुणिदहो॥५॥

तो परमरिसिहे सुपइट्ठहो।
उज्जाणि गधमायणि ट्ठियहो॥
सउरिपुर-सीमा-वासियहो।
णरणाय-सुरिंद-णमसियहो॥
सयलामल-केवल-कुलहरहो।

राज्य करते हुए और मथुरा नगर का परिपालन करते हुए नरपतिवृष्णि ने व्यास की बहन पद्मावती से वैसे ही विवाह किया, जैसे चन्द्रमा रोहिणी से करता है। उसका पुत्र सूर्य की तरह उत्पन्न हुआ। उग्रसेन उग्रो मे भी उग्र था। फिर महासेन हुआ जो महायुद्ध मे उद्यत रहता था। देवसेन देवो मे भी पूज्य था। फिर उस बलवान् के गधारी कन्या उत्पन्न हुई। मागधमडल का परिपालन करते हुए तथा दुर्धर युद्धभार से ऊँचे कधो वाले जरासध की अनुपम ऋद्धि हो गई। बलपूर्वक उसे तीन खड धरती सिद्ध हो गई, जो आधे-आधे रत्नो और खजाने से समृद्ध यादवो और कौरवो के लिए हानिस्वरूप तथा रावण की ऋद्धि के समान थी।

घत्ता—इतने मे, शौरीपुर मे, जिनके लिए सुरो और देवो का समूह मिला है, ऐसे मुनीन्द्र सुप्रतिष्ठ को त्रिभुवनप्रदीप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ॥५॥

जो गन्धमादन उद्यान मे स्थित हैं, शौर्यपुर की सीमा के निवासी है, मनुष्यो, नागो और देवो

१ ज—णरवइ विट्ठए रज्जु करतें। २ ज, अ, ब—दिणमणि व समुग्गउ।

छज्जीय-णिकाय दयावरहो ॥
भावलयालिगिय-विग्गहो ।
दूरुज्झिय-सयल परिग्गहहो ॥
दरिसाविय-परममोक्खपहो[1] ।
सुरवदण भत्तिय-श्रायत्तहो ॥
तहि अधयविट्ठि-णराहियइ ।
सहु णरवइ-विट्ठए एक्कमइ ॥
णिसुणेप्पिणु णियभवतरइ ।
णियणामुप्पत्ति-पर परइ ॥
पभणइ मइ णरइ पडतु धरे ।
तव चरणग्गहणे पसाउ करे ॥

घत्ता—असरणे अथिरे असारे एत्यु खेत्ते ण रम्मइ ।
जहि अजरामर लोउ तहो देस हो वरि मग्गइ ॥६॥

तो परमभाव सब्भावरया ।
दिक्खकिय सूरवीरतणया ॥
सउरियहि समुद्दविजउ थियउ ।
महुराहिउ उग्गसेणु कियउ ॥
अच्छति जाम भुजति धर ।
वसुएवें ताम अणगसर ॥
परिपेसिय णायरियामणहो ।
कावि अहरु समप्पइ अजणहो ॥

के द्वारा वदनीय हैं, जो सपूर्ण पवित्र केवलज्ञान के कुल-गृह हैं, छहों जीव-निकायो की दया करनेवाले हैं, जिनकी देह भावरूपी लता से आलिगित है, जिन्होंने समस्त परिग्रहो को दूर से छोड दिया है, जो परम मोक्ष-पथ को दिखाने वाले हैं, जो देवो की वदना-भक्ति से स्व-वश हैं, ऐसे सुप्रतिष्ठ मुनि से, वहाँ का नराधिपति अधकवृष्णि नरपतिवृष्णि के साथ, एक मति होकर, अपने भवान्तर सुनकर, अपनी उत्पत्ति, नाम और परम्परा को सुनकर कहता है—नरक मे पडते हुए मुझे बचाओ, तपश्चरण ग्रहण करने मे मुझ पर प्रसाद कीजिए।

घत्ता—अशरण अस्थिर इस क्षेत्र (मर्त्यलोक) मे रमण नही किया जाता। जहाँ अजर-अमर लोक है उस देश का वर माँगा जाए।

तब परम भाव और सद्भाव मे लीन शूर-वीर के पुत्र अधकवृष्णि और नरपतिवृष्णि ने दीक्षा ग्रहण कर ली। शौरीपुर मे समुद्रविजय स्थापित हुआ। उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया गया। इस प्रकार धरती का उपभोग करते हुए जब वे रह रहे थे कि इतने मे वसुदेव ने नगर-वनिताओ के मनो मे कामदेव के तीर प्रेपित कर दिये। कोई अपना अधर

---

१ ज, अ—मोक्खपयहो ।

काvि देइ अलत्तउ णियणयणे ।
मुच्छिज्जइ खिज्झइ[1] खणि जि खणे ।
का वि छडइ णीवि-बधणउ ।
ढिल्लारउ करइ पइधणउ ॥
कावि बालु लेइ विवरीय-तणु ।
मुहु अण्णहि अण्णहि देइ थणु ।
एक्केक्कावयवें विलीण क वि ।
वसुएउ असेसु विदिट्ठु ण वि ॥
घत्ता—[2]जाहे जहि जि गय दिट्ठी ताहे तहि जि वि थक्कइ।
दुब्बल ढोर इव पके पडिय ण उट्ठिवि सक्कइ ॥७॥
जुवे णिक्कलति णिक्कलइ का वि ।
पइसते पइसइ तत्ति ण वि ॥
काउ वि मयणग्गि झुलिक्कियउ ।
कह कह वि ण पाणहि मुक्कियउ ॥
घरे कम्मु ण लग्गइ तियमईहि ।
वसुएउ-रूव मोहिय-मईहि ॥
उवाइउ किज्जइ[3] घरि जि घरे ।
मेलावउ[4] जक्ख-दउत्ति करे ॥
काहे वि सरीरु जर-खेइयउ ।
काहे वि णिल्लाडु पसेइयउ ॥

अजन को देती है । कोई अपनी आँख मे अलक्तक लगाती है । कोई क्षण-क्षण मे मूर्च्छा को प्राप्त होती और कोई खीझती है । कोई नीवी की गाँठ खोलती है और परिधान (साडी) ढीली करती है । कोई शरीर उलटकर बालक लेती है, वह मुँह दूसरी ओर होता है, और स्तन दूसरी ओर देती है । वसुदेव के एक-एक अग मे विलीन हो जाती हैं, इसलिए उन्हें वसुदेव समग्र रूप से दिखाई नही देते ।

घत्ता—जिसकी दृष्टि जहाँ (जिस अग पर) गयी उसकी दृष्टि उसी अग पर ठहर गयी। कीचड मे फँसे हुए दुर्वल ढोर की तरह वह उठ नही सकी ॥७॥

युवा वसुदेव के निकलने पर कोई निकल पडती, प्रवेश करने पर प्रवेश करती, परन्तु तृप्ति नही होती । कामदेव की ज्वाला मे दग्ध कोई किसी प्रकार अपने को प्राणो से मुक्त नही कर पा रही थी । जो स्त्रियाँ वसुदेव के रूप पर मोहित-मति थी उन्हे घर का काम नही भा रहा था । घर-घर मे मनौती की जाती कि यक्ष-दपती मिलाप करवा दे । किसी का शरीर ज्वर से पीडित था । किसी का ललाट पसीना-पसीना हो रहा था । ऐसा कोइ घर नही, चवूतरा

---

१ ज, अ—किज्जइ । २ ज, अ—जाहि जाहि । ३ ज, अ, ब—दिज्जइ । ४ ज—मेवावउ । ब—मेलावउ ।

तं ण घरु ण चच्चरु ण वि सह।
जहिँ णउ वसुएवहो तणिय कह॥
काहि वि पइपासि परिट्ठियउ।
णाइ डहइ हुवासणु अट्ठियउ॥
बोल्लाविय का वि वयंसियए।
सो सुहउ ण फिट्टइ महु हियहे॥
णाहरणु ण वि रुच्चइ भोयणउ।
[1]ण ण्हाणउ ण वि फुल्लु विलेयणउ।

घत्ता—देयर-ससुर-पईहिँ महु सरीरु रक्खिज्जइ।
णिब्भरणेह-णिबधु-चित्तु केण धरिज्जइ॥८॥

एहिय अवत्थ ज जाय पुरे।
जे जे पहाण ते करिवि धुरे॥
पुरपवर महायण भजविणु [भग्गमणु]
कूवारें गउ णरवइ-भवणु॥
अहो अधकविट्ठ-सुहद्द-सुय।
सिवदेवीवल्लह सग्गचुय॥
परमेसर परम पसाउ करे।
णिग्गमण कुमार हों तणउ धरें॥
वसुएवें पट्टणु मोहियउ।
ण वम्महदण्डें रोहियउ॥
घरिणिहिँ घरकम्मइ छडियइ।
णियणाह-मुहइं उम्मडियइ॥

नही और सभा नही थी जिसमे वसुदेव की कथा न होती हो। किसी के पास बैठा हुआ पति ऐसा जलाता है जैसे आग हड्डियाँ जलाती हो। सखी के द्वारा किसी से यह कहा गया कि वह सुभग मेरे हृदय से अलग नही होता। न तो आभूपण अच्छे लगते हैं और न ही भोजन, न स्नान, न फूल और न लेप।

घत्ता—देवर, ससुर और पति के द्वारा मेरे शरीर की रक्षा की जाती है, लेकिन पूर्ण स्नेह से रचित चित्त को कौन बचा सकता है?॥८॥

जब नगर मे यह हालत हो गयी, तो जो प्रधान लोग थे, उन्हे आगे कर, नगर के प्रवर महाजन भग्न मन हो करुण पुकार करते हुए राजभवन गये। (उन्होंने कहा) हे सुभद्रा के पुत्र अधकवृष्णि! स्वर्ग से अवतरित हे शिवदेवी के पुत्र! हम पर प्रसाद कीजिए। कुमार का बाहर निकलना रोकिए। कुमार वसुदेव ने नगर को मोहित कर लिया है। मानो कामदेव के दण्ड ने सबको अवरुद्ध कर लिया हो। गृहणियो ने घर के काम और पतियो के सुन्दर

१ ज, ब—ण्हाणुवउ णवलण फुल्ल विलेवणउ।

णियणाह-मुहइं उम्माडियइं ॥
जोइज्जइ मयणुम्मत्तियहिं ।
तुह भायरु परकुल-उत्तियहिं ॥
लइ भुंजि भडारा रज्जु तुहु ।
पय जाउ कहिं मि जहिं लहइ सुहु ॥

घत्ता—जइ उप्पज्जइ बालु सइहि मि णियभत्तारें ।
तं अणुहवइ असेसु णिमिउ णाइ कुमारें ॥९॥

त णिसुणेवि णरवइ कुइय मणे ।
कोक्किउ वसुएउ कुमारु खणे ॥
तहो अलिय-सणेहें लग्गु गले ।
आलिंगिवि चुंबिउ सिरकमले ॥
उच्चोलिहि[1] पुणु बइसारियउ ।
पच्छण्ण-पउत्तिहिं वारियउ ॥
सपइ कुमारु दीसहि विमणु ।
परिहरु पुर-बाहिर-णिग्गमणु ॥
वाओलि-धूलि-आयाउ-पवणु ।
आयइ वि सहिंप्पिणु फलु कवणु ॥
गयसालहि मत्तगइंद धरि ।
घरपगणे कदुअ-कील करि ॥
पच्छिम-उज्जाणे मणोहरए ।
कुरु केलि-विउले केलीहरए ॥
अवरेंहि विणोयहिं अच्छु तिह ।
विद्दाणउ अगु ण होइ जिह ॥

दड ने सबको अवरुद्ध कर लिया हो। गृहिणियो ने घर के काम और पतियो के सुन्दर मुख छोड दिये हैं। काम से उन्मत्त परकुल पुत्रियो के साथ तुम्हारा भाई देखा जाता है। हे आदरणीय, अपना राज्य सभालिए। आप ही इसका उपभोग करें। प्रजा कही भी जाए, जहाँ उसे सुख प्राप्त हो सके।

घत्ता—यदि सती के अपने स्वामी से पुत्र होता है, तो कुमार जो भी बातें करता है, उनका अनुभव वह करे ॥९॥

यह सुनकर राजा समुद्रगुप्त मन मे कुपित हुआ। एक क्षण मे उसने कुमार को बुलाया। वह झूठे स्नेह से उसके गले लगा, आलिगन कर उसने सिरकमल चूमा और फिर गोद मे बैठाया। उसे प्रच्छन्न-वचनो से उसने मना किया। हे कुमार! तुम इस समय उदास दिखाई देते हो, नगर के बाहर जाना बन्द करो। तूफान, धूल, धूप और पवन—इनको सहन करने का क्या फल? तुम गजशाला मे मतवाले हाथी पकडो, घर के आगन मे गेंद की क्रीडा करो (गेंद खेलो), सुन्दर पश्चिम उद्यान मे विशाल क्रीडागृह मे क्रीडा करो, दूसरे दूसरे विनोदो से इस प्रकार रहो कि जिससे तुम्हारा शरीर म्लान न हो।

---

1 अ—उच्छोलिहि।

घत्ता—वयणंकुसवयणे वसु-वायागुत्तिहिँ छूढउ ।
थिउ गरुएण गइंदु विणयंकुसेण णिबद्धउ ॥१०॥

तहिँ अवसरि णरवर-पुज्जिए ।
सिवएविहे आणिउ खुज्जिए ॥
चामीयर-भायणे समलहणु ।
¹परिमल-मेलाविय भमरयणु ॥
तं मइँ कुमारेण² अवहरिउ ।
दासहो तणउ णिएप्पिणु दुच्चरिउ ॥
आरत्तउ जाउ सइत्ति मुहु ।
आएहिँ दुचालिहिँ पत्तु दुहु ॥
दिढबंधणु जिह मत्तगउ ।
कापुरिसहो धीरिमु होइ कउ ॥
परियाणिवि भायर-वंचणउ ।
किउ कज्जु कुमारें अप्पणउ ॥
णिक्कन्तिउ सहयरु एक्कु जणु ।
गउ रयणिहे भीसणु पेयवणु ॥
जहिँ जमु वि छलिज्जइ डाइणिहिँ ।
गह भूय-पिसायहिँ जोइणिहिँ ॥

घत्ता—तं पइसरइ मसाणु जं सुरहँ मि भउ लाइउ ।
णाइ भुक्खिएण कालेण मुहु णिव्वाइउ ॥११॥

णियच्छिय मसाणय ।
जणावसाण-थाणय ॥
उलूअजूह-णाइय ।

घत्ता—वचन रूपी गुम्निया से प्रेरित और विनय रूपी अकुश से निबद्ध वसुदेव रूपी महागज भाई के निबन्धन मे स्थित हो गया ॥१०॥

उस अवसर पर नरवरो से पूज्य कुब्जा के द्वारा शिवदेवी के लिए लाया गया, चाँदी के बर्तन मे रखा हुआ, सौरभ के कारण जिस पर भ्रमरगण इकट्ठे हो रहे हैं, ऐसा उबटन कुमार ने बलपूर्वक छीन लिया। उसके दुराचरण को देखकर दासी का मुख एकदम लाल हो गया। [वह बोली] इन्ही दुश्चालो के कारण तुम मतवाले हाथी की तरह दृढ बन्धन को प्राप्त हुए। कापुरुष को धीरज कैसे होना है? भाई की प्रवंचना को जानकर कुमार ने अपना काम किया। एक सहचर के साथ वह अकेला घर से निकल पडा। रात मे भीषण प्रेत-वन मे पहुँचा जहाँ डाइनो, ग्रहो, भूत-पिशाचो और योगनियो के द्वारा यम को भी छला जाता है।

घत्ता—वह उस मरघट मे प्रवेश करता है, जिसके द्वारा देवो को भय उत्पन्न कर दिया गया है, मानो भूखे काल के द्वारा मुख फैला दिया गया हो ॥११॥

उसने मरघट देखा, जो लोगो के अन्त होने का स्थान था, जो उल्लुओ के समूह के कारण

---

१ ज, अ—मलावियभमर यणु । २ ज, अ—कुमारें

पभूयभूय-छाइय ॥
महीगहोवसेविय ।
मरुद्धुयवच्छ वेविय ॥
णिसातमधारिय ।
जमाणणाणुकारिय ॥
चियग्गिजालमालिय ।
खगावली-वमालिय ॥
सरडसूलियाउल ।
सिवासिलया-सकुल ॥
णिसायरेक्क-कदिय ।
पसिद्ध-सिद्ध-सद्दियं ॥
तहिं महामसाणए ।
जमालयाणुमाणए ॥

घत्ता—जायवणाहु पइट्ठु सहयरु दूरु थवेप्पिणु ॥
[1]माणुस णवल वड्ढु कट्ठइ मेलावेप्पिणु ॥१२॥

तूहिं सव्वाहरणाइ मेल्लियइ ।
सत्तच्चिहे उप्परि घल्लियइ ॥
वोल्लाविउ सहचरु जाहि तुहु ।
सिवदेविहिं एवहिं होउ सुहु ॥
पूरतु मणोरहु पट्टणहो ।
सूराहिव-णदण-णदणहो ॥
कहिं चुक्कु सहोयर-पेसणहो ।
हउ उप्परि चढिउ हुआसणहो ॥

ज्ञात था, जो प्रचुर भूतो से आच्छादित था, जो महीग्रह (वृक्षो/ब्राह्मणो ?) से सेवित था, हवा से हिलते वृक्षो से प्रकपित था, जो रात्रि से अधकारमय था, जो यम के मुख का अनुकरण करता था, जो चिताओ की ज्वालमालाओ वाला था, जो खगावली के नवशब्दो से भरपूर था, जो सरकडो और शूलियो से व्याप्त था, जो सियारो और तलवारो से सकुल था, जो निशाचर समूह से आक्रात था, जो प्रसिद्ध सिद्धो से शब्दायमान था, ऐसे यम के आकार वाले उस महा श्मशान मे—

घत्ता—यादवनाथ वसुदेव ने सहचर को दूर कर प्रवेश किया, जहाँ लकडियाँ इकट्ठी कर एक युवक जल गया था ॥१२॥

वहाँ उसने (वसुदेव ने) सब आभूषण इकट्ठे किए और आग मे डाल दिए। सहचर से उसने कहा, "तुम जाओ। इस समय शिवादेवी को सुख हो और नगर के मनोरथ पूरे हो। राजा शूर के पुत्र के पुत्र (समुद्रविजय) भाई की सेवा मे किसी प्रकार चूका हुआ मैं आग पर चढ

---

१. ब माणुस णवाल ।

एत्तडउ चवेप्पिणु कहि मि गउ ।
सच्छद णिरकुसु णाइ गउ ॥
सहयरेण कहिउ सव्वहो पुरहो ।
मायर-णरिंद-अतउरहो ॥
रोवतइ सव्वइ उट्ठियइ ।
पेक्खेवि साहरणइ अट्ठियइ ॥
बधवेहिं विहाणइ दिण्णु जलु ।
तहिं कालि कुमारु वि अतुल वलु ॥

घत्ता—विजयखेडु पत्तु तहिं सुग्गीवेण दिण्णउ ।
सरसइ-लच्छि-समाणु सइ भूसेवि वे कण्णउ ॥१३॥

इय रिट्ठणेमिचरिए सयमूएवकए समुद्दविजयाहिसेय णामो
इमो पढमो सग्गो ।

गया हूँ।" यह कहकर वह(वसुदेव) कही चला गया—स्वच्छद निरकुश गज की तरह । सहचर ने पूरे नगर मे, मा और राजा के रनिवास में यह बात कह दी । सब लोग रोते हुए उठे । आभूषणो के साथ हड्डियाँ देखकर दूसरे दिन सवेरे भाइयो ने उसे जल-दान किया । उस अवसर पर अतुलबल कुमार वसुदेव—

घत्ता—विजयखेट नगर पहुँचा । वहाँ पर सुग्रीव ने सरस्वती और लक्ष्मी के समान दो कन्याएँ स्वय अलकृत करके प्रदान की ॥१३॥

इस प्रकार स्वयभूदेवकृत अरिष्टनेमिचरित मे समुद्रविजयाभिषेक नामक
यह पहला सर्ग समाप्त हुआ ।

विईओ (दुइज्जो) सग्गो

सिरि सुग्गीव-सुआउ परिणेप्पिणु णयरहो णीसरइ ।
णाइ णिरकुस-णाउ वसुएउ महावणु पइसरइ ॥छ॥
हरिवसुब्भेण हरिविक्कमसारवलेण रण्णय ।
दीसइ देवदारु-तलताली-तरल-तमाल-छण्णय ॥
लवलि-लवग लउय-जवु-वर अव-कवित्थ-रिद्धय ।
सामलि-सरल-साल सिणि-सल्लइ-सीसव-समि-समिद्धय ॥
चपय-चूय-चार-रवि-चदण-वदण-वद सुदर ।
पत्तल वहल-सीयल छाय-लयाहर-सयमणोहर ॥
मथरमलयमारुयदोलिय-पायव-पडिय-पुप्फय ।
पुप्फोह-सहल-भमलावलि-णाविय-पहिय-गुप्फय ॥
केसरिणहर-पहर-खरदारिय-करि-सिरभिन्न[1] मोत्तिय ।
मोत्तियपति-कति-धवलीकय सयल दिसा वहत्तिय ॥
[2]खोल्ल-जलोल्ल-तल्ल-लोलत लोलकोल-उल-भीसण ।
वायस-कक-सेण-सिव-जवुअ-धूय विमुक्कणीसण ॥
मयगय-मय-जलोह-कय कद्दम[3] सखुब्भत वणयर ।
फुरिय फणिदफार-फणिद-मणिगण-किरण-करालियावर ॥

श्री सुग्रीव की कन्याओ से विवाह कर वसुदेव नगर से निकलते हैं और अकुशविहीन गज की भाँति महावन मे प्रवेश करते हैं। हरिवश मे उत्पन्न तथा सिंह के पराक्रम के समान सारभूत वल वाले वसुदेव को महावन दिखाई देता है । वह वन देवदार ताल-ताली और तरल तमाल वृक्षो से आच्छादित है, लवली लता, लवगलता, जामुन, श्रेष्ठ आम और कपित्थ वृक्षो से समृद्ध है। शाल्मलि, अर्जुन, साल, शिनि, सत्यकी, सीसम और शमी वृक्षो से सम्पन्न है। चम्पा, आम्र, अचार, रविचन्दन और वन्दन वृक्षो के समूह से सुन्दर है । जिनमे वहुत से पत्ते हैं ऐसे ठडी छायावाले सैंकडो लतागृहो से जो सुन्दर है, जिसमे धीमी-धीमी मलय हवा से आदोलित वृक्षो के पुष्प गिरे हुए हैं, जिसमें पुष्पसमूह सहित भ्रमरावली द्वारा पथिको को झुका दिया गया है, जिसमें सिंहों के नखो के द्वारा तीव्रता से फोडे गए हाथियो के सिरो से मोती विखेर दिए गए हैं, जो गहवरो के जल-समूह में हिलते हुए सुअरो के समूह से भयकर है, जिसमें वायसो, वगुलो, सेनो, सियारो और सियारिनो द्वारा शब्द किया जा रहा है, जिसमें मदगजो के मदजल समूह की कीचड से वन्य प्राणी कुपित हो रहे हैं, जिसका आकाश कांपते हुए नागो से

---

१. ब लित्त । २ ज अ—खोल्लजलोल्ल-लोलतहो लोलकोलकुलभीसण । ३ ज, अ—कद्दम-सकुज्झतवणयर ।

एत्तडउ चवेप्पिणु कहि मि गउ ।
सच्छद णिरकुसु णाइ गउ ॥
सहयरेण कहिउ सव्वहो पुरहो ।
मायर-णरिंद-अतउरहो ॥
रोवतइ सव्वइ उट्ठियइ ।
पेक्खेवि साहरणइ अट्ठियइ ॥
वधवेहिं विहाणइ दिण्णु जलु ।
तहिं कालि कुमारु वि अतुल वलु ॥

घत्ता—विजयखेडु पत्तु तहिं सुग्गीवेण दिण्णउ ।
सरसइ-लच्छि-समाणु सइ भूसेवि वे कण्णउ ॥१३॥

इय रिट्ठणेमिचरिए सयभूएवकए समुद्दविजयाहिसेय णामो
इमो पढमो सग्गो ।

गया हूँ।" यह कहकर वह (वसुदेव) कही चला गया—स्वच्छद निरकुश गज की तरह। सहचर ने पूरे नगर मे, मा और राजा के रनिवास मे यह बात कह दी। सब लोग रोते हुए उठे। आभूषणो के साथ हड्डियाँ देखकर दूसरे दिन सवेरे भाइयो ने उसे जल-दान किया। उस अवसर पर अतुलवल कुमार वसुदेव—

घत्ता—विजयखेट नगर पहुँचा। वहाँ पर सुग्रीव ने सरस्वती और लक्ष्मी के समान दो कन्याएँ स्वय अलकृत करके प्रदान की ॥१३॥

इस प्रकार स्वयभूदेवकृत अरिष्टनेमिचरित मे समुद्रविजयाभिषेक नामक
यह पहला सर्ग समाप्त हुआ।

गिरि गण तुंग-सिंग-आलिंगिय-चंदाइच्च-मंडल ।
तत्थ भयावणे वणे दीसइ णिम्मल सीयल जल ॥

घत्ता—णामें सलिलावत्तु लक्खिज्जइ मणहरु कमल सरु ।
णाइ सुमित्तें मित्तु अवगाहिउ णयणाणंदयरु ॥१॥

जत्थ सत्थ-विच्छुलाइं ।
मच्छ-कच्छ-विच्छुलाइं ॥
रायहंस-सोहियाइं ।
मत्तहत्थि-डोहियाइं ॥
[1]भीतरंग भंगुराइं ।
तारहारपंडुराइं ॥
पउमिणी करंचियाइं ।
चंचरीय-चुंबियाइं ॥
मारुप्प[आय] वेवियाइं ।
चक्कवाय-सेवियाइं ॥
णक्क-गाह-माणियाइं ।
एरिसाइं पाणियाइं ॥
सेयणील-लोहियाइं ।
सूररासि बोहियाइं ॥
मत्त छप्पयाउलाइं ।
जत्थ सरिसुप्पलाइं ॥

घत्ता—तेत्थु रउद्दु गइंदु धाइयउ सवडंमुहु णरवरहो ।
[2]अहिणव-वासारित्तुहि गज्जतु मेहु ण महीहरहो ॥२॥

विशाल और नागराजो की फणमणियो की किरणावलियो से भयकर है, जिसने पर्वत समूह के ऊँचे शिखरो से चन्द्रमा और सूर्य के मण्डलो को आलिंगित किया है, ऐसे उस भयावह वन में उसे स्वच्छ और शीतल जल दिखाई देता है ॥१॥

घत्ता—सलिलावर्त नामका सुन्दर कमल-सरोवर दिखाई देता है। उसने उसका ऐसा अवगाहन किया जैसे सुमित्र ने नेत्रो को आनद देने वाले मित्र का अवगाहन किया हो।

जिस (सरोवर) मे जल प्राणी-समूह से आपूरित है, जो मत्स्यो और कछुओ से व्याप्त है, राजहसो से शोभित है, मनवाले हाथियो से आन्दोलित है, भयकर लहरो से वक्र है, स्वच्छ हार की तरह धवल है, कमलिनियो से अंचित है, भ्रमरो से चुम्बित है, हवाओ से कम्पित है, चक्रवाको से सेवित है, मगरो और ग्राहो के द्वारा सम्मानित है। इस प्रकार के सरोवर के जल मे श्वेत, नीले और लाल, सूर्य की किरणों से विकसित, मतवाले भ्रमरो से आकुल सरस कमल थे।

घत्ता—वहाँ पर, उस नरवर (वसुदेव) के सामने गजेन्द्र इस प्रकार दौड़ा, मानो नई वर्षा-ऋतु मे गरजता हुआ महामेघ पर्वत पर दौड़ा हो ॥२॥

---

१ ब, ज—भीम रंग-भगुराइं। २ ज, अ, ब—अहिणववासारत्तुहि।

उद्धाइउ मत्तमहागइंदु ।
कण्णाणिलचालिय-महिहरिंदु ॥
चलचलणचारि-चूरिय-भुअगु ।
कर पुक्कर-परिचुंबिय-पयगु ॥
मयजल-परिमल-मिलियालिविंदु ।
दढदंतोसारिय सुरगइंदु ॥
णियकाय-कंति-कसणी-कयासु ।
मयसलिल-सित्त-गत्तावकासु ॥
उम्मूलिय-णलिणि-मुणाल सहु ।
दप्पुद्धरु-दुद्धर-गिल्लगंडु ॥
रव-वहिरिय-सयल दियंतरालु ।
सिर-वेज्झुप्पाडिय-गिरि-खयालु[1] ॥
मुह मारुय-वस-सोसिय समुद्दु ।
पडिवारणु वारणु रणे रउद्दु ॥
उद्धरिसण-भीसण रूवधारि ।
कलिकाल-कयत-जमाणुकारि ॥

घत्ता—[2]साहारणु गइंदु हेलए जि कुमारें धरिउ किह ।
धाराहरु वरिसंतु खीलेप्पिणु सुक्कें मेहु जिह ॥३॥

तहिं कालि पराइय विण्णि जोह ।
ण चंद-दिवायर दिण्णसोह ॥
तहिं एक्कु णवेप्पिणु चवइ एव [म] ।

वह मतवाला महागज दौडा, जिसने अपने कानो की हवा से श्रेष्ठ पहाडो को चलायमान कर दिया है, जिसने चचल पैरो की चाल से शेषनाग को चूर-चूर कर दिया है, जिसने हाथ के समान सूड से सूर्य को चूम लिया है। जिसके मदजल के सौरभ से भ्रमर मिले हुए हैं, जिसने अपने मजबूत दाँतो से ऐरावत को खदेड दिया है, जिसने अपने शरीर की कान्ति से दिशाओ को काला बना दिया है, जिसने मदजल से शरीर के भाग को सिंचित किया है, जिसने कमलिनियो के मृणाल-दण्डो के समूह को उखाड दिया है, जो दर्प से उद्धत और दुर्धर आर्द्र गालोवाला है, जिसने अपनी गर्जना से समस्त दिगतराल को बधिर बना दिया है, जिसने सिर की मार से पहाडो के बासो के झुरमुटो को उखाड दिया है, जिसने मुख के पवन से समुद्र को सोख लिया है, जो युद्ध मे शत्रुगज का निवारण करने वाला भयकर महागज है, ऐसे भीषण रूप धारण करने वाले कलिकाल कृतात यम का अनुकरण करने वाले—

घत्ता—उस महागज को कुमार वसुदेव ने खेल-खेल मे इस प्रकार पकड लिया, जैसे वरसते हुए धाराधर मेघ को शुक्र ने कीलित करके पकड लिया हो ॥३॥

उस अवसर पर दो योद्धा आये, मानो शोभा देने वाले चन्द्र और सूर्य हों। वहाँ एक ने

---

१ ब—सिरि वेज्झुप्पाडिय भीसणरूवधारि। २ अ—सो आरणु गइंदु अर्थात् वह आरण (आरण्यक)।

परिपुण्ण-मणोरहु अज्जदेव ॥
हउं अच्चिमालि इहु वायुवेउ ।
णियरूवोहामिय मयरकेउ ॥
वे अम्हइं तुम्हहुं रक्खवालु ।
सुणि कहमि भडारा सामिसालु ॥
वेयड्ढे कुंजरावत्त णयरु ।
तहिं असणिवेउ णामेण खयरु ॥
तहो तणिय तणय णामेण साम ।
वीणापवीण रामाहिराम ॥
एमत्तासरि पुजइ जिणइ जोज्जि ।
भत्तारु ताहे संभवइ सोज्जि ॥
सो तुहुं करि पाणिग्गहणु देव ।
'णिउ पुरु परिणवहु भणेवि एव ॥

घत्ता—सामाएवि लएवि परिअसे थिउ वइरारएण ।
गरुडें जेम भुअगु णिउ णिसिहिं हरिवि अगारएण ॥४॥

ज णिउ वसुएउ महावलेण ।
कुद्धे लग्ग साम सहुं णियवलेण ॥
मरु मरु कहिं महु पिउ लेवि जाहि ।
जइ धीरउ तो रणे थाहि थाहि ॥
विज्जाहरु वलिउ² कयतु जेम ।
तुहुं महिल वराई हणमि केम ॥
परमेसरु पभणइ ववलु तोवि ।
किं रक्खसि खति ण हणइ कोवि ॥

नमस्कार कर इस प्रकार कहा, "हे देव! आज हमारा मनोरथ सफल हुआ। मैं अचिमाली हूँ और यह वायुवेग है। अपने रूप से कामदेव को पराजित करने वाले हे स्वामिश्रेष्ठ! आपके हम दोनो रक्षा करने वाले हैं। मैं कथान्तर कहता हूँ—सुनिए, विजयार्ध पर्वत पर कुजरावर्त नाम का नगर है। वहाँ अशनिवेग नाम का विद्याधर है। उसकी श्यामा नाम की कन्या है जो वीणा मे निपुण और सुन्दरियो मे सुन्दर है। इस सरोवर मे जो भी हाथी को पकड लेगा वही उसका पति होगा। तुम वही हो इसलिए हे देव! तुम उसका पाणिग्रहण करो।" यह कहकर उसे नगर ले जाया गया।

घत्ता—श्यामादेवी को लेकर वह परिरमण मे स्थित ही था कि इतने मे बडा अगार रात मे उसका अपहरण करके उसी प्रकार ले गया, जिस प्रकार गरुड साप को हरकर ले जाता है ॥४॥

जब महाबली के द्वारा वसुदेव ले जाया गया, तो श्यामा अपनी सेना के साथ उसके पीछे लगी और बोली—"मर, मर। मेरे प्रिय को लेकर कहाँ जाता है? यदि धैर्य है, तो युद्ध मे ठहर ठहर।" विद्याधर यम की तरह मुडा और बोला, "तुम बेचारी महिला हो, कैसे मारूँ?" परमेश्वर (वसुदेव) कहता है—"फिर भी बताओ, क्या कोई खाती हुई राक्षसी को नहीं मारता?"

---

१. णिउ पुरु परिणामिओ भणेवि एव। २ अ—विज्जाहर वलिओ।

पडिखलिउ विमाणु खणतरेण ।
अगारउ ताडिउ असिवरेण ॥
तेण वि परिचिंतिउ करमि एम ।[1]
णउ मज्झु ण सामहे होइ जेम ॥
पण्णलहु विज्जाहरेण मुक्कु ।
भूगोयर चपयणयरे ढुक्कु ॥
जहि वासुपुज्जजिणदेव-भवणु ।
णिसिणिग्गमे इदिय-दप्प वमणु ॥

घत्ता—वदिउ परम जिणिदु परमेसरे तिहुयण-सिहरगउ ।
जइ तुहु णाह ण होतु तो भव-ससार हो छेउ णउ ॥५॥

जिणणाहु णविप्पिणु ण किउ खेउ ।
तहि कोवि पपुच्छिउ भूमिदेउ ॥
अहो विअवर जणवउ कवणु एहु ।
किम णाम णयरु पडुरियगेहु ॥
आयासहो किं तुहु पडिउ वप्प ।
ज ण सुणइ लोयपसिद्ध चप ॥
जहि णिवसइ णिरुवम-रिद्धिपत्तु ।
वणिणवणु णामें चारुदत्तु ॥
तहो तणिय तणया गंधव्वसेण ।
परिणिज्जइ जिज्जइ अज्जु जेण ॥
आलावणि-वज्जे मणहरेण ।
तो सउरीपुर-परमेसरेण ॥

क्षण मे तलवार से आहत विमान और अगारक स्खलित हो गया। उसने भी अपने मन मे सोचा कि ऐसा करता हूँ जिससे यह न मेरा हो और न श्यामा का। विद्याधर ने पर्णलघ्वी विद्या छोडी। मनुष्य (वसुदेव) चपानगर मे पहुँचा, जहाँ पर वासुपूज्य जिनदेव का भवन था। रात्रि बीतने पर इन्द्रियो का दमन करने वाले—

घत्ता—परम जिनेन्द्र की वदना की—हे त्रिलोक-शिखर के ऊपर जाने वाले परमेश्वर ! हे नाथ ! यदि तुम न होते, तो इस भव-ससार का अन्त नही था ॥५॥

जिननाथ को नमस्कार कर, विलम्ब न करते हुए किसी ब्राह्मण से पूछा—"हे द्विजवर ! यह कौन-सा जनपद है, सफेद गृहो वाला यह कौन-सा नगर है ? (द्विजवर ने कहा) "तुम बेचारे क्या आकाश से आ पडे हो, क्या तुमने प्रसिद्ध चपा नगरी को नही सुना, जिसमे अनुपम ऋद्धि को प्राप्त (का पात्र), चारुदत्त नाम का वणिकपुत्र निवास करता है। उसकी गधर्वसेना नाम की कन्या है। जिसके द्वारा वह आलापणी नाम की

---

१ प—करमि एण ।

अप्पाणु पयासिउ तेण तेत्थु।
मिलियइं भूगोचर सयइं जेत्थु॥

घत्ता—णिउ वणितणयहे पासि वसुएउ वि णज्जइ मत्तगउ।
'वल्लइ देहि दवत्ति भज्जइ मरट्ठु जेण अज्जतउ॥६॥

तो वीणा सहासइं ढोइयइं।
वसुएवें ताइं ण जोइयइं॥
विरसाइं जज्जराइं कुसज्जिाइं।
सव्वइं लक्खण-परिवज्जिाइं॥
सत्तारह तंति सुघोसवीण।
सुहलक्खण अवलक्खण-विहीण॥
वल्लइय कुमारहो करि विहाइ[2]।
वल्लहिय सुकंतहो कंतणाइ॥
पारद्धु मणोहरु तंतियज्जु।
णं कारणु तेत्थुप्पण्णु अज्जु॥
णं जिणवर सासणु रिसह सारु।
ण बहुलपक्ख-णहु मदतारु॥
परिचिंतइ मणें गंधव्वसेण।
किं वम्महु थिउ माणुसमिसेण[3]॥
किं सग्गहो सुरवरु कोवि आउ।
किं किण्णरु गंधव्वराउ आउ॥

वीणा के द्वारा जीत ली जाएगी, वह उसीसे विवाह करेगी।" तब शौर्यपुरी के स्वामी (वसुदेव) ने अपने को वहाँ प्रगट किया, जहाँ सैकडो मनुष्य इकट्ठे हुए थे।

घत्ता—वसुदेव को वणिक्कन्या गन्धर्वसेना के पास ले जाया गया। वह वहाँ मतवाले गज की भाँति जान पडते थे। उन्होंने कहा—"शीघ्र वीणा दो, जिससे आज तुम्हारा अहंकार नष्ट किया जाए" ॥६॥

तब हजारो वीणाएँ उपस्थित की गयी। वसुदेव ने उनकी ओर देखा तक नही। वे सब नीरस जर्जर, कुसाजवाली और लक्षणो से रहित थी। सत्तरह तारो वाली सुघोष वीणा शुभलक्षणो वाली और अपलक्षणो से रहित थी। कुमार वसुदेव के हाथ मे वह ऐसी सोह रही थी, जैसे सुकात की सुन्दर कान्ता हो। उसने वीणा को सुन्दरता से इस प्रकार वजाना शुरू किया मानो उसे वजाने का सुन्दर कारण उत्पन्न हुआ हो। वह वादन ऋषभसार (ऋषभ तीर्थंकर/ऋषभ-राग) वाला, जिनवर शासन हो या मदतार (मद स्वर और तारो वाला) कृष्णपक्ष हो। तब गन्धर्वसेना अपने मन मे सोचती है—क्या यह मनुष्य के रूप में कामदेव है ? क्या स्वर्ग से कोई श्रेष्ठ देव आया है ? क्या किन्नर या देवराज आया है ?

---

१ ज, अ—वोल्लहि। २. ब—विहाय। ३ ज, अ—माणुसवेसेण।

घत्ता—अण्णहो एउ ण रूउ अण्णहो विण्णाणु ण एत्तडउ।
एहु जगु जिणिवि समत्थु महुचित्तु किर केत्तडउ ॥७॥

कुसुमाउहसरेंहिं[1] सरीरु भिण्णु।
वसुएवें मोहणु णाइं दिण्णु॥
विवण्ण[2] भण एक्कु वि णउ पउ जाइ।
उरे वाहें विद्धि हरिणि णाइ॥
लोयणइ णिवद्धइ लोयणेंहिं।
सवगइ अंगणिवधणेंहिं॥
चित्तेण चित्तु णिच्चलु णिवद्धु।
जीवग्गह-गुत्तिए णाइ छुद्धु॥
वणितणए मयणपरवसाए।
घत्तिय णयणुप्पलमाल ताए॥
परिणिज्जइ हरिकुलणदणेण।
तरुणीयण-थण-मद्दणेण॥
रइ-रसवस इय अच्छति जाम।
फग्गुण-णदीसर ढुक्कु ताम॥
सुरणर-विज्जाहर मिलिय तेत्थु।
सिरिवासुपुज्जजिण-जत्त जेत्थु॥

घत्ता—[3]ता तित्थु गयाइ सविलासइं रहवरे चडियाइं।
छुडु छुडु विण्णवि ण सइ[4] सुरवइ-सग्गहो पडियाइं ॥८॥

जिणभवणहो वाहिरि ताम कण्ण।
मायगिणि णच्चइ सुवण्णवण्ण ॥

घत्ता—यह किसी दूसरे का रूप नही है? किसी दूसरे का यह विज्ञान नही है? यह विश्व को जीतने मे समर्थ है। मेरा चित्त कितना-सा है ॥७॥

कामदेव के आयुधतीरो से उस गधर्वसेना का शरीर विद्ध हो गया, जैसे वासुदेव ने समोहन कर दिया हो। व्याध के द्वारा उर मे आहत हिरनी की तरह वह एक कदम नही चल पाई। नेत्रो से नेत्र वंध गए, शरीर के निवन्धनो से सारे अग वँध गए, और चित्त से अडिग चित्त इस प्रकार वँध गया, जैसे वह जीव लेने वाले कठघरे मे डाल दिया गया हो। कामदेव के अधीन होकर उस श्रेष्ठिकन्या ने अपने नेत्रो की कमलमाला उस पर डाल दी। युवतीजनो के स्तनो का मर्दन करनेवाले हरिवश के पुत्र वसुदेव ने उससे विवाह कर लिया। इस प्रकार वे जव कामक्रीडा के अधीन रह रहे थे, तभी फागुन नन्दीश्वर-अष्टाह्निकपर्व आ पहुँचा। वडे-वडे देव और मनुष्य वहाँ इकट्ठे हुए जहाँ वासुपूज्य जिनवर की 'यात्रा' थी।

घत्ता—वे दोनो (वसुदेव और गधर्वसेना) रथ पर सवार होकर इस प्रकार उतरे, जैसे स्वर्ग से क्रमश इन्द्र और इन्द्राणी अवतरित हुए हैं ॥८॥

इतने मे सोने की रगवाली मातगकन्या जिन-मन्दिर के वाहर नृत्य करती है—जिसने

---

१ ज—कुसुमायुहसरेंहि। २ अ—विवण। ३ ज, अ—इमि तित्थुगयाइ ४ ज, अ, व—सय।

चरण-कमल-कंति-जिय कमल सोह ।
लावण्ण जलाऊरिय-दिसोह ॥
मुह ससि-धवलिय-गयणायास ।
सिर-केस-कंति कसणी कयास ॥
सा कउतयें[1] उच्छलंति दिट्ठ ।
ण कामभल्लि हियवइ पइट्ठ ॥
वसुएव दिट्ठि अण्णहिं ण जाइ ।
णियघरु मुएवि कुलवहुय णाइ ॥
पिय मयण-परव्वस दुहिय कंत[2] ।
चलपुरिस होंति अविवेयवंत ॥
ण मुणंति महिल महिलंतराइ ।
रहु सारहु सारहि धरिउ काइ ॥
तो पेल्लिय सूए वरतुरंग ।
ण मारुएण जलणिहि-तरंग ॥

घत्ता—वणितणए करि लेवि पइसारिउ जोयउ जिणभवणे[3] ।
देव विहिए पणवंति मायंगिणी झायइ णिय मणे ॥९॥

कुमारेण सउरीपुरि-सामिएण ।
मउम्मत्त मायंगी-भामिएण ॥
पवंदिउ[4] देवदेवो जिणिंदो ।
अणिंदो अणिंदयवंदाहिवंदो ॥
तिलोयग्गगामी तिलोयणाहो[5] ।

चरणकमलों की कान्ति से कमलों की शोभा को जीत लिया है, जिसने अपने सौन्दर्य-जल से दिशा-समूह को आपूरित कर दिया है, जिसने अपने मुख-चन्द्र से आकाश धवल बना दिया है, जिसकी केश-राशि ने दिशाओं को श्याम कर दिया है। कौतुक के साथ उछलती हुई वह ऐसी दिखाई दी मानो कामदेव की बरछी हृदय में प्रवेश कर गई हो। वसुदेव की दृष्टि उसी प्रकार किसी दूसरी ओर नहीं जाती, जिस प्रकार कुलवधू की दृष्टि अपने घर को छोड़कर कहीं और नहीं जाती है। प्रिय को काम के वशीभूत देखकर कान्ता गन्धर्वसेना दुःखी हो उठी। (वह सोचती है) चचल पुरुष अविवेकशील होते हैं, वे स्त्री और स्त्री के बीच अन्तर नहीं समझते। हे सारथि! तुम रथ चलाओ, उसे रोक क्यों रखा है? सारथि ने तब श्रेष्ठ अश्वों को प्रेरित किया, मानो पवन ने समुद्र की लहरों को प्रेरित किया हो।

घत्ता—वणिक्कन्या ने हाथ पकड़कर वसुदेव को भीतर प्रवेश कराया। वह विधिपूर्वक देव को प्रणाम करता है, परन्तु अपने मन में मातगसुन्दरी का ध्यान करता है ॥९॥

मातगसुन्दरी के द्वारा भ्रमित, शौर्यपुरी के स्वामी कुमार वसुदेव ने स्तुति प्रारभ की—हे देववन्द्य! देवदेव जिनेन्द्र, अनिन्द्य, अनिन्द्यों के समूह द्वारा वन्दनीय, त्रिलोक के अग्रगामी,

---

१ ज, अ—सइ कुतवें। २ ज, अ—दुहय कंत। ३. ज, अ—जिणभवणु। ४ अ—वलावदिउ। ५ ब—तिलोयस्स णाहो।

अराउ अकामो अडाहो अबाहो ॥
सुहकेवलं केवलं जस्स णाण ।
महादेव देवत्तणं चप्पहाण ॥
असोयद्दुमो जस्स दिण्णेव [णियडेव] सोहो।
पहामडल दुदिहि-चामरोहो ॥
मइदासण आमरी पुप्फवास ।
ति सेयायवत्तइं दिव्वायभास ॥
चिधेहिं एएहिं तुम देवदेवो ।
णराण वि दीसति कोवालेवो ॥
तुमम्मि पसण्णम्मि होंतु मे ताण ।
ण चिघाइ एयाइ सव्वामराण ॥

घत्ता—वदिवि परमजिणिदु सकलत्तु गउ वसुएउ घरु ।
ण सकरेणु करेंणु पइसरइ मणोहर कमलसरु ॥१०॥

तहि कालि कुमारकएण वाल ।
ण पवधइ णियसिरि कुसुममाल ॥
ण पसाहइ अगु पसाहणेण ।
ण[1] दीविय विरह-हुआसणेण ॥
जरु डाहु अरोचु कुरुवासु सोसु ।
पासेअ खेउ पसरइ अतोसु ॥
सतावइ चदणलेउ चदु ।
मलयाणिलु दाहिणि-सुरहि मदु ॥
परिपेसिय दूई जाहि माए[2] ।
लग्गेज्जहि सुहयहो तणए माए ॥

त्रिलोक स्वामी, अराग, अकाम, ईर्ष्याविहीन, बाधा रहित, जिनके केवल शुभ केवलज्ञान है, ऐसे हे महादेव! देवत्व में प्रधान, जिनके पास शोभा देने वाला अशोक वृक्ष है, प्रभामण्डल, दुंदुभि और चामर समूह है, सिंहासन है, दिव्य पुष्प-वृष्टि है, तीन श्वेत छत्र हैं, दिव्यवाणी है, ऐसे चिह्नो के कारण तुम देव-देव हो। मनुष्यो मे कोप का अवलेप देखा जाता है, तुम्हारे प्रसन्न होने पर मेरा त्राण होगा—ये चिह्न सब देवो के नही होते।

घत्ता—इस प्रकार परमजिनेन्द्र की वदना कर वसुदेव अपनी पत्नी के साथ उसी प्रकार घर गया, जिस प्रकार हाथी हथिनी के साथ कमल-सरोवर मे प्रवेश करता है ॥१०॥

उस अवसर पर कुमार के लिए, वह विद्याधरबाला अपने सिर पर फूलो की माला नही बाँधती। अपने अगो को प्रसाधनो से नही सजाती। मानो विरह की आग से वह उद्दीप्त हो उठी। ज्वरदाह, अरोचकता, कुरुवासु। शोषण, प्रस्वेद, खेद और असन्तोष फैलता है। चन्द्रमा और चन्दन का लेप, सुरभित मदमद दक्षिण पवन उसे सताप पहुँचाते हैं। उसने दूती भेजी—हे आदरणीये! जाओ और तुम उस सुभग के पैरो से लगो। कामदेव के रूप का

१. ज, अ—सदीविय। २. ब—मए।

जुज्जइ अणग रूवाणु कारि।
परिणज्जउ विज्जाहर कुमारि ॥
णीलंजस णामें पइ दिट्ठु।
मायगिणीवेसें पुरे पइट्ठु ॥
ण समिच्छइ जइ सो त करेहि।
णिय विज्जापाणि हरिवि एहि ॥

घत्ता--जाएवि दूयडियाए सामिणि केरउ आएसु किउ।
सुहु सुत्तउ जि कुमारु वेयड्ढमहीहरे णवर णिउ ॥११॥

परिणिय नीलजस णामधेय।
पुणु सोमलच्छि पुणु मयणवेय ॥
पुणु भिल्लहो तणया जरापत्त।
तहिं जरकुमार उप्पण्ण पुत्त ॥
पावतु लभ परिभमिउ ताम।
वरिससयइ सत्तासयाइ जाम ॥
गउ णरवर णवर अरिट्ठणयरु।
तिलकेसहो कारणे ण सयरु ॥
तहिं णरवर णामे लोहियक्खु।
जसु केरउ णिम्मल उहयपक्खु ॥
तहो घरिणि सुमित्त महाणुभाव।
भूभगोहामिय मयणचाव ॥
तहो णवणु णाम हिरण्णणाहु।
सुयरोहिणिहे वट्टइ विवाहु ॥
आढत्तु सयवरु मिलियराय।

अनुकरण करने वाले उससे कहा जाए कि तुम उस नीलजसा नाम की कुमारी से विवाह कर लो जिसे तुमने मातगिनी के रूप मे नगर मे प्रवेश करते हुए देखा है। यदि वह नही चाहता है, तो तुम ऐसा करना कि अपनी विद्या के हाथ उसका हरण करके उसे ले आना।

घत्ता—उसी दूती ने जाकर कुमारी स्वामिनी का आदेश किया, वह सुख से सोते हुए कुमार को सिर्फ विजयार्ध पवत पर ले आयी ॥११॥

उसने नीलजसा नाम की विद्याधरबाला से विवाह किया, फिर सोमलक्ष्मी और मदनवेगा से। फिर भिलनराज की पुत्री जरा को प्राप्त हुई। उससे जरत्कुमार पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार लाभ प्राप्त करता हुआ कुमार तब तक घूमता रहा, जबतक कि उसे सात सौ वर्ष नही हो गए। वह नरश्रेष्ठ सिर्फ अरिष्टनगर पहुँचा, जैसे निलकेशा के लिए सगर पहुँचा हो। वहाँ लोहिताक्ष नाम का राजा था जिसके दोनों पक्ष निर्मल थे। महान् भाववाली उसकी सुमित्रा नाम की पत्नी थी, जिसने अपनी भ्रूभगिमा से कामदेव के धनुष को नीचा दिया था। उसके पुत्र का नाम हिरण्यनाभ था। उसकी पुत्री रोहिणी का विवाह होना था, इसलिए

कुरुपंडव जायवपमुह आय ॥

घत्ता—सव्वेक्केक्कपहाणा सव्वेहिं सव्व सामग्गि किय।
णिय-णिय मचारूढ अप्पाणु सय भूसितं थिय ॥१२॥

इय रिठणेमिचरिए धवलइयासिए सयमूएवकए गधव्वसेणालभो णाम
दुइज्जो (विईयो) सग्गो।

स्वयवर प्रारम्भ हुआ। उसमे कुरु-पाडव और यादव-प्रमुख राजा मिलकर आये।

घत्ता—वे सभी एक-से-एक प्रधान थे। सब के द्वारा सब प्रकार की सामग्री जुटाई गई थी। अपने-अपने मचो पर बैठे हुए वे स्वय को आभूषित कर रहे थे ॥१२॥

धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव कवि द्वारा विरचित इस अरिष्टनेमिचरित
काव्यमे गन्धर्वसेना प्राप्ति नाम का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तइओ सग्गो

रोहिणिफार-परमाणा सयल वि राणा मिलिया जरसर्ये।
ण दसदिसिहिं पमत्ता महुयरमत्ता पवित्रा केयइ-गर्ये ॥
णिग्गय रोहिणि जयजयसद्दें।
गहिय पसाहण-जुव्वण-गव्वें ॥
सव्वाहरण-विइसिय-देही।
फति-समुज्जल-विज्जल जेही ॥
मोहण येल्लिय मोहणलीला।
वम्मह भल्लिव विघणसीला ॥
ताराएवि य थाणहो चुक्की।
तक्खय-दिट्ठीय सव्वहो ढुक्की ॥
ज ज जोयइ त त मारइ।
सोण अत्थि जो मणु साहारइ[1] ॥
सो ण अत्थि जो णउ सतत्तउ।
सो ण अत्थि जो मुच्छ ण पत्तउ ॥
सो णउ अत्थि सा जेण ण विट्ठि[2]।
सो ण अत्थि जसु हियइ ण पइट्ठि ॥
सयलु लोउ मूसिउ मणचोरिए।
मोंहिउ हरिण-णिवहु ण गोरिए ॥

रोहिणी से पाणिग्रहण करनेवाले समस्त राजा जरासध से इस प्रकार मिले, जैसे केतकी की गन्ध से आकर्षित होकर मतवाले भ्रमर सभी दिशाओ मे फैल गए हो। यौवन के गर्व से प्रसाधन करने वाली रोहिणी जय-जय शब्द के साथ निकली—जिसकी देह सब प्रकार के आभूषणो से विकसित है, जो बिजली के समान उज्ज्वल शरीरवाली है, जो सम्मोहन लता और समोहन लीला के समान है, जो कामदेव की मल्लिका के समान बँधने के स्वभाववाली है, जो स्थान से च्युत तारा के समान है। गिद्ध-दृष्टि के समान वह सबके पास पहुँची। जिस-जिस को वह देखती है, उसको मार डालती है। वहाँ एक भी ऐसा नही था जो मन को सहारा दे। वहाँ एक भी ऐसा नही था जो सतप्त न हुआ हो। ऐसा एक भी व्यक्ति नही था जो मूछित न हुआ हो। वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति नही था जिसने उसको न देखा हो और जिसके हृदय मे उसने प्रवेश न किया हो। मन को चुराने वाली उसने सारे लोक को ठग लिया, मानो गोरी ने मृग-समूह को मोह लिया हो।

---

१ म—यह पक्ति नही है। २ सभी प्रतियो मे 'सो णउ अत्थि जेण ण दिट्ठि' पाठ है, उनमें दो मात्राएँ कम हैं।

घत्ता—णिय-सामिणि-अणुलग्गी करिणि व लग्गी धाइ णराहिव दावइ।
आयहं मज्झे असेसहं उज्जलवेसहं लइ जुवाण जो भावइ ॥१॥

जोवइ बाल धाइ दरिसावइ।
एक्कु वि णरवइ मणहो ण भावइ ॥
वंचिय [1]कंचणमंचमयंधहं।
किव-गंगेय-दोण-जरसंघहं ॥
वंचिय इंद-पडिंद-सुरीसव।
विण्णिवि सोमयत्त-भूरीसव ॥
वंचिय विउर-पंडु-धयरट्ठवि।
केरल-कोसल-जवण-घट्टवि ॥
वंचिय भोट्ट-जट्ट जालंधरवि।
टक्क-हीर-कीर-खस-बब्बरवि ॥
गुज्जर-लाड-गउड-गंधार-वि।
सिंधव-मद्द-सुरट्ठ-दसारवि ॥
वंचिय उग्गसेण-महसेण वि।
देवसेण-सुरसेण-सुसेणवि ॥
बंभणइब्भ ते वि णवि जोइय।
जहिं तूरइं तहिं करिणि चोइय ॥

घत्ता—तहिं पणवंतहं ब्भंतरि[1] जो जो अंतरि सो सो कोवि ण भावइ।
सवणेंदियहं[2] सुहावउ ण परिणावउ पडहसद्द परिभावइ ॥२॥

घत्ता—धाय अपनी स्वामिनी के पीछे हथिनी के समान लगी हुई उसे राजा दिखाती है। उज्ज्वलवेष वाले इन समस्त लोगो के बीच जो युवक अच्छा लगे उसे वर लो ॥१॥

बाला देखती है, और धाय दिखाती है, उसके मन को एक भी राजा अच्छा नही लगता। स्वर्णिम मचो से मदाध कृपाचार्य, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और जरासध को उसने छोड दिया। इन्द्र, प्रतीन्द्र और शूरिश्रव को भी उसने छोड दिया। सोमदत्त और भूरिश्रव दोनो को भी उसने वचित किया। विदुर, पाडु और धृतराष्ट्र को वचित किया। केरल, कोसल, यवन और घाट (?) को वचित किया। भोट, जाट और जालधर को वचित किया। टक्क (पजाब), हीर, कीर, खस (कश्मीर के दक्षिण का प्रदेश), बर्बर, गुर्जर, लाट, गौड़ और गाधार को भी, सैधव, मद्र, सौराष्ट्र और दशार्हों को भी वचित किया। उग्रसेन और महासेन को भी, देवसेन, सुरसेन, सुषेण को भी, ब्राह्मणो और धनाढ्यो को भी उसने नही देखा। जहाँ नगाडे थे, वहाँ उसने हथिनी को प्रेरित किया।

घत्ता—वहाँ नगाडा बजानेवालो के भीतर बीच-बीच मे जो जो दिखाई देता है, वह कोई भी अच्छा नही लगता। उसे केवल श्रवणेन्द्रियो को सुहावना लगनेवाला विवाह के नगाडे का शब्द अच्छा लगता है ॥२॥

---

१. अ—वण्णइब्भतरि। २ अ—सवणिंदयहं।

पथिय-पणय सद्दु सुउ कण्णए[1] ।
आउ आउ ण कोक्कइ सण्णए[2] ।।
आउ आउ वरु एत्तहे अच्छइ ।
आउ आउ इह माल पडिच्छइ ।।
आउ आउ एहु सव्वहो चगउ ।
सव्वाहरण-विहूसिय अगउ ।।
आउ आउ एहु णिरुवम देहउ ।
आउ आउ एहु वम्मह जेहउ ।।
आउ आउ केम अच्छहि दूरें ।
एम णाइ हक्कारह तूरें ।।
वच्चिवि दियवर वणिवर-खत्तिय ।
पाडियहहो-घरि माल घत्तिय ।।
जे जे मिलिय सयवरि राणा ।
ते ते सयल वि थिय विद्दाणा ।।
जणु जपइ तहो सिय आवग्गि ।
रोहिणि जसु करपल्लवे लग्गि ।।

घत्ता—वुच्चइ सो मज्झत्थें सुरवरसत्थें एह ण जुज्जइ सयलहो ।
चिर चदायणि चिण्णहो परिरमण्णहो ण रोहिणि तिह सयलहो ।।३।।

तो आढत्तमहापडिबधें ।
सण्णिय णियणरिंद जरसधें ।।
पाडियहो कुमारि उद्दालहो ।
रयणाइ सभवति महिवालहो ।।

कन्या ने पथिक (वसुदेव) के नगाडे का शब्द सुना जो मानो सकेत से कहता है कि आओ, आओ। आओ, आओ वर यहाँ है। आओ, आओ यह माला की प्रतीक्षा करती है। आओ, आओ यह सबसे अच्छा है, और इसका शरीर सब प्रकार के आभूषणो से विभूषित है। आओ, आओ, यह अनूपम देहवाला है। आओ, आओ, यह कामदेव के समान है। आओ दूर क्यो हो? इस प्रकार नगाडा उसे पुकारता है। द्विजवर, वणिक्वर और क्षत्रियो को छोडकर उसने उस प्रतिहारी के गले मे माला डाल दी। स्वयवर में जो-जो राणा सम्मिलित हुए थे, वे सब निराश होकर रह गए। लोग कहते हैं कि लक्ष्मी से वही आभभूत होगा, जिसके हाथ लक्ष्मी लगेगी।

घत्ता—तब मध्यस्थ सुरवर-समूह कहता है कि सबके लिए यह उचित नही है। शाश्वत चाँदनी के चिह्नवाले और सब ओर से रमणीय चन्द्रमा की तरह रोहिणी सबकी नही होती ।।३।।

तब महा प्रतिबध प्रारभ करनेवाले जरासध ने अपने पक्ष के राजाओ को सकेत दिया कि इस पैदल चलनेवाले से कुमारी को छीन लो। रत्न (स्त्रीरत्न) केवल राजा के ही होते हैं।

---

१. ब—कण्णइ। २ ब—सण्णइ।

रुहिरहिरण्णणाह बोल्लावहु ।
जइ ण देइ तो यमपहे लायहु ॥
धाइय णरवर पहुआएसें ।
ण जमकिंकर-माणुमवेसें ॥
तहिं अवसरि वसुएवहो ससुरें ।
सो णिरुद्ध ण केणवि असुरें ॥
रहि अप्पणइ चढायउ जायउ ।
सिहरि महीहरेण ण पायउ ॥
तो णिरुवेवि तायहो सवणे ।
थिउ [1]दप्पुब्भड-फडमद्दणे ॥
तो पमरिय रणरहसणुराए ।
वुच्चइ लोहियक्खु जामाए ॥

घत्ता—सरहु सहासणु दिज्जउ एत्तिउ किज्जउ पइं ण माम लज्जावमि ।
एवु एवु अरि उप्परि हउ णरकेसरि हरिण जेम उड्डावमि ॥४॥

परिणिउ [2]कलत्तु को उद्दालइ ।
को इदहो इंदत्तणु टालइ ॥
को फणिवइहे फणामणि तोडइ ।
वइवस-महिस-सिगु को मोडइ ॥
तुम्हइ विण्णिवि रोहिणि रक्खहो ।
हउ अब्भिडमि एक्कु पडिवक्खहो ॥
वइसिहि थरहरत सर लायमि ।
उद्ध कवध-णिवहु णच्चावमि ॥

लोहिताक्ष और हिरण्यनाभ से कहो । "यदि वह कन्या न दे, तो उसे यमपथ पर भेज दो ।" प्रभु के आदेश से अनुचर दौड़े, जैसे मनुष्य के रूप में यमकिंकर हो। उस अवसर पर वसुदेव के ससुर ने, किसी असुर के द्वारा निरुद्ध यादव को अपने रथ पर चढा लिया, मानो पर्वत ने वृक्ष को अपने शिखर पर चढा लिया हो । तब विचार कर वसुदेव ससुर के दर्प से उद्धतों को चकनाचूर करनेवाले रथ पर स्थित हो गए । इतने में जिसमें युद्ध के लिए हर्ष और अनुराग उमड रहा है ऐसे जामाता ने लोहिताक्ष से कहा—

घत्ता—"रथ सहित धनुष मुझे दो, इतना कीजिए । हे ससुर ! मैं आपको लज्जित नहीं करूँगा । दुश्मन आए, दुश्मन आए, मैं उसे उसी प्रकार ऊपर उडा दूँगा जिस प्रकार सिंह हरिण को उडा देता है ॥४॥

विवाहित स्त्री को कौन छीनता है ? इन्द्र का इन्द्रत्व कौन टालता है ? नागराज के फणामणि को कौन तोड़ता है ? यम के भैंसे के सींग को कौन मोड़ता है ? आप दोनों रोहिणी की रक्षा करें, मैं अकेला ही शत्रु पक्ष से भिड़ूँगा। शत्रु पर थर्राते हुए तीरों की बौछार करूँगा । ऊँचे धड़ों के समूह को नचाऊँगा ।" जब कुमार वसुदेव ने इस प्रकार गर्जना की, तो ससुर ने उन्हें सारथि

१ ब—दप्पुब्भडफडवद्धणे। २ अ—गो कलत्तु ।

गज्जिउ ज वसुएउ-कुमारें।
दिण्णु महारहु सहु जुत्तारें॥
दुइसहास-रहवरह रउद्दह।
छह गयवुहर-मत्तगइंदह॥
हयह चउद्दह दप्पुत्तालह।
भिडियइ वलइ वेवि अवरोप्पर।
एउ उच्छलिउ भरतु दिगतरु॥

घत्ता—मत्त मयग-मयगह तुरग तुरगह रहवर-रहवरवदह।
जोहजोहह महारणे रोहिणि कारणे णरिद-णरिदह॥५॥

उत्थरति-साहणाइ।
चाउरग-वाहणाइ॥
सुट्ठुबद्ध-मच्छराइ।
तोसियामरच्छराइ॥
एक्कमेक्क-कोक्किराइ।
कोंतिकोडि-चोक्किराइ॥
वाणजाल-छाइयाइ।
धूलिवाउ धूसिराइ॥
आउहोह-जज्जराइ।
दतिदत-पेल्लियाइ॥
सोणियव-रेल्लियाइ।
घोरघाय-भिभलाइ॥
णित्त-अत-चोंभलाइ।
तिक्खखग्ग खडियाइ॥
भल्लुयार-वाउलाइ।
घोरगिद्ध-सकुलाइ॥

के साथ महारथ दे दिया। दो हजार भयकर रथ, गध से उद्धत छह हजार मतवाले हाथी, दर्प से उद्धत चौदह हजार घोडे। इस प्रकार दोनो सेनाएँ आपस मे भिड गईं। दिशाओ मे फैलती हुई धूल उठी।

घत्ता—उस महायुद्ध मे मतवाले हाथी मतवाले हाथियो से, घोडे घोडो से, श्रेष्ठरथ श्रेष्ठ रथो से, योद्धा योद्धाओ से तथा राजा राजाओ से रोहिणी के कारण भिड गए॥५॥

चतुरग वाहनो वाली सेनाएँ उछलती हैं, अत्यन्त मत्सर (ईर्ष्या) से भरी हुईं, देवो और अप्सराओ को सतुष्ट करनेवाली, एक-दूसरे को ललकारती हुईं, भालो के किनारो से चूकी हुईं, तीरो के जाल से आच्छादित, धूल और हवा से धूसरित, आयुधो के समूह से जर्जर, हाथियो के दाँतो से हटाई जाती हुईं, रक्तजलो से प्रवाहित होती हुईं, भयकर आघातो से विह्वल होती हुईं, जिनकी आँतें और चोटियाँ ले जाई जा रही हैं ऐसी पैनी तलवारो से खडित, भालुओ के शब्दो से व्याप्त और भयकर गीधो से सकुल हैं। जब शत्रुपक्ष सिंह के

सीह-विक्कमे विवक्खे।
हीयमाणए सवक्खे॥

घत्ता—तहिं अवसरि वाहियरहु मरण-मणोरहु सउरि ससालउ थक्कइ।
दुस्सहु एक्कु हुआसणु अवरु पहजणु वेवि धरिवि को सक्कइ॥६॥

विहिमि हिरण्णणाह-वसुएवेंहि।
रणरसियहिं वड्ढिय-अवलेवेंहिं॥
वाहिय-रहेंहि अखचिय-वग्गेंहि।
गधवह-धुअ-धवलधयग्गेंहि[1]॥
सुरवेयड सुड-भुयदडेंहि।
इदायुह-पयड-कोदडेंहि॥
विसहरदीह-दीह दीह-णाराऍंहि।
मेह समुद्द-रउद्द-णिणाऍंहि॥
छाइउ परबलु सरवरजालें।
ण गिरिउलु णवपाउसकालें॥
सो ण जोहु णरोहु ण गयवरु।
त ण रहगु ण रहिउ णउ रहवरु॥
सो णवि आसवारु ण तुरगमु।
सो णराहिउ जयसिरि-सगमु॥
त णवि आयवत्तु णवि चिंधउ।
ज वसुएउ-सरेंहि ण विंधउ॥

पराक्रम वाला हो उठा और वसुदेव का अपना पक्ष दुर्वल था—

घत्ता—तब उस अवसर पर रथ चलाने वाला और मरने की इच्छा रखने वाला वसुदेव अपने साले के साथ स्थित हो गया। एक तो आग वैसे ही असह्य होती है दूसरे हवा हो, तो दोनो को कौन धारण कर सकता है ?॥६॥

जो युद्ध मे गरज रहे हैं, जिनका अहकार बढ रहा है, जो रथो को हांक रहे हैं, जिन्होंने लगामे खीच रखीं हैं, जिनके ध्वजो के अग्रभाग प्रकपित हैं, जिनके बाहुदण्ड देवताओ के ऐरावत महागज की सूंड के समान हैं, जो इन्द्रधनुष के समान प्रचण्ड धनुष वाले हैं, जिनके तीर विषधरो के समान हैं, जो मेघ और समुद्र के समान रौद्ररस वाले हैं, ऐसे हिरण्यनाभ और वसुदेव ने शत्रुसेना को शरवरो के जाल से ऐसा आच्छादित कर लिया, जैसे नवपावस काल ने पर्वत समूह को आच्छादित कर लिया हो। वहाँ ऐसा एक भी योद्धा और नर समूह नही था, गजवर नही था, चक्र नहीं था, सारथि नही था, अश्वारोही नही था, अश्व नही था, विजय रूपी लक्ष्मी का आलिंगन करने वाला ऐसा राजा नही था, ऐसा आतपत्र नही था, ऐसा निशान नही था, जो वसुदेव के तीरो से छिन्न-भिन्न न हुआ हो।

---

१ म—गधव्वहो धुय धवल धयग्ग हो।

घत्ता— वायउ मुक्कु सलक्खें तहो पडिवक्खें तेण वि रणे माहिंदें।
सरेंहि दसहि विच्छिण्णउ ण परिच्छिण्णउ भवससारु जिणिंदें ॥७॥

तहिं अवसरि समरगणि सुद्धें।
जरसधहो किंकरेण पउड्डें ॥
लइउ हिरण्णणाहु महुवाणेंहि।
दूसह दिणयर-किरण-समाणेंहि ॥
रुहिरहो णदणेण धणुहत्थें।
छिण्णु महारहु एक्कें सत्थें ॥
चउहि चयारि तुरगम घाइय।
वइवस-पुरवर-पत्थे लाइय ॥
अवरें आयवत्तु धउ अवरें।
अवरें वाणजालु धणु अवरें ॥
जाम पउडु अवरु सरु सधइ।
णायवासु जगु जेण णिबधइ ॥
ताम विरुद्धएण वसुएवें।
पेसिउ अद्धचदु विणु खेवें ॥

घत्ता—तेण सरासणु ताडिउ हत्थहो पाडिउ कोडिगुणालकरियउ।
णियसत्तुप्पत्तिवीणहो[1] लक्खणहीणहो ण धणु दइवें हरियउ ॥८॥

जिणेवि पउडु समरु प्रसरालउ।
गउ वसुएउ लेवि णियसालउ ॥

घत्ता—लक्ष्य से युक्त प्रतिपक्ष ने वायव्य तीर उस पर छोडा। उसने भी युद्ध मे माहेन्द्र अस्त्र के द्वारा दस तीरो से उसे छिन्न-भिन्न कर दिया, मानो जिनेन्द्र भगवान् ने ससार छिन्न-भिन्न कर दिया हो ॥७॥

उस अवसर पर युद्ध के मैदान मे, जरासध के मत्त अनुचर पौंड्र ने दिनकर की असह्य किरणों के समान तीरो से उसे घेर लिया। जिसके हाथ मे धनुष है, ऐसे रुधिर के पुत्र ने एक ही शस्त्र के द्वारा महारथ को छिन्न-भिन्न कर दिया, चार तीरो के द्वारा चारो अश्व घायल हो गये। वे यमनगर के रास्ते भेज दिए गये। एक तीर से छत्र, एक से ध्वज, एक और तीर से वाणजाल, एक और तीर से धनुष को ध्वस्त कर दिया। सब तक पौंड्र दूसरे तीर नागपाश का सधान करता है कि जिससे सारा जग निबद्ध कर लिया जाता है, तब तक वसुदेव ने विरुद्ध होकर, बिना किसी देर किए अर्धचन्द्र चला दिया।

घत्ता—उसने कोटि और डोर से अलकृत धनुप को प्रताडित किया और हाथ से गिरा दिया, मानो विधाता ने अपने दुश्मन के उत्पन्न होने से दीन हुए उसका धन छीन लिया हो ॥८॥

वसुदेव लगातार पौंड्र को युद्ध मे जीत कर अपने साले को लेकर चल दिए। वह रथवरो,

---

१ णिह सत्तुपत्तिणहो।

भिडिउ णवर जरसंधहो साहणे ।
रहवर-तुरय-महागय-वाहणे ॥
हम्मइ एक्कु अणतेहिं जोहहिं ।
तो वि पवरसिउ सरधारोहहिं ॥
चउदिसु रहु वाहतु ण थक्कइ ।
सदणलक्खु णाइ परिसक्कइ ॥
एक्कु सरासणु विण्णिवि हत्थउ ।
विंधइ ण धणु कोडिवि हत्थउ ॥
सरह पमाणु णाहि णिवडतह ।
[1]ण घणघणह णह हो वरिसतह ॥
किउ पारक्कउ लोहावद्धउ ।
णं तवणेण तिमिरु ओवद्धउ ॥
णउ णासइ साहारु ण बधइ ।
स सरासणि ण सरासणे सधइ ॥

घत्ता—त जरसधहो साहणु रहगयवाहणु एक्कें रणमुहे धरियउ ।
सीहकिसोरहो भिडियहो कमवहे पडियहो गयजूहहो अणुहरियउ ॥९॥

तहि अवसरि मज्झत्थीभावें ।
पेक्खयलोए ललिय-सहावें ॥
रूवरिद्धि-सोहग्ग-मयधहो ।
धिद्धिक्कारु दिण्णु जरसधहो ॥
किं जोइएण णराहिवसत्तें ।

अश्वो, महागजो और वाहनो वाली जरासध की सेना से भिड गए। यद्यपि अनेक योद्धाओ द्वारा वह अकेला मारा जाने लगा। फिर भी वह तीरधाराओ के समूह के साथ बरस पडा। चारो दिशाओ मे रथ घुमाता हुआ वह नही ठहरता, लाखो रथो वाले के समान वह (एक रथी) परिभ्रमण करता। एक धनुष और दो हाथ, परन्तु वह इस प्रकार भेदन करता जैसे करोडो धनुषवाला हाथ हो। गिरते हुए तीरो का कोई प्रमाण नही था, जैसे आकाश से धमाधम बरसते हुए मेघो का कोई प्रमाण नही होता। उसने शत्रुओ को एक कतार मे ऐसे बाँध दिया, जैसे सूर्य ने आकाश मे अधकार को बाँध दिया हो। वह सैन्य न तो भाग पाता और न अपने को ढाढस दे पाता। धनुष होते हुए भी, वह तीरो के आसन का सधान करता।

घत्ता—युद्ध मे उस अकेले ने जरासध की सेना और रथ गजादि वाहनों को पकड लिया। वह सैन्य ऐसा मालूम होता था, जैसे किशोर सिंह से युद्ध करता हुआ गज समूह उसके पैरो के पथ मे आ पडा हो ॥९॥

उस अवसर पर मध्यस्थ भाव धारण करने वाले सुन्दर स्वभाव वाले प्रेक्षक लोक ने रूप वैभव और सौभाग्य से मदाध जरासध को धिक्कारा कि उस राजा के सत्व को देखने से

---

१ ब—ण घणघणह थर्भाहि वरिसतह ।

जेण जुवाण सहुँ समजुत्तें ॥
तं णिसुणेवि विसज्जिउ धरिवत्तें ।
णं णियदूउ विसज्जिउ कालें ॥
धाइउ सत्तुंजउ वसुएवहो ।
. . ।[1]
विण्णि वि सगर सरासण हत्थ ।
विण्णि वि जयसिरिगहण-समत्थ[2] ॥
विण्णि वि पहरंति अपमाणेहिं ।
जलहर जलधारोवम बाणेहिं ॥
तो अवसरु सुहद्दायणें ।
दिण्ण सुरंगण णोयण पसरें ॥

घत्ता—रिउ णाराएं ताडिउ सारहि पाडिउ हय हय छिण्णु महारहु ।
समरभरोड्डियखंधहो गउ जरसंधहो णिप्फलु णाइं मणोरहु ॥१०॥

पाडिउ जं जि सत्तु सत्तुंजउ ।
धाइउ दंतवत्तु[3] (वक्कु) रणे दुज्जउ ॥
सो वि सिलीमुहेहिं विणिवारिउ ।
मुच्छपराणिउ कहवि ण मारिउ ॥
धाइय कालवत्तु तहो पोयउ ।
सो वि दुक्खु मरि-रक्खिय-जीयउ ॥
सल्लु ससल्लु करेप्पिणु मुक्कउ ।
कहवि कहवि जम णयर ण ढुक्कउ ॥
सोमयत्तु वित्थारिवि घल्लिउ ।

क्या, जिसने अक्षात्रभाव से (क्षात्रधर्म के विरुद्ध) इस (अकेले) युवा से युद्ध किया है। यह सुनकर पृथ्वीपाल (जरासध ने) ने अपना दूत भेजा, मानो काल ने अपना दूत विसर्जित किया हो। शत्रुंजय वसुदेव के ऊपर दौडा। दोनो के ही हाथ मे तीर-धनुष थे। दोनो ही विजयश्री ग्रहण करने मे समर्थ थे। दोनो ही मेघ-जलधारा के समान अप्रमेय बाणो से युद्ध करते हैं। तब अवसर पाकर सौभद्र (वसुदेव) ने देवागनाओ को नेत्रो के प्रसार का अवसर देते हुए,

घत्ता—शत्रु को तीर से आहत किया। सारथि गिर पडा, घोडे आहत हो गए, महारथ छिन्न-भिन्न हो गया, मानो युद्धभार से ऊँचे कधेवाले जरासध का मनोरथ ही असफल हो गया ॥१०॥

जब शत्रुंजय ही गिरा दिया गया, तो दुर्जेय दतवक्र युद्ध मे दौडा, वह भी तीरो से गिरा दिया गया। मूर्च्छा को प्राप्त वह किसी प्रकार मरा भर नही। तब दूसरा कालवक्र उस पर दौडा, वह भी दुखित मृत्यु से जीवन को बचा सका। उसने शल्य को पीडित करके छोडा, किसी प्रकार वह यम की नगरी नही पहुँचा। सोमदत्त को उछालकर फेंक दिया। भूरिश्रवा अपने

---

१ सभी प्रतियो मे एक पक्ति नही, अत यह युग्म अधूरा है। २. ज, च—विण्णवि जयसिरिगहणसमत्थ। ३ अ—दतवत्तु।

भूरीसउ णियरहे ओणुल्लउ ॥
तिह गंगेय-दोणु किय वम्मउ ।
तिह किउ तिह कलिंगु ससुसम्मउ ॥
जो जो जोहु रणगणे मुच्चइ ।
सो सो सउरिहे कोवि ण पहुप्पइ ॥
ताव समुद्दविजयउ बले भग्गए ।
सहु णियरहवरेण थिउ अग्गए ॥

घत्ता—णिएवि जणेरीणदणु वाहिय-सदणु अणुउ मणेण पहिट्ठउ ।
अज्जु दिवसु दिहिगारउ भाइ महारउ वरिससयहिं ज दिट्ठउ ॥११॥

सारहि जो दिण्ण आसि मामे ।
सो वोल्लाविउ दहिमुहणामे ॥
मथरु वाहि वाहि रहु तेत्तहो ।
जेट्ठ समुद्दविजउ महु जेत्तहो ॥
केम वि विहिवसेण विच्छोइउ ।
वरिससयहो णियपुण्णेहिं ढोइउ ॥
हउ णिरवेक्खु रणे आए सहियउ ।
एउ परमत्थु मित्त मइ कहियउ ॥
जणण समाणु केम घाइज्जइ ।
आयहो छाया-भगु ण किज्जइ ॥
जिह उवइट्ठु तेम रहु चोइउ[1] ।
जायवणाहु जेत्थु तहिं ढोइउ ॥
तेण वि दिट्ठु कुमारु सहोयरु ।
सारहि वुत्तु ताम धरि रहवरु ॥

रथ पर लुढक गया। इसी प्रकार गांगेय, द्रोण, कृतवर्मा, कृपाचार्य, कलिंग और सुशर्मा, जो-जो योद्धा युद्ध के मैदान में भेजा जाता, वह शौर्यपुरवासी वसुदेव के सामने समर्थ नहीं हो पाता। सैन्य के भग्न होने पर तब अपने रथवर के साथ समुद्रविजय आगे आकर स्थित हो गया।

घत्ता—माता के पुत्र को देखकर, जिसने रथ हाँका है, ऐसा अनुज (वसुदेव) मन में प्रसन्न हो गया। (वह सोचने लगा) आज का दिन भाग्यशाली है जो मैंने सैकड़ों वर्षों में अपने भाई को देखा ॥११॥

दधिमुख नाम का जो सारथि ससुर ने दिया था, उससे वसुदेव ने कहा—"रथ को धीरे-धीरे वहाँ ले जाओ जहाँ मेरा बड़ा भाई समुद्रविजय है। भाग्य के वश से किसी प्रकार बिछुड़ा हुआ मैं सैकड़ों वर्षों के अपने पुण्य से यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। इनके साथ युद्ध में मैं तटस्थ हूँ। हे मित्र! यह परमार्थ बात मैंने कह दी। पिता के समान इन पर आघात किस प्रकार किया जाए? इनकी कान्ति नष्ट न की जाए। जैसा मैंने बताया है, तुम उस प्रकार रथ ले चलो। वहाँ पहुँचो जहाँ यादवनाथ हैं। उस (समुद्रविजय) ने भी सगे भाई कुमार को देखा और सारथि

---

१. चोइज्जइ।

पेक्खु जुवाण सरासण हत्यउ ।
ण वसुएव-सामि समत्यउ ॥

घत्ता—तो रणरसिहूए वुच्चइ सूए सामिसाल-अवचितए ।
भिच्चु जेम पहरेव्वउ जेम मरेव्वउ एत्युकाइ सुहचितए ॥१२॥

त णिसुणेवि वयणु जुत्तारहो ।
धाइउ जायवणाहु कुमार हो ॥
विण्णिवि भिडिय रणगणे दुज्जय ।
दुद्धरयरणर पवर-पुरजय ॥
विण्णिवि जायवगरुड-महद्धय ।
खत्ति सुहद्दाएवि-यणधय ॥
विण्णिवि अंधय-विट्ठिहे णंदण ।
णियणिय सारहि-वाहिय सदण ॥
विण्णिवि रणगण वइरि-वियारण ।
जिणणारायण-जम्मण-कारण ॥
विण्णिवि सजुगिण्ण-धणु करयल ।
भग्गालाणखंभ ण मयगल ॥
विण्णिवि 'जयसिरि रामालिंगिय ।
णलय-पवर-गमण-मणिगिय ॥
विण्णिवि विक्कम-विड्डिय-जय
दाणि-माणे समरगणे सरहस ॥

—ग्य रोको । तव तक धनुष-बाण हाथ ए युवा

घत्ता—सउरिपुर-परमेसर वाहिय-रहवरु पच्चारिउ वसुएवें।
पहरु पहरु णववारउ तुहु पहिलारउ अच्छहि किं साव लेवें ॥१३॥

ताव सुहद्द गरुह-पहाणें।
मुक्कु बाणु वइसाहट्ठाणें ॥
[1]किउ दुहउ दूरहो जि कुमारें।
ण फणि खइवइ-चचु पहारें ॥
जुज्झिय एम सरेंहि अणेयहिं।
वायव-वारुणत्थ-अग्गेयहिं ॥
तरुवर-गिरिवर-सिल पाहणेंहि।
सह-सहास-जुअ-लक्खपमाणेंहि ॥
पुणु[2] वम्हत्यु विसज्जिउ राए।
णासिउ तमि-तामस-णाराए ॥
जं पट्ठवइ तेण तं छिण्णइ।
तिह पहरइ जिह भाइ ण भिज्जइ ॥
मडेवि चद्दुवार-समरंगणु।
परितोसाविओ अमरगणु ॥
णियणामकिउ मुक्कु महासरु।
पणवइ पइ वसुएउ सहोयरु ॥

घत्ता—अघयविट्ठिहे णदणु णयणाणदणु दहह-मज्झे लहुयारउ।
कहवि कहवि विच्छोइउ दइवें ढोइउ हउ सो भाइ तुम्हारउ ॥१४॥

घत्ता—जिसने अपना रथ हाँका है, ऐसे शौर्यपुर के स्वामी वसुदेव ने ललकारते हुए कहा—"तुम अपना पहला नया आक्रमण करो, तुम अहकार पूर्वक क्यो स्थित हो ?" ॥१३॥

तब सुभद्रा के प्रमुख पुत्र समुद्रविजय ने वैशाख-स्थान से तीर छोडा। कुमार वसुदेव ने दूर से ही उसके दो टुकडे कर दिए, मानो गरुड की चोच के प्रहार से नाग के दो टुकडे हो गए हो। इस प्रकार वे दोनो वायव्य, वरुणास्त्रो और आग्नेय अस्त्रो, तरुवरो, गिरिवरो, शिलाओ, पाषाणो—इस प्रकार दो हजार लाख की सख्यावाले शस्त्रो से लडते रहे। फिर, राजा ने ब्रह्मास्त्र छोडा जो तमी तामस नामक अस्त्र से नाश को प्राप्त हुआ। उसके द्वारा जो भी तीर भेजा जाता, वह उसे नष्ट कर देता। वसुदेव इस प्रकार प्रहार करता कि भाई समुद्रविजय नष्ट नही होता। चार द्वार वाले युद्ध-प्रागण को बनाकर उसने अमरागनाओ को सतुष्ट किया और अपने नाम से अंकित महाबाण फेंका। [उसमे लिखा था] सहोदर वसुदेव तुम्हें प्रणाम करता है।

घत्ता—अधकवृष्णि का पुत्र नेत्रो के लिए आनददायक दस मे से सबसे छोटा, किसी प्रकार वियुक्त, परन्तु दैव से लाया गया, मैं वही तुम्हारा भाई हूँ ॥१४॥

---

१. ज, व—किउ दुहडउ रहो जि कुमारें। २ ज, अ—पुण चम्मत्थु [चर्मास्त्र]।

पेक्खु जुवाण सरासण हत्थउ ।
ण वसुएव-सामि सग्गत्थउ ॥

घत्ता—तो रणरसिहूए वुच्चइ सूए सामिसाल-अवचिंतए ।
भिच्चु जेम पहरेव्वउ जेम मरेव्वउ एत्थुकाइ सुहचिंतए ॥१२॥

त णिसुणेवि वयणु जुत्तारहो ।
धाइउ जायवणाहु कुमार हो ॥
विण्णिवि भिडिय रणगणे दुज्जय ।
दुद्धरपरणर पवर-पुरजय ॥
विण्णिवि जायवगरुड-महद्धय ।
आसि सुहद्दाएवि-थणधय ॥
विण्णिवि अधय-विट्ठिहे णदण ।
णियणिय-सारहि-वाहिय सदण ॥
विण्णिवि रणगण वइरि-वियारण ।
जिणणारायण-जम्मण-कारण ॥
विण्णिवि सजुगिण्ण-धणु करयल ।
भग्गालाणखभ ण मयगल ॥
विण्णिवि [1]जयसिरि रामालिगिय ।
सासय-पुरवर-गमण-मणिगिय ॥
विण्णिवि विक्कम-विड्ढिय-जयजस ।
दाणि-माणे समरगणे सरहस ॥

से कहा—"रथ रोको। तब तक धनुप-बाण हाथ मे लिए युवा को देखो, जैसे स्वर्ग मे स्थित कुमार वसुदेव हो।

घत्ता—स्वामिश्रेष्ठ के अपचिंता करने पर युद्ध-रस के वशीभूत होकर सारथि ने कहा—"भृत्य की तरह प्रहार करना चाहिए जिससे यह मारा जाए, अपचिंता करने से क्या ?" ॥१२॥

जोतनेवाले (सारथि) के उस वचन को सुनकर यादवनाथ समुद्रविजय कुमार पर दौडे ! युद्ध के मैदान मे अजेय वे दोनो भिड गए। वे दोनो दुर्धर शत्रुजनो के बडे-बडे नगरो के विजेता थे। दोनो ही यादवो के महागरुडध्वज को धारण करनेवाले थे। दोनो ही अधकवृष्णि के पुत्र थे। दोनो अपने-अपने सारथियो के साथ रथ चलानेवाले थे। दोनो शत्रुओ का विदारण करनेवाले थे। दोनो ही जिन (नेमिनाथ) और नारायण (बलभद्र) के जन्म के कारण थे। दोनो ने हथेलियो पर धनुष तान रखे थे। वे दोनो, जिन्होने आलान खभो को उखाड लिया है, ऐसे मदमाते गजो के समान थे। दोनो ही विजयलक्ष्मी रूपी रमणी के द्वारा आलिंगित थे। विक्रम के कारण दोनो के जय और यश बढ रहे थे। दान-मान और युद्ध प्रागण मे हर्ष धारण करने वाले थे।

---

१. अ—कुयसिरि रामालिगिय ।

घत्ता—सउरिपुर-परमेसर वाहिय-रहवरु पच्चारिउ वसुएवें।
पहरु पहरु णववारउ तुहु पहिलारउ अच्छहि किं साव लेवें ॥१३॥

ताव सुहद्द गरुह-पहाणें।
मुक्कु बाणु वइसाहट्ठाणें ॥
[1]किउ दुहड दूरहो जि कुमारें।
ण फणि खइवइ-चचु पहारें ॥
जुज्झिय एम सरेहिं अणेयहिं।
वायव-वारुणत्थ-अग्गेयहिं ॥
तरुवर-गिरिवर-सिल पाहणेहिं।
सह-सहास-जुअ-लक्खपमाणेहिं ॥
पुणु[2] वम्हत्थु विसज्जिउ राए।
णासिउ तमि-तामस-णाराए ॥
जं पट्ठवइ तेण त छिण्णइ।
तिह पहरइ जिह भाइ ण भिज्जइ ॥
मडेवि चउदुवार-समरंगणु।
परितोसाविओ अमरगणु ॥
णियणामकिउ मुक्कु महासरु।
पणवइ पइ वसुएउ सहोयरु ॥

घत्ता—अधयविट्ठिहे णदणु णयणाणदणु दहह-मज्झे लहुयारउ।
कहवि कहवि विच्छोइउ दइवें ढोइउ हउ सो भाइ तुम्हारउ ॥१४॥

घत्ता—जिसने अपना रथ हाँका है, ऐसे शौर्यपुर के स्वामी वसुदेव ने ललकारते हुए कहा—"तुम अपना पहला नया आक्रमण करो, तुम अहकार पूर्वक क्यो स्थित हो ?" ॥१३॥

तब सुभद्रा के प्रमुख पुत्र समुद्रविजय ने वैशाख-स्थान से तीर छोडा। कुमार वसुदेव ने दूर से ही उसके दो टुकडे कर दिए, मानो गरुड की चोच के प्रहार से नाग के दो टुकडे हो गए हो। इस प्रकार वे दोनो वायव्य, वरुणास्त्रो और आग्नेय अस्त्रो, तरुवरो, गिरिवरो, शिलाओ, पाषाणो—इस प्रकार दो हजार लाख की सख्यावाले शस्त्रो से लडते रहे। फिर, राजा ने ब्रह्मास्त्र छोडा जो तमी तामस नामक अस्त्र से नाश को प्राप्त हुआ। उसके द्वारा जो भी तीर भेजा जाता, वह उसे नष्ट कर देता। वसुदेव इस प्रकार प्रहार करता कि भाई समुद्रविजय नष्ट नही होता। चार द्वार वाले युद्ध-प्रागण को वनाकर उसने अमरागनाओ को सतुष्ट किया और अपने नाम से अकित महावाण फेंका। [उसमे लिखा था] सहोदर वसुदेव तुम्हें प्रणाम करता है।

घत्ता—अधकवृष्णि का पुत्र नेत्रो के लिए आनददायक दस मे से सबसे छोटा, किसी प्रकार वियुक्त, परन्तु दैव से लाया गया, मैं वही तुम्हारा भाई हूँ ॥१४॥

---

१. ज, व—किउ दुहडउ रहो जि कुमारें। २ ज, अ—पुण चम्मत्थु [चर्मास्त्र]।

सयल ससायरु पिहिवि [1]भमतें ।
वरिससयहो मइ दिट्ठु जियतें ॥
हियउ कुद्धु ज णरिंदु खमिज्जहि ।
ज कियउ अविणयउ त मरुसिज्जहि ॥
जाम णराहिउ जोयइ अक्खरु ।
ताम कुमार-सहोयर-भायरु ॥
घल्लइ[2] महियलि ससरु सरासणु ।
ण कुकलत्तु [3]ओसारिय-पेसणु ॥
दुपुत्तु व आमेल्लिय सदणु ।
जायव-जणमण णयणाणदणु ॥
णरवइ हरिसें कहिं मि ण माइउ ।
कचीदाम खलतु पधाइउ ॥
रोहिणीणाहु वि णियरहु छडिवि ।
जसगुणविणयहिं अप्पउ मडिवि ॥
महियलि सिरु लायतु पढुक्कउ ।
देवेहिं कुसुमवासु पमुक्कउ ॥

घत्ता—एक्कहिं मिलिय सहोयर जयसिरि-गोयर पुण्णोपचएहिं बड्डएहिं ।
दिण्णु सणेहालिगणु गाढालिगणु विहिमि सय भुवदडएहिं ॥ १५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयभूएवकए
रोहिणि-सयवरो णाम तइओ सग्गो ॥३॥

समुद्रसहित पृथ्वी का परिभ्रमण करते हुए और जीवित रहते हुए, सैकडो वर्षों मे मैंने तुम्हें देखा है। आपका जो हृदय क्रुद्ध हुआ है, हे राजन्! उसे क्षमा कर दें। मैंने जो आपकी अविनय की है उस पर आप ध्यान न दें। जब राजा अक्षर देखता है, तब तक कुमार और सगा भाई धरती पर तीर सहित अपना धनुष डाल देता है, मानो आज्ञा का उल्लघन करने वाली खोटी स्त्री हो। खोटे पुत्र की तरह, उसने रथ छोड दिया। तब यादव लोगो के मन और नेत्रो को आनन्द देने वाले राजा हर्ष से फूले नही समाए। अपनी करधनी खिसकाते हुए वे दौडे। रोहिणी के स्वामी (वसुदेव) भी अपना रथ छोडकर यश, गुणो और विनय से अपने को आभूपित कर, धरती पर माथा टेकते हुए पहुँचे। देवो ने पुष्पो की वर्षा की।

घत्ता—दोनो भाई एक-दूसरे से मिले। बडे पुण्यो के उपचय से उन्होने अपने भुजदण्डो से प्रगाढ और स्नेहमय आलिगन किया ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभू कवि द्वारा कृत अरिष्टनेमिचरित मे
रोहिणी स्वयवर नाम का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥३॥

---

१. अ—भवतें। २. अ—छत्तिउ। ३. अ—आसरिय-पेसणु।

चउत्थो सग्गो

परिणेप्पिणु रोहिणि [1]अमरविरोहिणी तहिं सवच्छरु एक्कु थिउ।
उप्पण्णउ हलयरु पुत्तु मणोहरु दइवें णाइ जसपुजु किउ ॥

सकरिसणु रामणामु णिम्मिउ ।
बलएउ [2]सुहलाउहु अवरु किउ ॥
बहु सत्तसयइ हक्कारियइ ।
सउरिपुरवरे पइसारियइ ॥
वसुएउ णराहिउ [3]सचरइ ।
धणुवेय-गुरु-उवएस करइ ॥
अच्छइ सयसीसालकरिउ ।
[4]सुपसिद्धु हूउ परमाइरिउ ॥
विज्जत्थिउ ताम कस अइउ ।
घरघल्लिउ [5]ओहामिय लइउ ॥
दणुदुद्दमदेह-णिवारणइ ।
सिक्खिउ अणेयइ पहरणइ ॥
तहिं कालि कहिउ केणवि णरेण ।
पुणु घोसण किय चक्केसरेण ॥
जो कोवि णिबधइ सीहरहु ।
जीवजस दिज्जइ तासु बहु ॥

देवो की विरोधिनी रोहिणी से विवाह कर वसुदेव वहाँ एक वर्ष रहे। उनके हलधर नामक सुन्दर पुत्र हुआ, मानो विधाता ने यशपुज ही उत्पन्न किया हो। उसके सकर्षण और राम नाम रखे गए। सातसौ बन्धुओ को बुलवाया गया और उन्हे शौर्यपुर में प्रवेश दिया गया। राजा वसुदेव वहाँ रहते हैं और धनुर्वेद का गहन उपदेश करते हैं। सौ शिष्यो से शोभित वह प्रसिद्ध श्रेष्ठ आचार्य हुए। इतने मे विद्यार्थी के रूप मे कस आया। घर से निकाले हुए और अपमानित उसे गुरु वसुदेव ने स्वीकार कर लिया। उसने दानवो की दुर्दम देह का विदारण करने वाले अनेक शस्त्रो को सीखा। उसी समय किसी मनुष्य ने कहा और फिर चक्रवर्ती ने घोषणा भी की कि जो कोई भी सिंहरथ को बाँधकर लाएगा, उसे जीवजसा वधू के रूप मे दी जाएगी।

---

१. अ, ब प्रतियो मे यह छूटा है। २ अ—मुहलाउहु। ३. अ—सवरइ। ४ अ—सुपसिद्दओ। ५ अ—ओहामण।

घत्ता—सहु इच्छियदेसें देइ विसेसें ता वसुएवें वत्त सुय।
भुयदंड-पयंडें ण वेयंडें जमलालाण-खंभ विहुय ॥१॥

सहु सेण्णें अमरिस कुद्धमण।
वसुएउकंस गय बे वि जण ॥
उप्परि पोयण परमेसर हो।
केसरि-सजोत्तिय-रहवर हो ॥
परिवेढिउ पुरवरु गयवरेंहिं।
रविमंडलु ण णवजलहरेंहिं ॥
असहंतु पधाइउ सीहरहु।
सरजालें पच्छायंतु णहु ॥
तहिं अवसरि कंसें वुत्तु गुरु।
हउ आयहो रणमुहिं देमि उरु ॥
तुहु पेक्खु अज्जु महुत्तणउ बलु।
सीसत्तण रुक्खहो परमहलु ॥
वसुएए हत्थुच्छल्लियउ।
रहु दिण्णु कंसु संचल्लियउ ॥
ते भिडिय परोप्परु दुव्विसह।
णाणाविह पहरण-भरियरह ॥

घत्ता— आयामिवि कंसें लद्ध पसंसें छत्तु सचिंधु ससीहरहु।
छिंदिवि सरपसरें लद्धावसरें धरिउ रणंगणे सीहरहु ॥२॥

रिउ लेवि बे वि गय त [1]मगहु।
आखंडल-मंडल-णयर-णिहु ॥

घत्ता—मनचाहे देश के साथ वह विशेष रूप से देय होगी। अपने बाहुदंड से प्रचंड वसुदेव ने यह बात इस प्रकार सुनी मानो हाथी ने दोनो आलानखंभो को कँपा दिया हो ॥१॥

असहिष्णुता से कुपित मन, कंस और वसुदेव दोनो सेना के साथ, जिसके रथ मे सिंह जुते हुए हैं ऐसे पोदनपुर के राजा सिंहरथ के यहाँ गये। उन्होंने गजवरो के द्वारा नगरवर को इस प्रकार घेर लिया जैसे नवजलधरो ने सूर्यमण्डल को घेर लिया हो। [यह] सहन न करता हुआ सिंहरथ भी शरजाल से आकाश को आच्छादित करता हुआ दौडा। उस अवसर पर कंस ने गुरु से कहा—"इस युद्ध मे इसे मैं अपना वक्ष दूंगा। आप आज मेरा बल और अपने शिष्यत्व-रूपी वृक्ष का फल देखिएगा।" वसुदेव ने हाथ उठा दिया। रथ दे दिया गया, और कंस चला। असह्य वे दोनो परस्पर लडे। उनके रथ नाना प्रकार के आयुधो से भरे हुए थे।

घत्ता—प्रशंसा अर्जित करनेवाले कंस ने आयाम कर सिंहो के रथ और चिह्नो सहित छत्र को तीरो के प्रसार से छेदकर, युद्ध के मैदान मे अवसर पाते ही सिंहरथ को पकड लिया ॥२॥

शत्रु (सिंहरथ) को लेकर दोनो उस मगध (देश मे) गये जो इन्द्र-मण्डल के नगर के

---

1 अ—त जि गिहु।

जरसधें तो आलत्तु पिउ।
वसुएवहो अब्भुत्थाणु किउ ॥
जीवजस वेसु मसप्पियउ।
तो [1]रोहिणी-णाहे पयपियउ ॥
मइ जिउ ण भडारा सीहरहु।
जिउ कसें आयहो देहु बहु ॥
परिपुच्छिउ [2]तें तुहु तणउ कहो।
कउसविहि हउं वज्जिरिउ तहो ॥
[3]मजोयरि णामे माय महु।
[4]सुयकारिणि कोक्किय आय लहु ॥
करकमल-कयजलि विण्णवइ।
अहो सुणु तिखड-वसुहाहिवइ ॥
एहु ण सच्च सुउ महुतणउ।
णउ जाणमि आउ कहो तणउ ॥

घत्ता—कंसय-मंजूसए मुद्द-विहूसिए केण वि जले पइसारियउ।
कालिंदि-पवाहे सुट्ठु अगाहे आणेवि महु सचारियउ ॥३॥

[5]कसियमजूसे जेण भवणु।
किउ कसु तेण णामग्गहणु ॥
कलियारउ ण मइ णिरिक्खियउ।
गुरु सेविवि सत्थइ सिक्खियउ ॥
परिओसु [6]पवड्ढियउ पत्थिवहो।
जीवजस णियसुय दिण्ण तहो ॥
लइ मडलु एक्कु जहि इच्छियउ।

समान था। तव जरासध ने प्रिय वात की और वसुदेव के लिए उठकर खडा हो गया। समर्पित जीवजसा दूंगा। तव रोहिणी के स्वामी ने कहा—"आदरणीय, मैंने सिहरथ को नही जीता। कस ने जीता है, उसे वधू दीजिए।" जरासध ने पूछा—"तुम किसके पुत्र हो ?" कस ने कहा—"मैं कौशाम्वी का हूँ, मजोदरी नाम की मेरी माँ है। पुत्र के कारण बुलाई गई वह (मजोदरी) शीघ्र आयी। करकमलो की अजलि बनाकर, वह शीघ्र बोली—"हे तीन खण्ड धरती के स्वामी! सुनिए, यह सचमुच मेरा पुत्र नही है। नही जानती हूँ कि कहाँ से आया है।

घत्ता—मुद्रा से अलकृत कासे की मजूषा मे किसी ने इसे जल मे प्रवेश कराया। अत्यन्त अगाध कालिंदी के प्रवाह मे से लाकर मैंने इसे जीवित रखा है ॥३॥

चूकि कासे की मजूषा मे जन्म हुआ, इसलिए इसका नाम कस रखा गया। यह कलहकारी था, इसलिए मैंने नही रखा। गुरु की सेवा करके उसने शस्त्रो को सीखा।" [यह सुनकर] राजा को सतोष हो गया और अपनी कन्या जीवजसा दे दी, [और कहा] जहाँ चाहते हो, एक

---

१ अ—रोहिणिणाह। २ अ—ते। ३ अ—रजोयरि। ४ अ—सुयकारिणि। ५ अ—कसिय-मजूसए। ६ अ—पवड्ढियओ।

त तेण वि वयणु पठिइच्छियउ ॥
परमेसर [1]दिज्जइ महुर महु ।
[2]जहिं जुज्झमि णिय जणणेण सहु ॥
जउ णइहे घल्लिउ जेण चिरु ।
त बधमि जइवि ण लेमि सिरु ॥
ता राए हत्थुच्छल्लियउ ।
पिउ वधिवि णियलहिं घल्लियउ ॥

घत्ता—जा वप्पे भुत्ती सिय-उलवत्ती सा किं पुत्तहो परिणवइ ।
सिय चचल होइ विचित्ती जुत्ताजुत्त ण परिकलइ ॥४॥

[3]महुराउरि परिपालतु थिउ ।
[4]णिवणय विहेउ पडिवक्खु किउ ॥
जरसघहो जो ण सेव करइ ।
उक्खधें आएवि त धरइ ॥
परिचिंतवइ बारहमडलइ ।
चउरासम चाउवण्णहलइ ॥
चउविज्जउ सत्तिउ तिण्णि तहिं ।
अट्ठारह तित्थह कवणु कहिं ॥
सत्तगु रज्जु पालइ अचलु ।
मेल्लावइ छहविहु भिच्चबलु ॥
छग्गुणउ सयल वि सभरइ ।
सत्त वि दुव्वसणइ परिहरइ ॥
जाणइ कटय-सोहणकारणु ।
णियरक्खणु णियकुमारधरणु ॥

मण्डल ले लो। तब उसने भी उस वचन को स्वीकार कर लिया। [वह बोला] "हे परमेश्वर ! मुझे मथुरा दीजिए, जहाँ अपने पिता के साथ लड सकूँ। उसने बहुत पहले मुझे नदी मे फेंका था, मैं यदि उसका सिर नही लूंगा तो बाँधूंगा।" तब राजा ने हाथ उठा दिया। पिता को बाँधकर कस ने बेडियो मे डाल दिया।

घत्ता—जो लक्ष्मीरूपी पुत्री पिता के द्वारा भोगी गई, क्या वह पुत्र से परिणय करती है ? लक्ष्मी चचल और विचित्र होती है, वह उचित-अनुचित का विचार नही करती ॥४॥

मथुरा नगरी का परिपालन करते हुए, उसने प्रतिपक्ष को नृप-नय से विभक्त कर दिया। जो जरासघ की सेवा नही करता, आक्रमण कर उसे वन्दी बना लेता है। वह बारह मण्डल का विचार करता है, चार आश्रमो और चार वर्णों के फलो का विचार करता है। उसके पास चार विद्याएँ और तीन शक्तियाँ हैं। अट्ठारह तीर्थों का क्या कहना, वह अचल, सप्ताग राज्य का पालन करता है। छह प्रकार भृत्य बल को इकट्ठा करता है। समस्त छह गुणो की याद रखता है। सात दुर्व्यसनों का परित्याग करता है। कटक-शोधन के कारण को

---

१. अ—दिज्जउ। २. अ—जे। ३ अ—महुराउरी। ४ अ—णियणयवसविहिं।

त णिसुणेवि मणु समावडिय ।
ण मत्थइ वज्जासणि पडिय ॥
गय णियघरु उम्मण वुम्मणिय ।
गग्गर-सर-मउलिय-लोयणिय ॥
ण कमलिणि हिमपवणेण हइय ।
वणप्फइ ण वणमइदें मइय[1] ॥
तो कसें अमरिसफुद्धएण ।
सीहेण व आमिसलुद्धएण ॥
कालेण व कोवाउण्णएण ।
विसहरें पउर-विस विण्णएण ॥
जलणेण व जाला-भीसणेण ।
मेहेण व पसरिय-णीसणेण ॥
[2]वक्केण व मीण-कण्ण-गएण ।
पुच्छिय पउमावइ-अगएण ॥
परमेसरि दुम्मण काइ तुहु ।
विद्दाणउ दीसइ जेण मुहु ॥

घत्ता—कहि कहि सीमतणि कवणु णियवणि खेउ जेण उप्पायउ ।
सो सणि-अवलोइउ काले चोइउ कहि महु जाइ अघाइउ ॥७॥

कालिदिसेण जरसघसुय ।
पभणइ सुसियाणण सुढियभुय ॥
भो अज्जु णाह किउ सोहलउ ।
तो महु उप्पाइउ कलमलउ ॥
ण मत्थइ जलण जलतु थिउ ।
अइमुत्तएण आएसु किउ ॥

यह सुनकर जीवजसा का मन उदास हो गया, मानो सिर पर गाज गिरी हो । उत्कठित और उदास होकर, वह अपने घर गयी । गद्गद स्वर और बन्द आंखो वाली वह ऐसी लगती जैसे हिम-पवन से आहत कमलिनी हो, मानो वनसिंह के द्वारा कुचली गई वनस्पति हो । आमिषलोभी सिंह की तरह, क्रोध से आपूर्ण काल की तरह, प्रचुरविष से निर्मित विषधर की तरह, नव ज्वालाओ से भयकर आग की तरह, प्रसरित स्वरवाले मेघ की तरह, मीन और शनिराशि मे गए हुए मगल की तरह, अमर्ष से भरा हुआ कस पूछता है—"हे परमेश्वरी तुम दु खी क्यो हो, कि जिससे तुम्हारा मुख उदासीन दिखाई देता है !

घत्ता—हे सीमतनी, बताओ बताओ वह कौन है जिसने तुम्हे खेद पहुँचाया है, शनि के द्वारा दृष्ट और काल के द्वारा प्रेरित वह मुझसे आहत हुए विना कहाँ जाएगा ?" ॥७॥

जिसका मुख सूख गया है और जिसकी भुजाएँ ढीली पड गई हैं, ऐसी कालिंदी-सेना की पुत्री जीवजसा कहती है— "हे स्वामी ! आज मैंने अपहास किया था उससे मुझे व्याकुलता हो गई है, जैसे मेरे मस्तिष्क मे आग जल रही हो । अतिमुक्तक ने आदेश दिया है कि

---

१ अ—ण वणवइ वणमइ वणमइय । २ अ—तक्केण ।

वसुएवहो दइयहे देवइहे ।
जो णदणु होसइ खलमइहे ॥
तहो पासउ तुम्हह विहि मरणु ।
महु बप्पहो कोवि णाहि सरणु ॥
तो महुर णराहिव डोल्लियउ ।
ण हियवइ सूलें सल्लियउ ॥
थिउ णाइ धराधरु दड्ढतणु ।
अप्पमाणी होइ ण रिसिवयणु ॥
अच्चत महल उप्पण्णु भउ ।
णिविसें वसुएवहो पासु गउ ॥

घत्ता—जइ तुम्ह गुरुत्तणु महु सीसत्तणु इहु परमत्थु समत्थियउ ।
तो एत्तिउ किज्जइ वरुवर दिज्जइ सत्तबार अब्भत्थियउ ॥८॥

ज कसु [1]सुपरिट्ठिउ पणयसिरु ।
[2]रइयाजलि थोत्तुग्गिण्ण-गिरु ॥
तो देवइदइए विण्णु वरु ।
पइ मुएवि अत्थि को महु अवरु ॥
महुराहिउ सरहसु विण्णवइ ।
जो जो देवइहे गब्भु हवइ ॥
सो सो विहणेव्वउ सिलसिहरे ॥
तुम्हेहिं [3]णिवसेव्वउ महु जि घरे ॥
गउ एम भणेप्पिणु लद्धवरु ।
वसुएउ वि गउ णियवासहरु ॥
णाइ विसणु महाफणि मणिरहिउ ।

वसुदेव की दुष्ट बुद्धिवाली पत्नी देवकी मे जो पुत्र होगा, उसके हाथ मे तुम दोनो की मौत है। मेरे पिता के लिए कोई शरण नही है।" यह सुनकर मथुरा का राजा इस तरह काँप उठा, जैसे किसी ने हृदय मे शूल चुभा दिया हो। वह जले हुए पहाड की तरह खडा रह गया, क्योकि ऋषि के वचन कभी झूठे नही होते। उसे बहुत भारी दुख उत्पन्न हो गया। वह एक पल मे वसुदेव के पास गया और बोला—

घत्ता—यदि तुम्हारा गुरुत्व और मेरा शिष्यत्व, परमार्थ भाव से समर्थित है, तो इतना कीजिए कि एक श्रेष्ठ वर दीजिए जो सात बार अभ्यर्थित हो ॥८॥

जब कस हाथ जोडकर और प्रणतसिर स्तुति मे वाणी निकालता हुआ खडा रहा, तो देवकी के पति वसुदेव ने वर दिया और कहा—"तुम्हे छोडकर मेरा दूसरा कौन है ?" तब मथुरा का राजा [कस] हर्षपूर्वक निवेदन करता है, "देवकी के जो-जो गर्भ होगा वह मेरे द्वारा चट्टान पर मार दिया जाएगा। तुम लोगो को मेरे घर मे ही निवास करना होगा।" ऐसा कहकर और वर प्राप्त कर, वह चला गया। वसुदेव अपने निवासगृह गये, एकदम विमन हो जैसे मणि

---

१ ज, अ, ब—परिट्ठिउ। २ ज—रइयाजलि थोत्तग्गिण्णगुरु। ३ अ—ण वसेव्वउ।

णिय-यइयरु णिरयसेसु कहिउ ॥
[1]देवइहे तणु हुअ गीउभय ।
रोयती धरायलि मुच्छ गय ॥

घत्ता--पढि आइय चेयण भणइ सवेयण णिच्चल हरिण[2]-इत्थणिए ।
जिह कुलवत्तिए काइ जियतिए पइहरे पुत्तविहूणए ॥९॥

[3]धणणदण जोवणइत्तियह ।
जसु सत्तसयइ कुल-उत्तियह ॥
सो किण्ण देइ सयवार वरु ।
हयवइयहे महु डज्झउ उयरु ।
एक्कु वि लहु अण्णवि सुयरहिय ।
वरि लइय दिक्ख जिणवर-कहिय ॥
तो गय विण्णिवि उज्जाणवणु ।
अइमुत्तमहारिसि जहि सवणु ॥
वदेप्पिणु पुच्छिउ जइपवरु ।
वसुएवे कसहो दिण्ण वरु ॥
जो गब्भुप्पज्जइ महु-उयरे ।
त सो अप्फालइ सिलसिहरे ॥
परमेसरु एउभउ अवहरइ ।
वहु पुत्तहो एक्कुवि णउ मरइ ॥
छह चरम देह कहियागमणे ण ।
पालेव्वा देवे णइगमेण ॥

घत्ता—सत्तमउ तुहारउ रणे खयगारउ महुराहिव-मगहाहिवह ।
महि-णिहि-रयणदधह पट्टणिवधह होसइ पतियउ पत्थवह ॥१०॥

से रहित महानाग हो। उन्होने अपना वृतान्त (घर) वताया। देवकी का शरीर भयग्रस्त हो उठा। वह रोती हुई धरती पर गिर पडी और मूर्च्छित हो गयी।

घत्ता—जव उसकी चेतना लौटी, तो वह वेदनापूर्वक वोली—"हिरनी की तरह निश्चल, कुलपुत्री का विना पुत्र के पति के घर मे जीवित रहने से क्या? ॥९॥

घन, पुत्र और यौवनवाली, जिसके पास (वसुदेव के पास) सात सौ कुलपुत्रियाँ स्त्रियो के रूप मे हैं वह क्यो न सौ वार वर दे? हतभाग्य मेरी कूख मे आग लगे। एक तो मैं सवमे छोटी हूँ और दूसरे पुत्ररहित हूँ। अच्छा हो कि जिनवर के द्वारा उपदिष्ट जिनदीक्षा ग्रहण कर ली जाए। वे दोनो उद्यानवन मे गये, जहाँ अतिमुक्तक नामक श्रमण थे। वन्दना कर उन्होंने मुनि-प्रवर से पूछा—"वसुदेव ने कस को वर दिया है कि मेरे यहाँ गर्भ से जो उत्पन्न होगा, उसे वह चट्टान पर पछाडेगा।" परमेश्वर उसका भय दूर करते हैं कि तुम्हारा एक भी पुत्र नही मरेगा। आगम मे कहा गया है कि छह पुत्र चरम शरीरी हैं जो नैगमदेव के द्वारा पाले जाएँगे।

घत्ता—तुम्हारा सातवाँ पुत्र मथुरा और मगध के राजाओ का क्षयकारक होगा, आधी धरती, निधियों और रत्नो वाले पट्टधर राजाओ का राजा होगा ॥१०॥

---

१ अ—देवइहे तणुभय। २ अ—हरिण इत्युणए। ३ ज—धणणदणजोवइ त्तियह।

वंदेप्पिणु देवरि सिहिचरण ।
गय देवइ णियघरु तुट्ठमण ॥
छ विय पसविय कसहो अल्लविय[1] ।
मलयइरिहि णइगम सुरेण णिय ॥
सत्तमु जु णवणु ओयरिउ ।
घरे णाइ मणोरहु पइसरिउ ॥
तहि काले जसोय वि वेवइ वि ।
णाइ मिलिय जउणगगणइ वि ॥
अवरोप्परु वड्ढियउ णेहभरु ।
तो णंदहो दइयएँ दिण्ण वरु ॥
महु केरउ गब्भु माए मरउ ।
तुह केरउ गोउले सवरउ ॥
परिपालमि त जिह अप्पणउ ।
एत्तिउ पडिवण्णु महुत्तणउ ॥
णियणिय आवासी हूयउ ।
वासरि एक्कहि जि पसूयउ ॥

घत्ता—भद्दवहो चदिणि-बारहमए दिणे सुहिहि दिंतु अहिमाण-सिह ।
उप्पणु जगद्दणु असुर विमद्दणु कसहो मत्था-सूल जिह ॥११॥

सयसीह-परक्कमु अतुलवलु ।
सिरि-लच्छण-लक्खिय-वच्छयलु[2] ॥
सुहलक्खण-लक्खालकियउ ।
अट्ठुत्तरसय-वामकियउ ॥

देवर्षि अतिमुक्तक के चरणो की वन्दना करके देवकी अपने घर सतुष्ट होकर गयी। छह पुत्र उत्पन्न हुए, [वे] कस को सौंप दिए गए, नैगमदेव के द्वारा वे मलयगिरि पर ले जाए गए। जब सातवें पुत्र का जन्म हुआ, मानो घर मे मनोरथ ने प्रवेश किया हो। उस समय देवकी और यशोदा भी इस प्रकार मिली, जैसे गगा और यमुना नदी मिली हो। उन दोनो मे आपस मे स्नेह बढ गया। तब नन्द की घरवाली ने वर दिया—"हे आदरणीये! मेरा गर्भ नष्ट हो जाए, तुम्हारा गर्भ गोकुल मे बढता रहे। मैं उसे अपने बेटे की तरह पालूंगी। मेरी इतनी बात मान लो। वे अपने-अपने घर चली गयी। एक दिन उनके प्रसव हुए।

घत्ता—शुक्ल पक्ष, भाद्रपद बारहवी को, सुधीजनो के लिए अभिमान की ज्योति देता हुआ, असुरो का विमर्दन करनेवाले जनार्दन का इस प्रकार जन्म हुआ, जैसे कस के मस्तक का शूल हो ॥११॥

सौ सिंहो के समान पराक्रमवाले, अतुल बल लक्ष्मी के चिह्न से चिह्नित वक्ष, लाखो शुभ लक्षणो से अकित, १०८ नामो से अकित, अपने शरीर की कान्तिलता से भवन को आलोकित

---

१. ज, अ, ब—अलविय। मात्राओ के विचार से यह कड़वक गडबड है। २ अ, ब—लछण लछिय वच्छलु।

णियकतिलया लिगिय-भवणु ।
वसुएए चालिउ मर्हुमहणु ॥
वलएए आयवत्त धरिउ ।
तें वरिसणिरतरु अतरिउ ॥
णारायण-चलणगुट्ठ-हउ ॥
विहडेवि पओलि-फवाड गउ ॥
धम्मोवम अग्गए वसहु थिउ ।
तें जउणाजलु वे भाय किउ ॥
हरि देप्पिणु लइय जसोय सुय ।
हलहरु वसुएव कयत्यकिय ॥
गोवगय कसहो अल्लविय ।
विंजझाहिव-जक्खें विज्झें णिय ।
गोविंदु णद ट्ठु गणए ।
वड्ढइ णव ससि व णहगणए ॥

घत्ता—हरिवस हो मडणु कसहो खडणु हरिपरिवड्ढइ णदघरे ।
णियपक्ख विहूसण परगयदूसणु रायहसु ण कमलसरे ॥१२॥

गोट्ठगणे पुण्णइ आइयइ ।
महुरहि दुणिमित्तइ जाइइ ॥
गोट्ठगणे परिवड्ढइ हरिसु ।
महुरहि वरिसइ सोणिय-वरसु ॥
गोट्ठगणे अणुदिणु णाइ छणु ।
महुरहि सतत्तउ सयलु जणु ॥
गोट्ठगणे मडव-सकुलइ ।
महुरहि दीसति अमगलइ ॥
गोट्ठगणे खीरइ पट्ठियइ ।

करनेवाले श्रीकृष्ण को वसुदेव ने चलाया, और वलदेव ने आतपत्र [छत्र] धारण कर लिया, उससे वर्षा की निरन्तरता वच गयी। नारायण के पैर के अंगूठे मे मुख्य द्वार के किवाड खुल गए। धर्मतुल्य वृषभ आगे आकर स्थित हो गया। उसने यमुना का जल दो भागो मे वाँट दिया। हरि देकर वसुदेव ने यशोदा की पुत्री ले ली। बलभद्र और वसुदेव कृतार्थ हो गये। गोप-कन्या कस को दे दी गयी। विन्ध्यराज यक्ष उसे विन्ध्य पर्वत पर ले गया। गोठ के प्रागण मे गोविन्द उसी प्रकार वढने लगे जिस प्रकार नभ के आँगन मे नभचन्द्र वढने लगता है।

घत्ता—हरिवश के मडन और कस के खडन हरि नद के घर मे वढने लगते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार अपने पक्ष के लिए भूपण और दूसरे के पक्ष के लिए दूषण राजहस सरोवर मे वढने लगता है।

गोकुल मे पुण्य आ गए, मथुरा मे खोटे निमित्त हुए। गोकुल मे हर्ष वढ़ता है, मथुरा मे रक्त की वर्षा होती है। गोठो के आँगन मे प्रतिदिन उत्सव होता है, मथुरा मे समस्त जन सतप्त होते हैं। गोठ के आँगन मडपो मे व्याप्त हैं, मथुरा मे अमगल दिखाई देते हैं। गोठ के आँगन मे दूध

महुरहि मज्जइ सि ण सधियइ ॥
गोट्ठगणे गोविउ सूहवउ ।
महुरहि वेसाउ वि दूहवउ ॥
गोट्ठगणे गोवाल वि कुसल ।
महुरहि वणिउत्तवि णाइ विकल ॥
गोट्ठगणे णोक्खी कावि किय ।
महुरहि गउ उड्डेवि णाइ सिय ॥
गोट्ठे खोल्लडइ वि मणोहरइ ।
महुरहि रोवति णाइ घरइ ॥

घत्ता—महुराउरि सुण्णी जायउ अउण्णी जहिं ण पयट्टइ का वि किय ।
घणकणय-सउण्णय गोउल रवण्णउ जहिं णारायणु तहिं जि सिय ॥१३॥

दणु-मद्दणु णदणु कण्हु जहिं ।
वण्णिज्जइ गोउल काइ तहिं ॥
हरि वड्ढइ केण वि कारणेण ।
वामयरगुट्ठ-रसायणेण ॥
वालत्तणे वालकील करइ ।
जो ढुक्कइ सोग्गहु ओसरइ ॥
गब्भत्थेण घाइय अट्ठगह ।
[1]जाएण दिणग्गह दस दुसह ॥
मासग्गह बारह ते वि जिय ।
वरिसग्गह तेरह खयहो णिय ॥
णारायणु चत्तु[2] णिसायरेहिं ।
दुत्थेहिं गुरु चदविवायरेहिं ॥
पडहु वायइ घटारउ करइ ।

भरा पडा है, मथुरा मे मद्य का भी सघान नही हो पाता। गोठ के आँगन मे गोपियाँ सुभग हैं, मथुरा मे वेश्याएँ भी दुर्भग हैं। गोठ के आँगन मे ग्वाल-बाल भी कुशल हैं, मथुरा मे वनियो के वेटे भी जैसे विकल हैं। गोठ के आँगन मे कोई अनोखी क्रिया है, मथुरा से जैसे शोभा उडकर चली गई है। गोठ मे कोठडियाँ भी सुदर हैं, मथुरा मे मानो घर रो रहे हैं।

घत्ता—मथुरा नगरी अपूर्ण और सूनी हो गई, वहाँ कोई भी क्रिया नही हो रही है, जबकि धनस्वर्ण से सम्पूर्ण गोकुल सुन्दर है। जहाँ नारायण हैं वही लक्ष्मी निवास करती है ॥१३॥

दानवो का मर्दन करनेवाले कृष्ण जहाँ हैं, उस गोकुल का किस प्रकार वर्णन किया जाए ? दाएँ अँगूठे के रसायन से किसी भी प्रकार वढते हैं। वचपन मे वालक्रीडा करते हैं। जो ग्रह पास पहुँचता है वह भाग जाता है। गर्भ मे रहते हुए उन्होंने आठ ग्रहो का नाश कर दिया, उत्पन्न होने पर दु सह दश ग्रहो का नाश कर दिया। माह के जो बारह ग्रह हैं, उन्हें भी जीत लिया। वर्ष के तेरह ग्रह नाश को प्राप्त हुए। निशाचरो ने नारायण को छोड दिया, दुष्ट गुरु

---

१ अ—जाएण जि णग्गइ दस दुसह। २ अ—वत्तु।

केक्क कुणइ वसाहुउ धुणइ ॥
दिणए सोवइ जग्गइ जामिणीहिं ।
मा होसइ भउ गोसामिणीहिं ॥

घत्ता—णिसि-समए जणद्दणु असुरविमद्दणु रणरसरहससएहिं ।
परिवज्जियसोयहो रक्खजसोयहो उट्ठइ देइ सयभुएहिं ॥१४॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयभूएवकए हरिकुलवसुप्पत्ति-
णामेण चउत्थओ सग्गो ॥४॥

चन्द्र और सूर्य ने भी। वह नगाड़ा वजाते हैं, घटे का नाद करते हैं, केका ध्वनि करते हैं, आहत वाँसुरी वजाते हैं, दिन मे सोते हैं, रात्रियो मे जागते हैं कि गोस्वामिनी (यशोदा) को डर न लगे।

घत्ता—रात्रि के समय असुरो का विमर्दन करनेवाले जनार्दन रण के सैकडो रसो और हर्षोंवाले अपने वाहुओ से सवेरे उठते हैं और शोक से रहित यशोदा की रक्षा करते हैं ॥१४॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेवकृत अरिष्टनेमिचरित मे हरिकुलवश
की उत्पत्ति नाम का चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

पंचमो सग्गो

णदइ णवहो तणउ घरु जहिं हरि उप्पण्णउ वालु ।
पालइ पालणए जि ठिउ गोट्ठगणु-गो-परिवालु ॥छ॥

[1]कण्णहो णिसामग्गि अवक्खए ।
णिद्द ण एइ रणगणकखए ॥
अज्जवि पूयण काइ चिरावइ ।
अज्जवि माया-सयडु ण आवइ ॥
अज्जवि रिट्ठ-ककु ण वलिज्जइ ।
अज्जवि गोवद्धणु ण धरिज्जइ ॥
अज्जवि अज्जुण-जुयलु ण भज्जइ ।
अज्जवि कसतुरगु ण गज्जइ ॥
अज्जवि जउण णाहि मथिज्जइ ।
अज्जवि कालिउ णाहि णत्थिज्जइ ॥
अज्जवि कुवलयवीढु ण हम्मइ ।
अज्जवि महुराणयरि ण गम्मइ ॥
अज्जवि सद्दु सुणिज्जइ तूरहो ।
अज्जवि तइय चलण चाणूरहो ॥
अज्जवि णवइ पुरि जरसधहो ॥
आयए कखए बालु ण सोवइ ।
जाणइ जणणि अकारणें रोवइ ॥

नन्द का घर आनन्द मे है, जहाँ हरि बालक उत्पन्न हुआ है, गोठ प्रांगण और गायो का परिपालन करनेवाले जो पालने मे स्थिति होकर भी (जगत् का) का पालन करते है। रात का मार्ग दिखाई देने पर, युद्ध के क्षेत्र की आकाक्षा से कृष्ण को नीद नही आती। (वह सोचते हैं) आज भी पूतना देर क्यो करती है ? आज भी माया-शकट नही आता ? आज भी अरिष्ट वायस नही लौटता ? आज भी गोवर्धन पर्वत नही उठाया जाता। आज भी दोनों अर्जुन वृक्ष नष्ट नही किए जाते ? केसी अश्व नही गरजता ? आज भी यमुना नही मथी जाती, आज भी कालिया नाग को नही नाथा जाता ? आज भी कुवलय गज की पीठ को आहत नही किया जाता ? आज भी मथुरा नगरी को नही जाया जाता ? आज भी नगाडे का शब्द नही सुना जाता। चाणूर के पैर आज भी वैसे ही हैं, आज भी जरासध की नगरी वैसी ही प्रसन्न है ?" इसी आकाक्षा (चिन्ता) के कारण बालक नही सोता। माँ समझती है कि वह अकारण रोता है।

---

१. ज० क० 'कण्हहो णीसा मग्गि अक्खए। णिद्दा गइए रणगण कखए ॥'

घत्ता—मेहरि अम्माहीरएण परियदइ हल्लरु-णाह।
गोउलेपह अवइण्णेण हउ हुइय चित्ति सणाह॥१॥

को केहउ परचित्तइ चोरइ।
हरि अलियउ [1]णिरारिउ घोरइ॥
ण खयकाले महण्णव गज्जइ।
ण सुरताडिय दुंदुहि वज्जइ॥
ण णव-पाउसेण घणु गज्जइ।
ण केसरि-किसोर ओरुजइ॥
घोरण-सद्दें मेइणि कपइ।
णउ सामण्णु कोवि जणु जपइ॥
भीय जसोय विउज्झणे कुप्पइ।
उट्ठि वप्प किर केत्तिउ सुप्पइ॥
[2]कहवि विउद्धु णाहु हरिवसहो।
ताम कहिज्जइ केणवि [3]कसहो॥
वड्ढइ णदगोट्ठि[4] जो वालउ।
विक्कमु कोवि तासु असरालउ॥
घोरण-सद्दें अवरु फुट्टइ।
पिहि वि अभुत्ति डुक्करु छुट्टइ॥

घत्ता—ढुक्कु पमाणहो रिसि वयणु गोट्ठ गणे वड्ढइ विट्ठु।
अज्जु सुमहुर[5]-णराहिवहो ण हियवइ सल्लु पइट्ठु॥२॥

घत्ता—'अरे ओ सो जा' इस गीत के साथ माँ स्तुति करती है—हे हलधर स्वामी, तुम्हारे अवतीर्ण होने से मैं मन-ही-मन आज सनाथ हूँ॥१॥

कौन कैसे परचित्त हो चुराता है? बालक कृष्ण झूठमूठ जोर-जोर से घुरघुर करता है, मानो क्षयकाल में समुद्र गरजता है, मानो देवताओ द्वारा बजाई गई दुदुभि बजती है। मानो नव पावस से मेघ गरजता है, मानो सिंह का नवजात शिशु गरजता है। उस घुरघुर शब्द से धरती काँप उठती है। जनसमूह कहता है—यह सामान्य आदमी नही घुरघुर कर रहा है। भयभीत यशोदा बालक के जागने पर कुपित होती है—"ओ सुभट, उठो! कितना सोते हो!" तब हरिवश के स्वामी किसी प्रकार उठे। इतने मे किसी ने कस से कहा—"नन्द के गोठ मे जो बालक पाला जा रहा है, उसका कोई अत्यन्त पराक्रम है, उसके घुरघुर शब्द से आकाश विदीर्ण हो जाता है, और ऐसी धरती कठिनाई से बचती है कि जिसका उपभोग न किया गया हो।"

घत्ता—मुनि का वचन प्रमाणित हो गया। गोठ के आँगन मे विष्णु बढते हैं, आज मानो सुन्दर मथुरा के राजा के हृदय में शल्य प्रवेश कर गया।"

---

१ अ—णरारिउ। २ अ—कहवि उद्धु। ३ अ—सकहो। ४ अ—णद गोट्ठे। ५. ज—समहुर।

जं उप्पण्णु [1]गोट्ठे दामोयरु ।
सकिउ महुरापुर-परमेसरु ॥
आयउ देवयाउ [2]एत्थंतरि ।
सिद्धउ जाउ पुव्वजम्मतरि ॥
जइयहुं कसु होंतु पव्वइयउ ।
दुद्धरु घोरवीरु तउ लइयउ ॥
चदायणु चरतु सुहकारणु ।
मासहो मासहो एक्कसि पारणु ॥
जाणिवि[3] उग्गसेणें महुराराए ॥
भिक्ख णिवारिय पुरें अणुराए ॥
महु जि णिहेलणे थाउ भडारउ ।
सो वि पइट्ठु[4] अणग-वियारउ ॥
[5]पत्त-गइंद-अग्गि-कूवारउ ।
तें अलाहु तहो जाउ तिवारउ ॥
मासि चउत्थए जाव पइसइ ।
[6]मुच्छतें अधार तें दीसइ ॥

घत्ता—केणवि कोहुप्पायइउ, पत्थिवेण महारिसि मारिउ ।
आए को अवराहु किउ, जें पुरि पइसारु णिवारियउ ॥३॥

सिद्धउ देवयाउ तहिं अवसरि ।
देइ आएसु भणंति खणतरि ॥
वासुएउ वलएउ मुएप्पिणु ।

गोठ मे जो दामोदर का जन्म हुआ, उससे मथुरा का राजा शकित हो उठा। इसी बीच देवियाँ आयी जो उसे (कस को) पूर्वजन्म मे सिद्ध हुई थी, कि जब कस ने सन्यास ग्रहण करते हुए अत्यन्त घोर वीर तप किया था। शुभ (पुण्य) के कारण रूप चाद्रायण तप करते हुए वह माह-माह मे एक बार तप ग्रहण करता था। यह जानकर मथुरा के राजा उग्रसेन ने अनुराग के कारण, लोगो को मुनि के लिए भिक्षा देने से मना कर दिया और (उनसे) अनुरोध किया कि हे आदरणीय आप मेरे घर ही रहे। कामदेव को नष्ट करनेवाले वह मुनि नगर मे प्रविष्ट हुए। लेकिन पत्र, गजराज और अग्निसकट के कारण उन मुनि को तीन बार आहार का लाभ नही हो सका। चौथे माह मे जब वह प्रवेश करते हैं, तो वे मूर्च्छित हो जाते हैं और उन्हे अन्धकार दिखाई देता है।

घत्ता—किसी ने यह कहकर राजा को क्रोध उत्पन्न कर दिया कि राजा ने महामुनि को मार डाला। इन्होंने कौन-सा अपराध किया कि जिससे उसने इनका नगर मे प्रवेश रोक दिया ॥३॥

उस अवसर पर सिद्ध हुईं देवियाँ, 'आदेश दो' कहती हुईं पल भर मे आ गयी। बोली—

---

१ ज—गोट्ठि। २. ज—एत्थतरे। ३ ज—जाणेवि उग्गसेण महुराए। ४. ज—पयट्ठु। ५ ज—भत्तगइद। ६. ज—मुच्छत मधमारु ते दीसइ।

दिज्जउ अवर कवणु बंधेप्पिणु ॥
उग्गसेणु किं पलयहो णिज्जउ ।
किं समसुत्ती पुरे पाडिज्जउ ॥
वुच्चइ जइवरेण एत्थंतरे ।
एउ [1]करिज्जहु अण्णभवंतरे ॥
अम्हइं ताउ कंस सुपसण्णउ ।
मग्गि मग्गि किं चिंतावण्णउ ॥
पभणइ [2]महुरापुरि-परिवालउ ।
वड्ढइ णंदहो [3]घरि जो बालउ ॥
तं विणिवाइयहु महु आएसें ।
पूयण धाइया धाई-वेसें ॥
सविसु पयहरु ढोइउ बालहो ।
ण अप्पाणु छूढु मुहिकालहो ॥

घत्ता—सो थणु दुद्धधारधवलु हरि-उहय-करंतरे माइयउ ।
पहिलारउ असुराहयणे ण पंचजण्णु मुहि लाइयउ ॥४॥

पूयणु [4]पण्हुवंति आयट्टइ ।
थणुथणंतु [5]थणधय कड्ढइ ॥
पूयण पण्हुवंति भेसावइ ।
भद्दिउ भीमभिउडि दरिसावइ ॥
पूयण पण्हुवंति पवियंभइ ।
माहवरुहिर-पाण पारंभइ ॥
पूयण पण्हुवंति किर मारइ ।
णिट्ठुर-मुट्ठि विण्हु वड्ढारइ ॥

"वासुदेव और बलदेव को छोडकर, और कौन बाँधकर दिया जाए ? क्या उग्रसेन को प्रलय पहुँचाया जाए ? क्या नगर में वज्र गिराया जाए ?" इसी बीच मुनिवर ने कहा—"यह काम दूसरे जन्म मे करना ।" "हे कंस, हम वे ही देवियाँ प्रसन्न हुई हैं, माँगो माँगो ! तुम चिन्ता से व्याकुल क्यों हो ? 'तब मथुरापुरी का परिपालन करनेवाला कहता है—"नन्द के घर मे जो बालक बढ रहा है, मेरे आदेश से तुम उसे मार डालो ।" पूतना धाय के वेश मे दौडी । बालक को उसने विषैला स्तन दिया, मानो उसने स्वयं को काल के मुख मे डाल लिया ।

घत्ता—दूध की धार से धवल वह स्तन श्रीकृष्ण के दोनो हाथो मे समाता हुआ ऐसा मालूम हुआ मानो असुरों के युद्ध मे पहले पहल पांचजन्य मुख मे रखा हो ॥४॥

पूतना पनहाती हुई घूमती है, शिशु थन-थन करते हुए स्तन को खीचता है । पनहाती हुई पूतना डराती है, भद्र कृष्ण भयंकर भौंहें दिखाता है । पनहाती हुई पूतना बढ़ती है, माधव रक्त का पान प्रारम्भ करते हैं । पूतना पनहाती हुई मारती है, विष्णु (कृष्ण) अपनी दृढ़ मुट्ठी मारते

---

१ अ—करिज्जुह । २. ब—महुरा पयवालउ । ३. अ—घरे । ४. ज—पण्हुवत्ति । ५ थणद्धूउ

पूयण पउरकरेंहिं पडिपेल्लइ ।
डसइ जणद्दणु गाढुण मेल्लइ ॥
पूयणपिज्जमाण आकंदइ ।
हरि घुत्तत्तणेण परियदइ ॥
सोणिय-वीसढ[1] घाणिए मत्तउ ।
तो वि [2]पओहरु णवि परिचत्तउ ॥

घत्ता—खीरु वि रुहिरु वि पूयणहे कड्ढिउ केसवेण रउद्दें ।
ण णइमुहेण [3]वसुधरिहे आकरिसिउ सलिलु समुद्दें ॥५॥

[4]णिसुणि सद्दु रउद्दु उक्कदरु ।
णट्ठ जसोय ससज्झ समवरु ॥
बालु ण रक्खसु चित्तु चमक्कइ ।
पूयण विरसु रसति ण थक्कइ ॥
वासुएउ वसुएवहो णदणु ।
हरि-उविंद-गोविंद जणद्दणु ॥
पउमणाह माहव महुसूयण ।
कसहो तणिय विज्ज हउ पूयण ॥
गइय ण एमि, जामि ण मारहि ।
थणवण-वेयण-पसरु णिवारहि ॥
दुक्खु दुक्खु आमेल्लिय बालें ।
तहिं गोट्ठगणें थोवे कालें ॥
णवणवणीय-हत्थु हरि अगणे ।
अच्छइ जाम ताम गयणगणे ॥

हैं। पूतना अपने प्रवर हाथो से उसे ठेलती है, जनार्दन उसे काटता है, वह अपनी पकड को नही छोडता । पी (पिई) जाती हुई पूतना चिल्लाती है, कृष्ण घूर्तता से घूमते हैं, यद्यपि वह रक्त की घान से मत्त हैं, तो भी उनके द्वारा पयोधर नही छोडा जाता ।

घत्ता—रुद्र कृष्ण ने पूतना का दूध भी और रक्त भी इस प्रकार खीच लिया, मानो नदी के मुख से समुद्र ने धरती का जल खीच लिया हो ॥५॥

ऊँचा और भयकर शब्द सुनकर यशोदा भयपूर्वक अपने घर से भागी और बोली कि यह बालक नही राक्षस है। उसका चित्त चौंकता है। पूतना बुरी तरह चिल्लाती हुई नही रुकती—"हे वसुदेव के पुत्र वासुदेव, हरि उपेन्द्र गोविन्द जनार्दन पद्मनाथ माधव मधुसूदन, मैं पूतना कस की विद्या हूँ। गई हुई नही आऊँगी, मैं जाती हूँ, मुझे मत मारो। स्तनो के घावो की वेदना को दूर करो।" बालक ने बडी कठिनाई से उसे छोडा। थोडे समय बाद उसी गोठ-आगन मे, जब शिशु कृष्ण, नवनीत के समान हाथवाले हरि बैठे हुए थे, कि तभी आकाश के आँगन मे

---

१ प्र—वीसड्ढ-घाणिये। २ अ—पनुहरु। ३ —वसघुरे। ४ अ—णिसुणिय वि सद्दु रउद्दुक्कदिरु।

आइय देवय कसाएसें ।
सुसुवति वरवायसवेसें ॥
घत्ता—जाणिउ एतु जणद्दणेण खग-मायारूव पवचु ।
करिवि अयगमु घल्लियउ णिप्पीडण-तोडिय-चचु ॥६॥

[1]कइहिं दिणेहिं णरिंदाएसें ।
आइय देवय सदण-वेसें ॥
घुरुहुरत खुप्पतेंहिं चक्केहिं ।
रुदिम-सदाणिय चन्दक्केहिं ॥
रहु सयमेव [2]अवाहणु घावइ ।
थाणहो चलिउ महीहर णावइ ॥
[3]सोवि गोविंदें विक्कमसारें ।
भग्गु कडत्ति णियपिपहारें ॥
अण्णहिं वासरि अइवलवतउ ।
मायावसहु आउ गज्जतउ ॥
चलणुच्चालिय-भूहरभयकरु ।
ढेक्कारव-वहिरिय-भुवणोयरु ॥
गुरु-सिगग्ग-लग्ग-णहमणु ।
भेसाविय असेस-गोट्ठ गणु ॥
पेक्खिवि रिट्ठु सुट्ठु आरुट्ठउ ।
वलेवि कठु किउ पाराउट्ठउ ॥
घत्ता—गीवाभगे पदरिसिए सदाणिउ जाउ विसेसें ।
वक्को वलिए णीसरिवि गउ जीविउ कहवि किलेसें ॥७॥

में कस के द्वारा प्रेषित एक देवी आयी, कौए के रूप मे सूं सूं करती हुई ।

घत्ता—जनार्दन ने, खग के माया रूप प्रपच को जान लिया । जिसकी चोच निष्पीडन से टूट चुकी है, ऐसे उस मायावी पक्षी को अजगम करके छोड दिया ॥६॥

कुछ ही दिनो में राजा के आदेश से एक देवी रथ के रूप मे आयी, विस्तार मे चन्द्रमा और सूर्य को पराजित करनेवाले जगमगाते चक्को (चक्रो) से घुर-घुर करती हुई । रथ अपने आप दौडता है, जैसे महीधर अपने स्थान से चलित होकर दौड रहा हो । विक्रम मे श्रेष्ठ गोविन्द ने उसे भी अपने पैरो के प्रहार से तडतड तोड दिया । दूसरे दिन, अत्यन्त बलवान मायावी बैल गरजता हुआ आया । जो पैरो से उछाले गए पहाड से भयकर है, जिसके विशाल सीग का अगला भाग आकाश के आँगन से जा लगा है, जिसने समस्त गोठ आँगन को भयभीत किया है, ऐसे उस अत्यन्त कुपित बैल को देखकर, उसकी ग्रीवा को मोडकर उसे इस छोर से उस छोर तक मिला दिया ।

घत्ता—ग्रीवा भग के प्रदर्शन से बैल विशेष रूप से नियन्त्रित हो गया । टेढे मुडने पर उसके प्राण बडी कठिनाई से निकलकर जहाँ कही भी चले गये ॥७॥

---

१ ज—कहृवि । २ अ—आवाहणु । ३ अ—सुवि ।

अण्णहिं दिवसि तुरगमु [1]आइयउ ।
भग्गगीउ गओ कहवि ण घाइउ ॥
अण्णहिं वासरि वालु थणधउ ।
दाम गुणेण उलूखलु बद्धउ ॥
गय जसोय सरसलिलहो जावहिं ।
[2]पच्छइ लग्गु जणद्दणु तावहिं ॥
[3]एक्कें गइ विलासु परिवड्ढइ ।
अवरकमेण उलूखलु कड्ढइ ॥
कसाएसें परवल गजणु ।
उप्परि पडिय णवरि जमलज्जणु ॥
ता महसूयणेण मज्झत्थें ।
एक्केकउ एक्केकक्कें हत्थें ॥
भग्ग कडत्ति वेवि गयणासेवि ।
रूवइ मायावियइ पयासेवि ॥
अण्णहिं काले धूलि पहाणेंहिं ।
जलहरधारहिं मुसलपमाणेंहिं ॥
लइउ गोट्ठु आरुट्ठुजणद्दणु ।
गिरि उद्धरिउ दुद्धरु गोवद्धणु ॥

घत्ता—वड्ढिय-पुण्ण-फलोदएण दणुदेह दलण-अवयिण्हे ।
दिवहइ सत्त सरत्तियइ परिरक्खिउ गोउल, कण्हें ॥८॥

अण्णहिं वासरि णयणाणदहो ।
देवइ हलहरु गोउलणदहो ॥
गयइ वेवि हरिणदणलुद्धइ ।

दूसरे दिन घोडा आया । गर्दन नष्ट होने के कारण वह भाग खडा हुआ, किसी प्रकार मरा भर नही । दूसरे दिन, दूधपीता वच्चा रस्सी से ऊखल से बाँध दिया गया । जिस समय यशोदा तालाव के जल के लिए जाती है, उसी समय जनार्दन पीछे लग गये । एक पैर से वह अपना गतिविलास बढाते हैं, और दूसरे पैर से ऊखल को खीचते हैं । कस के आदेश से शत्रुसैन्य का नाश करनेवाले यमलार्जुन केवल उसके ऊपर गिर पडे । तव वीच मे स्थित मधुसूदन ने एक-एक को एक-एक हाथ से तडतड करके नष्ट कर दिया । वे दोनो अपने मायावी रूप दिखाकर भाग गये । एक समय—जिनमे धूल और पत्थर हैं, और जो मूसल के वरावर हैं ऐसी जलधर-धाराओ ने गोठ को घेर लिया । जनार्दन क्रुद्ध हो उठे, उन्होने दुर्धर गोवर्धन पर्वत उठा लिया ।

घत्ता—जिसके पुण्यफल का उदय वढ रहा है, और दानवो के शरीरो को चूर-चूर करने मे अवितृष्ण (असतुष्ट है) ऐसे कृष्ण ने सात दिन-रात गोकुल की रक्षा की ॥८॥

दूसरे दिन, देवकी और वलराम दोनों, नेत्रो को आनन्द देनेवाले गोकुल के नन्द के पास

---

१ अ—खाइउ । २. ब—पचछले । ३ अ—एक्क ।

जहिँ गोवइँ परिवड्ढिय-दुद्धइ ॥
जहिँ बोलिज्जइ गोमलियामउ ।
[1]ढोइज्जइ सिंदूरउ दामउ ॥
जहिँ गोविउ गोविंदात्तिहरु ।
दाविय कंचुयद्धथण-सिहरु ॥
जहिँ वण्णिज्जइ जणेण जणद्दणु ।
एत्थु पलोट्टिउ मायासवणु ॥
पूयण एंतु एत्थु पडिच्छिय ।
वायसविज्ज एत्थु णियच्छिय ॥
एत्थु रिट्ठु सतुरंगमु मद्दिउ ।
एत्थु उलूखलु कड्ढइ भद्दिउ ॥
एत्थु भग्गु जमलज्जण बालें ।
गिरि उद्धारिउ एत्थ भुवडालें ॥

घत्ता—त गोट्ठ गणु देवइए, लक्खिज्जइ सुट्ठु खण्णउ ।
अवसें होसइ महग्घयरु, णारायण सियहें-णिसण्णउ ॥६॥

वासुएव[2] वसुएवघरिणिए ।
कलह करेणु दिट्ठु ण करिणिए ॥
पीयलवासु महाघण-सम्मउ ।
[3]सिरकमल ट्ठिय-कुवलयदम्मउ ॥
कावि गोवि तहों [4]पच्छइ लग्गी ।
थक्कु कण्ह पइ मयणी भग्गी ॥
जइ ण महारउ ढुक्कहि पगणु ।

वहाँ गये, जहाँ दूध का सवर्धन करनेवाले गोपति थे, और जहाँ गायो के झुण्ड और मृग बोल रहे थे। जहाँ सिन्दूर और रस्सियाँ ढोयी जा रही थी, जहाँ गोविन्द की पीडा को दूर करनेवाली, और कचुकी से अपना आधे स्तन के शिखर भाग को दिखानेवाली गोपियाँ थी। जनो के द्वारा जहाँ जनार्दन का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि यहाँ उन्होंने मायावी रथ को उलटाया, यहाँ आती हुई पूतना की प्रतीक्षा की। यहाँ वायसविद्या को पीडित किया। यहाँ अश्व सहित अरिष्ट वृषभ का मर्दन किया। यहाँ भद्र (कृष्ण) ऊखल खीचते रहे, यहाँ शिशु ने यमलार्जुन को भग्न किया। यहाँ कृष्ण ने अपनी बाहु रूपी डाल से गोवर्धन पर्वत उठाया।

घत्ता—देवकी को गोठ प्रागण अत्यन्त सुन्दर दिखाई दिया। (उसे लगा कि) नारायण की श्री में रहनेवाला अवश्य ही मूल्यवान सिद्ध होगा ॥६॥

वसुदेव की गृहणी देवकी ने वासुदेव (कृष्ण) को इस प्रकार देखा मानो हथिनी ने हाथी के बच्चे को देखा हो। पीले वस्त्र वाले वह महामेघ की तरह श्याम हैं, और सिर पर कमलमाल स्थित है। कोई गोपी उनके पीछे पड गई—"हे कृष्ण तुमने मेरी मथानी तोडी है, तुम तब तक

---

१. अ, ब—'लइ सिन्दूरउ ढोइहि दामउ'। २ अ—वासुएउ। ३ अ—सिरि कमल-टिठय-कुवलयदामउ। ४ अ—पच्चा।

एक्कसि जइ ण देहि आलिगणु ॥
कावि गोवि सयवारउ घोसइ ।
णदहो तणिय आण तउ होसइ ॥
जइ एक्कु वि पउ देहि परंमुहु ।
एक्कवार जोयहि सवडमुहु ॥
कावि गोवि [1]रसरंग-पलक्की ।
हरितणु कतिहे ल्हिक्किवि थक्की ॥
एम णियति कीलतहो वालहो ।
घणरिद्धि ण मिलिय सुकालहो ॥

घत्ता—पुत्त-समागमे देवइहे थण पण्हुउ कहिं मि ण माइ ।
लहु अहिसित्तु पयोहरेहिं विहि मेहेहिं महिहरु णाइ ॥१०॥

तो [2]अवहत्थु करिवि संखेवें ।
खीरहडेण सित्तु वलएवें ॥
वासह-वसह भणेवि पगासिय ।
जिह भउ होइ ण कंसहो पासिय ॥
अचेवि पुज्जेवि वदिवि गोवइ ।
गय णियभवणु पडीवी देवइ ॥
महुराहिउ तहिं काले घुडुक्कउ ।
पेक्खह वालु भणंतु पढुक्किउ ॥
णट्ठ जसोय कहिमि हरि लेप्पिणु ।
पाणिग्गहण-पघोस करेप्पिणु ॥
तहिंवि दुवालिए विणु ण पवत्तइ ।

यही ठहरो कि जब तक तुम मेरे आँगन मे नही पहुँचते और मुझे आलिगन नही देते।" कोई गोपी सौ वार घोषित करती है—"तुम्हे नद की शपथ है यदि विमुख होकर तुम एक भी कदम रखते हो, एक वार मुँह सामने करके देखो।" रस क्रीडा से प्रदीप्त कोई गोपी कृष्ण के शरीर की काति मे छिपकर वैठ गई। क्रीडा करते हुए वालक कृष्ण को देवकी इस प्रकार देखती है जैसे सुकाल को घन-ऋद्धि मिल गई हो।

घत्ता—पुत्र के सगम के कारण देवकी का दूध झरता स्तन कही भी नही समाता। (देवकी के) पयोधरो से श्रीकृष्ण [विधि] उसी प्रकार अभिषिक्त हुए जिस प्रकार महीधर मेघो से अभिषिक्त होता है।

तव शीघ्र ही उसे [देवकी को] हटाकर वलदेव ने दूध के घडे से उसका अभिषेक किया, और उन्हे 'इन्द्रश्रेष्ठ' कहकर प्रकाशित किया कि जिससे उन्हें कस से भय न हो। गोपति (कृष्ण) की अर्चना पूजा और वदना कर, देवकी वापस अपने घर पर गयी। उस अवसर पर मथुरा का राजा गरजा और 'वालक को देखो' यह कहता हुआ वहाँ पहुँचा। यशोदा श्रीकृष्ण को लेकर और विवाह की घोषणा कर कही(दूर) चली गयी। वहाँ भी वालक ऊधम के विना प्रवृत्ति

---

१ अ, ज, व,—रससग। २. अ—अवहित्थु।

सिलसघाउ सिलोवरि घत्तइ ॥
[1]हरि-चरेहिं कहिज्जइ कसहो ।
सच्चउ होइ णाहु हरिवसहो ॥
कावि अपुव्व भगि तहो केरी ।
दुक्करु, छुट्टइ वसुमइ तेरी ॥

घत्ता—महुरापुर-परमेसरहो भउ वट्टइ धीरु ण थाइ ।
हरिवलगुण-करवत्तेहिँ कप्पिज्जइ हियवउ णाइ ॥११॥

दुज्जसमसि-मइलिय-णियवसें ।
घोसण पुरि देवाविय कसें ॥
विज्जाहरेण सुकित्तणणामे ।
णिज्जिय-णिरवसेस सगामे ॥
मेरुमहीहर-णिच्चल चित्तें ।
सच्चहामवरइत्त-णिमित्तें ॥
रहणेउरणयरहो पट्ठवियइ ।
रयणइ तिण्णि एत्थु चिर ठवियइ ॥
तहिं जो [2]णायसेज्ज आयामइ ।
पूरइ पचजण्णु धणु णामइ ॥
अद्धुरज्जु तहो देमि णिरुत्तओ ।
हय-गय-रयण-दुहिय-सजुत्तओ ॥
तो सेज्जहि [3]णिसण्णु गरुडासणु ।
पूरिउ सखु चढाविउ सरासणु ॥

घत्ता—वामइ करि सारगु किउ दाहिणेण सखु मुहि ढोइयउ ।
[1]विसहर-सेज्जे समारुहिवि रिउ णाइ कयतें जोइयउ ॥१२॥

नही करता, वह शिला के ऊपर शिलाओ का समूह स्थापित करता है। दूतो ने जाकर कस से कहा, "सचमुच श्रीकृष्ण हरिवश के स्वामी होंगे। उनकी कोई अपूर्व ही भगिमा है। अव बडा कठिन काम है, तुम्हारी धरती हाथ से जाएगी।"

घत्ता—मथुरा नगरी के परमेश्वर कस के मन मे डर है, उसके मन मे धीरज स्थिर नही रहता। जैसे वासुदेव और बलराम के गुणरूपी करोत से उसका हृदय काट दिया गया हो ॥११॥

जिसने अपयशरूपी काली स्याही से अपने वश को कलकित कर लिया है, ऐसे कस ने नगर मे घोषणा करायी—"सत्यभामा के वर के निमित्त से, रथनूपुर नगर से भेजे गए तीन रत्न यहाँ बहुत समय से रखे हुए हैं। यहाँ जो नागशय्या पर सोता है, शख बजाता है और धनुष चढाता है निश्चय से मैं उसे अश्व, गज, रत्न और कन्या से युक्त आधा राज्य दूंगा।" तब श्रीकृष्ण नागशय्या पर जा बैठे, उन्होंने शख फूंक दिया और धनुष चढा दिया।

घत्ता—कालिया नाग काल के समान काला है, मैं उसके पास जाती हूँ, वह मुझे खाए; नाव किनारे लग जाए और सबका नाश न हो ॥१३॥

---

१ अ—हरेवि चरेहिं। २ अ—णागसेज्ज। ३ अ—णिवण्णु।

कसहो कज्जु परिट्ठिउ भारिउ।
सज्झसु मणे उप्पण्णु णिरारिउ॥
कहिय वेढ्ढि गोट्ठ गणणाहहो।
[2]जउण-महादहहो अगाहहो॥
णदगोउ लहु कमलइं आणहि।
ण तो चिंति कज्जु ज जाणहि॥
तहि अवसरि परिवड्ढिय सोयहो।
णिवडिय ण गिरिवज्ज-[3]जसोयहो॥
एक्कु पुत्तु महु अब्भुद्धरणउ।
तासु वि कस समिच्छइ मरणउ॥
होंतु मणोरह महुरारायहो।
वरि अप्पाणु समप्पिउ णायहो॥
मइ जीवतए काइ हतासए।
भूमिहो णाइ सिल सकासए॥
अहवइ जइ गउ णद सणदणु।
तो महु धुउ अपुत्तणु रडत्तणु॥

घत्ता—कालिउ कालउ कालसमु मइ खाहु जामि तहो पासु।
लग्गउ तहि वोहित्थडउ मा सव्वहो होहि विणासु॥१३॥

तो [4]वल्लहजण-णयणाणदें।
णिय पिययम-मब्भीसिय णदें॥
धीरी होइ कत किं रोवहि।
मा णिक्कारणे अप्पउ [1]सोयहि॥
वरु परिरक्खणु करि गोविंदहो।

घत्ता—बाएँ हाथ मे धनुष ले लिया, और दाहिने हाथ से शख बजा दिया। नागशय्या पर बैठकर शत्रु को इस प्रकार देखा जैसे यम ने देखा हो॥१२॥

कस का काम भारी हो गया, उसके मन मे अत्यधिक भय उत्पन्न हो गया। गोठ प्रागण के स्वामी नन्द को घेर कर उसने कहा—"हे नन्दगोप, अगाध यमुना सरोवर से कमलो को लाओ, नही जैसा ठीक जानो वैसा सोच लो।" उस अवसर पर, जिसका शोक बढ रहा है ऐसी यशोदा के सिर पर जैसे गिरिवज्र गिर पडा। मेरा उद्धार करने वाला एक ही पुत्र है, कस उसी की मृत्यु चाहता है, मथुराराज का मनोरथ पूरा हो, अच्छा है मैं स्वय को नाग के लिए अर्पित कर दूँ। हताश मेरे जीने से क्या? चट्टान की तरह, मैं इस धरती के लिए केवल भार स्वरूप हूँ। अथवा यदि नन्द पुत्र के साथ जाते है तो निश्चय से मैं पुत्रविहीन और विधवा हो जाऊँगी।

तब प्रियजनो के नेत्रो को आनन्द देनेवाले नन्द ने अपनी पत्नी को अभय वचन दिया—"हे काते, तुम धैर्य रखो, रोती क्यो हो, अकारण अपने को सोच मे मत डालो, अच्छा है तुम

---

१ अ—विसहरभया समारुहिवि। २ अ—जउणावानाहियहो अगाहहो। ३ अ—जसोयहिं। ४ अ—वल्लवजण।

हउ जामि तहो पासु फणिवहो ।।
जिम थेरासणभारु पराणिउ ।
जेम समउ तिम सो सम्माणउ ।।
एम भणेवि, पउ वेमि ण जामहिं ।
महुमहेण वि वारिउ तामहिं ।।
अच्छहि ताय ताय णिच्चितउ ।
उहु भरु महु खधोवरि घित्तउ ।।
जेंहि थिय वालमहागह खीलिवि ।
पूयणघरिय जेंहि आवीलिवि ।।
वायस-चचु जेंहि रणे तोडिय ।
णिहउ रिट्ठ जमलज्जण मोडिय ।।

घत्ता—गिरिगोवद्धणु उद्धरिउ सत्ताण्हिउ जेंहि पयडेंहि ।
पेक्खु भुयगमु णत्थियतु धुव तेंहि भुयवडेंहि ।।१४।।

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलयासिय-सयभूएवकए गोविंदवालकीलाणामो
णायव्वो पचमो सग्गो ।।५।।

गोविंद की रक्षा करो, उस नागराज के पास मैं जाऊँगा । जिस प्रकार कमलो का भार आया है, जिस प्रकार का समय है, उसका उसी प्रकार सम्मान करो ।" यह कहकर, जब तक नन्द पैर नहीं दे पाये, कि तभी श्रीकृष्ण ने उन्हें मना किया—"हे तात, आप निश्चित रहिए, वह भार मेरे कधो पर डाल दिया गया है । जिन से बालक महाग्रहो को कीलित करके स्थित था, जिन से उसने पूतना को पीडित कर पकड लिया, जिन हाथो से उसने कौए की चोच तोडी, अरिष्ट को मार दिया और यमलार्जुन को मोड दिया ।"

घत्ता—जिन प्रचड हाथो से सात दिन तक गोवर्धन उठाया, उन्ही मेरे हाथो से कालिया नाग को नाथते हुए देखो ।।१४।।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव कवि द्वारा विरचित गोविंद-बाललीला
नाम का पाँचवाँ सर्ग जानना चाहिए ।

---

१ अ—सोवहिं ।

घत्ता—केसउ कालिउ कालिंदिजलु तिण्णिवि मिलियइ कालाइ ।
अधारी हूयउ सव्वु काइ णियतु णिहालाइ ॥१॥

उद्धाइउ विसहरु विसमलीलु ।
कलिकाल कयत-रउद्दसीलु ॥
कालिन्दीपमाण-पसारियगु ।
[1]विवरीयच्चलिय-जल-चल-तरगु ॥
विप्फुरिय फणामणि किरणजालु ।
फुक्कार-भरिय-भुवणतरालु ॥
मुहकुहर-मरुद्धुय-महिहरिंदु ।
णयणग्गि-झुलुक्किय-अमरविंदु ॥
विसदूसिय-जउण-जल-पवाहु ।
अवगण्णिय-पकयणाह-णाहु ॥
दप्पुद्धरु उद्ध-फणालि-चडु ।
ण सरिय पसारिउ वाहुवडु ॥
उप्पण्णउ पण्णउ [2]अज्ज कोवि ।
पहरिज्जहि णाह णिसक होवि ॥
तो विसम विसुग्गारुग्गमेण ।
हरि वेढिउ उरि उरजगमेण ॥

घत्ता—जउणावहे एक्कु मुहुत्तु केसव सलिल कील करइ ।
रयणायरे मदरु णाइ [3]विसहर-वेढिउ सचरइ ॥२॥

णियकतिए असुर-परायणेण ।

घत्ता—केशव, कालियानाग और कालिंदीजल तीनो काले मिल गए, सब कुछ अधकारमय हो गया। देखे हुओ को देखने से क्या ? ॥१॥

विषम स्वभाव वाला वह विषधर दौड पडा। वह कलिकाल और कृदत के समान रुद्र स्वभाव का था, प्रसरित अगो वाला वह यमुना का प्रमाण-स्वरूप था। जिससे जल की चचल तरगें विपरीत दिशा मे बह रही हैं, जिसके फणामणि पर किरण समूह चमक रहा है, जिसके फूत्कार से भुवन का अतराल भर जाता है, जिसके मुखरूपी कुहर की हवा से पर्वतराज उड जाता है, जिसके नेत्रो की आग में अमर समूह ध्वस्त हो जाता है, जिसके विष से यमुना का जल-प्रवाह दूषित है, जिसने कमलनाथ स्वामी की उपेक्षा की है, जो दर्प से उद्धत है, जिसने प्रचड फनो की आवली उठा रखी है जो ऐसी मालूम होती है कि मानो सरिता ने अपना बाहुदड फैला लिया है, ऐसा कोई सर्प आज उत्पन्न हुआ है। हे स्वामी, आप निश्चित होकर उस पर प्रहार कीजिए। तब जिससे विष का उद्गार उत्पन्न हो रहा है, ऐसे नागराज ने हरि को घेर लिया।

घत्ता—यमुना के महासरोवर मे केशव एक पल के लिए क्रीडा करते हैं, मानो समुद्र मे विषधरो से घिरा हुआ मदराचल चल रहा है ॥२॥

अपने तेज से असुरो को पराजित करनेवाले नारायण को कालिय नाग दिखाई नही दिया।

---

१ अ—विवरीयचलिय जलचर तरगु। 2 अ—अजु। ३ अ—विसहतेहिउ सचरइ।

त फेडइ जइवि पर एक्कु मल्लु ॥
जासु तणइ चलण तियसह असज्झु ।
जें दिट्ठें णासइ सो अवज्झु ॥
घत्ता—हक्कारिवि तो चाणूर अवरु घणुद्धरु मुट्ठियउ ।
लक्खिज्जइ राहु विसण्णु धूमकेउ ण णहिट्ठियउ ॥५॥

तो महुरापुरे परमेसरेण ।
वोल्लाविय वेवि कियायरेण ॥
परिवालहु जइ जाणहु कयाइ ।
जइ पहु-पसाय-रिणु हियइ थाइ ॥
तो वयणु महारउ करहु अज्जु ।
मा तुम्हेंहि हुतेंहि हरउ रज्जु ॥
बलवतउ दीसइ णदजाउ ।
अण्णु सीराउहु तहो सहाउ ॥
सो पइ हणेव्वउ मुट्ठिएण ।
वलएउवलुद्धरु मुट्ठिएण ॥
[1]धुरधरह तहिं रणि दुद्धराइ ।
हक्कारा गय हरिहलहराइं ॥
सचल्लिय वल्लवबल-महल्ल ।
दणु-उप्परि-मल्लेक्केक्कमल्ल ॥
वडमालालकिय-उत्तमग ।
भूभूसियभूरिभुआभुवग ॥

है। वह मुझे मारेगा, देवता भी मुझे नही बचा सकते। तब भी इसका उपाय सोचना चाहिए जिससे कोई किसी प्रकार उस तक पहुँच सके। यह शल्य उसके हृदय को कष्ट देती है। यद्यपि उसे केवल एक मल्ल तोड सकता है, जिसके पैर देवताओ के लिए भी असाध्य हैं, जिसके देखने पर वह अवध्य अवश्य मारा जाएगा।

घत्ता—तब चाणूर और दूसरे धनुर्धारी योद्धा को बुलाकर देखा। वे ऐसे दिखाई देते थे जैसे आकाश मे राहु और धूमकेतु स्थित हो ॥५॥

तब जिसका आदर किया गया है ऐसे परमेश्वर (कस) ने उन दोनो (मल्लो) को मथुरा मे बुलवाया और कहा—"परिपालन करो, यदि तुम लोग किए हुए को जानते हो, यदि स्वामी के प्रसाद का ऋण हृदय मे है तो आज तुम हमारा कहा पूरा करो। तुम्हारे रहते हुए (शत्रु) राज्य का अपहरण न करे। नन्द का पुत्र बलवान् दिखाई देता है। और फिर बलभद्र उसका सहायक है, तुम्हें उसे मुष्टि (प्रहार) से मार डालना चाहिए। मुष्टिक द्वारा बलभद्र का बल छीन लिया जाए।" तब युद्ध मे दुर्धर और धुरन्धर हरि-हलधर को बुलाया गया। उत्तम बल मे महान् वे महामल्ल चले जो दानवो के ऊपर एक-से-एक महान् मल्ल हैं, जिनके सिर मुरेठ (वटमाला) से अलकृत हैं, जो भौंहो और समर्थ भुजाओ से विभूषित हैं।

---

[1] अ—धुरधरिय तेंहि रणे दुद्धराह ।

घत्ता—णिसुणिज्जइ महुरहि तूरु गोविहि रहसुच्छाइयहि ।
ण कसहो घरि कूवारु हरिवलएवहि आइयहि ॥६॥

तो रोहिणिदेवइ-तणुरुहेहि ।
अवरेहि मि मिलिएहि गोदुहेहि ॥
लक्खिज्जइ धोवु धोवमाणु ।
कियवत्थाउढरयावसाणु ॥
सकरिसणु कहइ जणद्दणासु ।
दुद्दम-दणुदेह-विमद्दणासु ॥
एहु हणइ कढिल्लइ सिलहि जेम ।
चिरु [1]देवइ-जायइ कसु तेम ॥
त वयणु सुणेवि महुसूयणेण ।
जमपगण-पाविययूयणेण ॥
ससयडजमलज्जण-मोडणेण ।
कालियसिर-सेहर-तोडणेण ॥
उत्थघिय-गिरि-गोवद्धणेण ।
वसुएव-वस-सवद्धणेण ॥
परिहाण-सयाइ लेवावियाइ ।
ण मड मड रिउजीवियाइ ॥

घत्ता—वलएवें सामउ धासउ कण्हें कणयसमुज्जलउ ।
ण कड्ढिउ कसहो पित्तु दीसइ कालउ पीयलउ ॥७॥

सिरिकुलहर-हलहर चलिय बेवि ।
गामीणगोयकियमल्ल जेवि ॥

घत्ता—हर्ष से उछलती हुई गोपियो के द्वारा मधुर नगाडा सुना जाता है मानो हरि और हलधर के आने से कस के घर गुहार (पुकार) मच गई हो ॥६॥

तब रोहिणी और देवकी के पुत्रो (वलभद्र और कृष्ण) और दूसरे मिले हुए ग्वालो के द्वारा वस्त्र धोता हुआ धोवी देखा गया जो वस्त्रो मे लगी धूल हटा रहा था। वलभद्र, दुर्दम दानवो की देह का दलन करनेवाले जनार्दन (श्रीकृष्ण) से कहते हैं कि यह (धोवी) जिस प्रकार शिला पर वस्त्रो को पछाडता है, उसी प्रकार पहले देवकी के पुत्रो को कस ने पछाडा।" यह वचन सुनकर पूतना को यम के प्रागण मे भेजनेवाले, शकट सहित यमलार्जुन को मोडनेवाले, कालिया नाग के सिरशेखर को तोडनेवाले, गोवर्धन पर्वत को ऊँचा उठानेवाले, वसुदेव के वश को वढानेवाले श्रीकृष्ण ने सैकडो वस्त्र ले लिये, मानो वलपूर्वक उन्होने शत्रु के प्राण ले लिये हों।

घत्ता—वलभद्र ने श्याम वस्त्र और कृष्ण ने सोने के समान उज्ज्वल वस्त्र खींच लिया, जो मानो कस से निकाले गए काले-पीले पित्त के समान जान पडता था ॥७॥

श्रीकृष्ण और हलधर दोनो चल पडे। जो ग्रामीण मल्लगोप थे उनको भी ले लिया। वे स्थूल

---

१ ज, ब—देवइजाए।

थिरथोरमहाभुयवियडवच्छ ।
णाणाविह णिवद्ध सिवय-कच्छ ।।
लायण्ण-महाजलभरिय-भुयण ।
मुह-ससहरकर-पडुरिय-गयण ।।
चलचलणुच्चालिय-अचलवीढ ।
दामोयर-उर-सिर-पसर-लीढ ।।
अप्फोडण-रव बहिरिय वियत ।
कसोवरि गय ण बहु कयत ।।
सयलघि णिहालिय तेहिं [1]ताव ।
मथरसचार महाणुभाव ।।
सव्वालकार-विहूसियग ।
लडहत्तणि कावि अउव्वभग ।।
णियणाहहो किर मडणउ णेइ ।
णारायण भायणु मडु लेइ ।।

घत्ता—उद्दालिवि महुमहणेण गोवह दिण्णु पसाहणउ ।
ण लइउ विहजेवि तहिं जीवउ चाणूरहो तणउ ।।८।।

थोवतरि दिट्ठु महागइदु ।
अणवरय-गलिय-मय सलिलविंदु ।।
विसमासणि सणि-सय-सम रउद्दु ।
मय-सरि परिवड्ढाविय समुद्दु ।।
गल्ल-गिल्ल-झल्लरि बहिरियासु ।
परिमल मेल्लाविय-अलि-सहासु ।।

महाबाहु थे और मानो विशालवृक्ष वाले नाना प्रकार के जलाशयो के तट से निर्मित कच्छा बाँधे हुए, सौंदर्य के महाजल से विश्व को आपूरित करनेवाले थे। मुखचन्द्र की किरणो से जिन्होंने आकाश को धवल कर दिया था। जो पैरो से अचल पीठ को उछालने वाले हैं, जिन्होने दामोदर के वक्ष और सिर का प्रसार ग्रहण किया है, और आस्फालन के शब्द से दिशाओ को बहरा बना दिया है ऐसे वे कस के ऊपर (की ओर) गये मानो बहुत से यम हो। इतने मे उन्होंने एक दासी को देखा जो धीरे-धीरे चलनेवाली और उदार आशयवाली थी। उसका शरीर सब प्रकार के अलकारो से विभूषित था, उसकी सौन्दर्य-भगिमा अपूर्व थी। वह अपने स्वामी के लिए प्रसाधन-सामग्री लेकर जा रही थी।

घत्ता—मधुसूदन ने वह प्रसाधन छीनकर ग्वालो को दे दिया, मानो चाणूर के प्राणो को विभक्त करके उन्होंने ले लिया हो ।।८।।

थोडे अन्तर पर महागज दिखाई दिया, जिससे अनवरत मदजल की बूँदें झर रही थी जो विषम वज्र और सैकडो शनियो के समान रौद्र था, मद रूपी सरिता को वृद्धिगत करने के लिए मानो समुद्र था। भीतर से उमडते हुए मद से गण्डस्थल गीला हो रहा था और बाहर की झालर पर उन्मुक्त सौरभ (गध) पर हजारो भ्रमण मँडरा रहे थे। उसके दांत काले लोहे के

---

१. अ—ताम ।

फसणायस-वलय-णिबद्धदतु ।
थिउ मग्ग णिरुभेवि जिम कयतु ॥
दढमुट्ठिए हउ णारायणेण ।
कवलिज्जइ जाम ण वारणेण ॥
परिभमिउ चउदिसु पीयवासु ।
ण विज्जपुज णवजलहरासु ॥
खेल्लाविवि किउ णिप्फदु हत्थि ।
णइ णावइ जीविउ अत्थि णत्थि ॥
करु तोडिउ मोडिउ एक्कु दतु ।
गउ दप्प-पणासिउ दलघुलतु ॥

घत्ता—त श्रायस वलय-णिबद्धु करि-विसाणु हरिणा करि किउ ।
सिसु-फसण-भुवगम रुद्धु केयइ-कुसुमे णाइ थिउ ॥६॥

हरि-हलहर सहु गोवहिं पइट्ठ ।
पडिमल्लेहिं ण जमजोह दिट्ठ ॥
सयल वि भड-उब्भड-भिउडि-भीस ।
सयल वि वडमाला-बद्धसीस ॥
सयल वि आवीलिय बद्धकच्छ ।
सयल वि कोवारुण-दारुणच्छ ॥
सयल वि विसहर-विसमसील ।
सयल वि कलिकाल कयत लील ॥
सयल वि णारायण-सम सरीर ।
सयल वि सुरगिरिवर-गरुयधीर ॥
सयल वि हरिविक्कम सारभूय ।

वलय से बँधे हुए थे और यम की भाँति रास्ता रोककर स्थित था। श्रीकृष्ण ने मजबूत मुष्टि से उसे आहत कर दिया। और जबतक गज द्वारा ग्रसित होते, कि उमसे पहले ही पीतवस्त्रधारी श्रीकृष्ण उसके चारो ओर घूम गये, मानो नए मेघसमूह के चारो ओर विद्युत्समूह हो। श्रीकृष्ण ने खेल खिलाकर हाथी को जड कर दिया, यह नही ज्ञात हुआ कि उसमे जीव है या नही। उसकी सूँड तोड दी और एक दाँत तोड दिया। जिसका दर्प नष्ट हो गया, ऐसा हाथी दम तोडता हुआ भाग गया।

घत्ता—लोह-वलय (जजीर) से बँधे हुए उस हाथी के दाँत को श्रीकृष्ण ने हाथ मे ले लिया। उनके हाथ मे वह ऐसा लगता था जैसे केतकी के कुसुम मे अवरुद्ध शिशुनाग हो ॥६॥

ग्वालो के साथ हरि और बलराम प्रविष्ट हुए। शत्रुमल्लो ने उन्हें यमयोद्धाओ की तरह देखा। सभी योद्धा उद्भट और भौंहो से भयकर थे। सभी ने अपने सिरो पर बटमालाएँ (मुरेठा, पगडी ?) बाँध रखी थी। सभी ने कसकर कच्छे बाँध रखे थे। सभी क्रोध से लाल और भयकर आँखोवाले थे। सभी विषधरो के समान विषम स्वभाववाले थे। सभी कलि-काल और यम की तरह आचरण करनेवाले थे। सभी नारायण के समान शरीरवाले थे। सभी सुमेरु पर्वत की तरह भारी और धैर्यवाले थे। सभी सिंह के पराक्रम के समान श्रेष्ठ थे। सभी शत्रु-बलसमूह के

सयल वि खलबलकुल-कालभूय ॥
सयल वि थिर-थोर-कठोर हत्थ ।
सयल वि रणभर-कड्ढण-समत्थ ॥
सयल वि सिरिरामालिगियग ।
सयल वि पयभर सारिय तुरग ॥

घत्ता—अप्फोडिउ सत्थेहिं तेहिं सव्वेहिं पुणु ओरालिउ ।
णिय जीविउ कालहो हत्थि वइरिहिं णाइ णिहालिउ ॥१०॥

ओसारिय सयल वि सइ णिविट्ठ ।
[1]अक्खाडइ हरिहलहर पइट्ठ ॥
ते विण्णिवि धवल अधवलदेह ।
ण सोहिय सावण-सरय-मेह ॥
णं अजणपव्वय हिमगिरिंद ।
ण वइवस-महिस महामइद ॥
ण जउणा गगाणइ-पवाह ।
ण लक्खण-राम पलबबाह ॥
ण इदणील-रविकतकूड ।
ण विसहर-तक्खय-सखचूड ॥
ण असिय-पक्खु सिय-पक्ख आय ।
त पुणु (सोहिय ?) पडिवारा ते जि भाय ॥
कदोट्ट कमलकूडाणुमाण ।
जणलोयणालि चुविज्जमाण ॥
चल्लते चल्लइ सयलभूमि ।
थक्कते थक्कइ तेहिं विहि मि ॥

लिए काल के समान थे, सभी स्थिर स्थूल और कठोर हाथवाले थे, सभी युद्ध का भार खीचने मे समर्थ थे। सभी लक्ष्मी रूपी रमणी के द्वारा आलिगित-शरीर थे। सभी अपने पदभार से अश्वो को हटाने (सचालित करने) वाले थे।

घत्ता— शत्रुओ ने उन सबके द्वारा शस्त्रो को आहत तथा गर्जित अपने जीवन को काल के हाथ मे स्थित के समान देखा। ॥१०॥

हटाए गये वे सब स्वय बैठ गये। हरि और हलधर ने अखाडे मे प्रवेश किया। धवल और श्याम शरीरवाले वे दोनो ऐसे प्रतीत होते थे, मानो सावन और शरद के मेघ शोभित हो, मानो अजनगिरि और हिमगिरि हो, मानो यममहिष और महासिह हो, मानो यमुना और गगा के प्रवाह हो, मानो लम्बे बाहुवाले राम-लक्ष्मण हो, मानो नीलमणि और सूर्यकान्त मणियो के शिखर हो, मानो तक्षक और शखचूड महानाग हो, मानो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष आये हो और प्रतिदिन दोनो शोभित हो। वे दोनो नीलकमलो और कमलो के ढेर के समान थे, जिन्हे जनो के नेत्ररूप भ्रमर चूम रहे थे। उनके चलने पर धरती हिल जाती थी, उन के ठहरने पर वह भी ठहर जाती थी।

---

१. अ—अक्खालइ।

घत्ता—जेत्तहे परिसक्कइ कण्हु जहि यलएउ यलुद्धरउ।
तेत्तहे तणुतेए होउ रगु वि कालउ पण्डुरउ ॥११॥

वप्पुब्भट दुद्धर एत्तहे वि।
उट्ठिय मुट्ठिय चाणूर वे वि ॥
ण णिग्गय दिग्गय गिल्लगड ।
ण सासहो कसहो वाहुदड ॥
अप्फोडिउ सरहसु सावलेउ ।
रणु मग्गिउ वग्गिउ ण किउ खेउ ॥
जसतण्हहो कण्हहो एक्कु मुक्कु ।
उद्दामहो रामहो अवरु ढुक्कु ॥
सुभयकरु हउ करफत्तरीहि ।
णीसरणेहि करणेहि भामरीहि ॥
कर-छोडेहि गाहेहि पीडणेहि ।
अवरेहि अणेयहि कीडणेहि ॥
ताव दव्वार सकरिसणेण ।
वेहो वि उदरु दुद्दरिसेण ॥
खर-णहर-भयकर-पहरणेण ।
ण वारणु वारणवारणेण ॥

घत्ता—हेलए जि समाहउ सीसि मुट्ठिपहारें मुट्ठियउ ।
किउ मासहो पोट्टलु सव्वु जममुहे पडिउ ण उट्ठियउ ॥१२॥

चाणूरें चिंतिउ तइ उवाउ ।
वद्धव्वउ अच्छउ सो जिणाउ ॥
वोल्लति ताम णहे देवियाउ ।
कहि तणउ जुज्झु कहि तण(उ) उवाउ ॥

घत्ता—जहाँ कृष्ण जाते और वल से उद्धत वलदेव जाते, वहाँ पर उनके शरीर के तेज से रग भी काले का सफेद और सफेद का काला हो जाता ॥११॥

यहाँ दर्प से उद्धत और दुर्धर मुष्टिक और चाणूर दोनो इस प्रकार उठे, मानो आर्द्र गडस्थलवाले दिग्गज निकले हो, मानो शासक कस के वाहुदण्ड हो। कृष्ण ने आस्फालन किया और हर्ष तथा अहकार के साथ युद्ध माँगा, और विना किसी विलम्ब के वह गरजे। यश के लोभी कृष्ण के लिए एक मल्ल छोडा गया तथा दूसरा उद्दाम वलभद्र के पास पहुँचा। वलराम ने कैंची निकालना, दाँव लेना, चक्कर खाना, हाथ से चोटें मारना, पकडना, पीडना आदि क्रियाओ तथा दूसरी अनेक क्रीडाओ के द्वारा, दुर्दर्शनीय तीव्र नखों के दुर्निवार भयकर प्रहार से पेट का भेदन कर दिया। जिस प्रकार सिंह हाथी को आहत कर देता है, उसी प्रकार—

घत्ता—सिर पर मुट्ठी के प्रहार से आहत कर मुष्टिक को खेल-खेल मे ढेर कर दिया, उसे मास की पोटली वना दिया, वह यम के मुँह मे जा पडा और फिर नही उठा ॥१२॥

उस समय चाणूर ने उपाय सोचा कि उस श्रेष्ठ का वध करना चाहिए। इतने मे आकाश मे देवियाँ वोलती हैं—कहाँ का युद्ध, कहाँ का उपाय, कहाँ की मथुरा और कहाँ का राज्य ? इतने

कहिं तणय महुर कहिं तणउ रज्जु ।
एत्तिए कालेण ण किउ कज्जु ॥
उट्ठु णंदगोट्ठि अवइण्णु विट्ठु ।
जिह पूयण चूरिय णिहउ रिट्ठु ॥
जिह बुक्कणु सदणु वर-तुरगु ।
दरिसिउ जमलज्जुण-रुक्ख-भगु ॥
गिरि धरिउ णायसेज्जहिं णिसण्णु ।
धणु णामिउ पूरिउ [1]पचजण्णु ॥
अहि णत्थिउ मत्थिउ भद्दहत्थि ।
[2]एत्तिए वि कसहो बुद्धि णत्थि ॥
चाणूर ताम णारायणेण ।
आयामिउ असुर-परायणेण ॥

घत्ता—विउणारउ करिवि सरीरु रिउ जम-पट्टणे पट्ठाविउ ।
उच्चाइवि कसहो णाइ णिय-पयाउ दरिसाविउ ॥१३॥

तो तेण वि कड्ढिउ मडलग्गु ।
आलाण-खभु ण गयेण भग्गु ॥
ण दरिसिउ काले कालपासु ।
ण जलहरण विज्जुल-विलासु ॥
णारायणु आहउ असिवरेण ।
ण मदरु वेढिउ विसहरेण ॥
तउ अमउ णाइ थिउ बलिवि खग्गु ।
दामोयर-रोमग्गु वि ण भग्गु ॥
जीवजसवल्लहु राजहसु ।
अच्छोडिउ चिउरह लेवि कसु ॥

समय मे उपाय नही किया ? नन्दगोठ मे वह विष्णु उत्पन्न हो गया। जिस प्रकार उसने पूतना को चूर-चूर किया, रिष्ट नामक दैत्य का नाश किया, जिस प्रकार उसने कौए, रथ और श्रेष्ठ अश्व को नष्ट किया, तथा यमलार्जुन वृक्ष का विनाश दिखाया, पहाड को उठाया, नागशैया पर बैठा, धनुष चढाया और शख को फूंका, साँप को नाथा और भद्र हस्ति को मथा। इतने पर भी कस को बुद्धि नही आयी। इसी बीच तब तक असुरो को पराजित करनेवाले नारायण ने चाणूर को घुमा दिया।

घत्ता—शरीर को निष्प्राण करके उसे यमनगर मे प्रेषित कर दिया, मानो कस के [प्रताप] को उठाकर उन्होने अपना प्रताप दिखाया ॥१३॥

तब कस ने भी अपनी तलवार निकाल ली, मानो हाथी ने आलान-खम्भ उखाड लिया हो, मानो काल ने कालपाश का प्रदर्शन किया हो, मानो मेघ-समूह ने विद्युत्-विलास किया हो। उसने असिवर से नारायण को आहत किया, मानो विषधरो ने मदराचल को घेर लिया। उस अवसर पर खड्ग अविकार भाव से मुडकर स्थित हो गया, श्रीकृष्ण के बाल का अग्रभाग भी

---

१ अ—पचण्णु। २. अ—एत्तियहमि।

पेक्खतहं सयलहं णरवराहं ।
सीमतहं मतिहं किंकराहं ॥
पउरहो पट्टणहो महायणासु ।
सविमाणहो णहयले सुरयणासु ॥
चिरु देवइ जायइ जेत्तवार ।
अप्फोडिउ णरवइ तेत्तवार ॥

घत्ता—ज जेहउ दिण्णउ आसि त तेहउ जि समावडइ ।
कि वइयए कोद्दवधण्णे सालिकणहसु णिव्वडइ ॥१४॥

सो कण्हु कस-कट्टण करेवि ।
थिउ सग्गसु गयवरु तरु धरेवि ॥
सफरिसणु सेलिय-खभहत्थु ।
किउ वइरिसेण्णु सयलु वि णिरत्थु ॥
हक्कारिउ णरवइ उग्गसेणु ।
तहो महुर समप्पइ कामधेणु ॥
अप्पणु पुणु गउ देवइहें पासु ।
सभासिउ सयलु साहवासु ॥
कोक्काविय णद-जसोय आय ।
अवरोप्परु कुसलाकुसलि जाय ॥
तहिं काले सुकेए ण किउ खेउ ।
णियसुय परिणाविउ वासुएउ ॥
विज्जाहरणामे सच्चहाम ।
एत्तहिं रेवइ रामाहिराम ॥
हलहरहो दिण्ण णिय माउलेण ।
रोहिणि भायरेण अणाउलेण ॥

बाका नही हुआ। राजश्रेष्ठ और जीवजसा के प्रिय कस को बालो से पकडकर कृष्ण ने पछाड दिया। समस्त नरवरो, सामतो, मन्त्रियो और अनुचरो के देखते-देखते, पौर नगर के महाजनो और आकाशतल मे विमानसहित सुरजनो के देखते देखते नारायण ने कस को उतनी ही बार पछाडा, जितनी बार कस ने देवकी के पुत्रो को पहले पछाडा था ।

घत्ता—जो [पूर्व मे] जिस प्रकार दिया हुआ है, वह वैसा ही आ पडता है। क्या कोदो के बोने पर उसके फलस्वरूप शालिधान के कण उत्पन्न हो सकते हैं ॥१४॥

कस का कर्तनकर, वृक्ष लेकर, तथा जिनके हाथ मे पत्थर का खँभा है, ऐसे श्रीकृष्ण गजवर पर बैठ गए। उन्होंने समस्त शत्रुसेना को निरस्त्र कर दिया। उन्होंने राजा उग्रसेन को बुलाया, उन्हें कामधेनु के समान मथुरा नगरी सौंप दी। वह स्वय देवकी के पास गये। सभी साथ रहने वालो से सभाषण किया। बुलाए गये नन्द और यशोदा आये। एक-दूसरे से कुशलवार्ता हुई। उस अवसर पर सुकेतु ने जरा भी देर नही की और विद्याधर ने वासुदेव से सत्यभामा नाम की अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इधर रमणियो मे सुन्दर रेवती, बलराम को उनके ससुर और रोहिणी के भाई ने बिना किसी आकुलता के प्रदान कर दी ।

घत्ता—करे रेवइ धरिय बलेण सच्चहाम णारायणेण ।
थिव रज्जु सय भुज्जत सउरीपुरे मह्हु परियणेण ॥

इय रिट्ठणेमिचरिए, धवलइयासिय-सयभूएवकए,
चाणूर-कस-कालियमहृण-णामेण
छट्ठो सग्गो ॥६॥

घत्ता—बलराम ने हाथ से रेवती को ग्रहण किया और नारायण ने सत्यभामा को। इस प्रकार वे दोनो अपने परिजनो के साथ शौरीपुर मे स्वय राज्य का भोग करते हुए रहने लगे।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव कवि द्वारा कृत अरिष्टनेमिचरित मे
चाणूर, कस और कालियमथन नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

सत्तमो सग्गो

विणिवाइए कंसे दूसह दुक्ख परव्वसए।
जरसंघहो गपि धाहाविउ जीवजसए ॥छ॥
जीवजसा कंस-विओय हय।
जणणहों जरसंघहो पास गय॥
दुक्खाउर दुम्मण दुम्मणिय।
बहुलंसु जलोल्लिय-लोयणिय॥
विणिवद्ध वेणी वद्धामरिस।
कर पल्लव-छाइय थणकलस॥
हयसोह वि सोहइ रूववइ।
णियगइ-णोवाचिय-हंसगइ॥
णहकिरण करालिय-सयल दिस।
मुहयंद-पाय-पंडुरिय णिस॥
कररुहदह-दप्पण-दिट्ठमुह।
मुहकमलो हामिय अंबुरुह॥
अंबुरुह-समप्पह-णयणजुय।
णव कोमल-कुसुम-दामभुय॥
ण णवतरु अहिणव-साहुलिय।
करपल्लव णह-कुसुमावलिय॥

कंस के धराशायी होने पर असह्य दुःख के वशीभूत होकर जीवजसा जरासंघ के पास जाकर विलाप करने लगी। कंस से वियुक्त जीवजसा पिता जरासंघ के पास गयी। दुःख से आतुर, उदास, दुर्मन, उद्विग्न, प्रचुर आंसुओं के जल से गीली आँखोंवाली, वेणी बाँधे हुए, क्रोध से भरी हुई, कर-पल्लवों से स्तन-कलशों को ढँकती हुई रूपवती जीवजसा आहत शोभा होकर भी शोभित थी। उसने अपनी चाल से हंस की गति को फीका कर दिया था। उसके नख की किरणों से सभी दिशाएँ आलोकित थीं। मुखरूपी चन्द्रमा की किरणों से निशा धवलित हो रही थी। नखों के सरोवर रूपी दर्पण में अपना मुख देखती हुई, मुखकमल से कमलों को पराजित करनेवाली, कमल की प्रभा के समान नेत्रोंवाली, नये कोमल फूलों की माला के समान बाहुओं-वाली वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो अभिनव शाखाओं वाला नव तरु हो; जो करपल्लव के नखों की कुसुमावलि वाला था।

घत्ता—परित्तायहि ताय महुराहिवेण मरतएण।
हउ एह अवत्थ पाविय पइ जीवतएण ॥१॥

मगहाहिवेण तहे वाइयउ।
कहि केण कंस विणिवाइउ ॥
कहि केण कयतु णिहालिउ।
कें सुरवइ सग्गहो टालियउ ॥
उप्पायउ जमहो केण मरणु।
किउ केण महोरय-विसजरणु ॥
कें पक्ख समुक्खय खगवइहे।
अवहरिउ केण हरि भगवइहे ॥
णिय-वइयरु ताए तासु कहिउ।
पर-जणण-विणासु एक्कु रहिउ ॥
तो दिण्ण समरभर कधरेण।
पालिय तिय-खड-मडियधरेण ॥
पहिलारउ पुत्तु [1]कालजवणु।
पट्ठवियससाहणु मणगमणु ॥
अब्भिडिउ गपि सो जायवह।
जिह अहिणव वणदव पायवह ॥

घत्ता—पहिलारए जुज्झे रगरउ कहि मि ण माइयउ।
ण वलइ गिलेवि सुरह पडीवउ धाइयउ ॥२॥

दोण्ह वि बलाह किय कलयलाह।

घत्ता—वह पिता से बोली—"हे तात! रक्षा कीजिए। मथुरा के राजा के मरने से तुम्हारे जीते जी मेरी यह अवस्था हुई ॥१॥

मगधराज ने उससे कहा—"बताओ, किसने कस को मारा? कहो, किसने यम को देखा? किसने इन्द्र को स्वर्ग से हटा दिया? किसने यम की मृत्यु की? महोरग के विष का नाश किसने किया? गरुड के पखो को किसने उखाडा? भगवती के सिंह का अपहरण किसने किया?" तब उस जीवजसा ने अपना वृतान्त उससे कहा कि एक केवल पिता का विनाश बाकी रहा है। तब जिसने युद्ध के भार मे अपना कंधा दिया है तथा तीन खण्ड धरती का परिपालन किया है ऐसे जरासघ ने मन की भाँति गमन करनेवाले कालयवन नामक पहले पुत्र को सेना के साथ भेजा। वह जाकर यादवो से भिड गया, उसी प्रकार जिस प्रकार अभिनव दावानल वृक्षो से।

घत्ता—पहले युद्ध मे युद्ध की धूल कही नही समा सकी, मानो सेनाओ को निगलकर वह उल्टी देवो के ऊपर दौडी ॥२॥

जो कलकल कर रही हैं, अत्यधिक मत्सर से भरी हुई हैं, जो देवो से मिली हुई हैं, जो

---

१ अ, ब और ज प्रतियो में 'कालदसणु' पाठ है, आचार्य जिनसेन के हरिवशपुराण मे 'कालयवन' पाठ है।

वहु मच्छराह मिलियामगाह ॥
सियचामराहं घुयधयवडाहं।
वप्पुब्भडाहं वाहियरहाह ॥
गुरुविग्गहाहं सुभयकराह।
पहरणकराह तुट्ठच्छराह ॥
माभिट्ठु जुज्झु कत्थवि णिरुद्धु।
कत्थवि णरेहिं पहिरउ सरेहिं ॥
कत्थवि हएहिं खग्गा हएहिं।
णिउ सामि सालु थाणतरालु ॥
कत्थवि सिवाए भडु लइउ पाए।
सिरु णवेवि थाइ पिउ पियए णाइ ॥
भडभडेहिं परोप्परु ताम हय सत्तारह वासर जाम गय ॥

घत्ता—रणु करेप्पिणु रउद्द परवलु जिणिवि ण सक्किय‍उ।
गउ वलेवि कुमारु हत्थि व सीहहो सकियउ ॥३॥

जो कालजवणु घरु आइयउ।
विद्दाणउ कहवि ण घाइयउ ॥
वलु-परवलु-पहरणु जज्जरिउ।
ण फणिउलु गरुड-घायभरिउ ॥
ण गिरिसमूह-कुलिसाहयउ।
ण हरिणजूहु हरिभय गयउ ॥
उप्पण्णु कोहु त पत्थिवहो।
भारहवरिसद्ध-णराहिवहो ॥
पट्ठवियइ सव्वइ साहणाइ।

श्वेत चामरोवाली हैं, जिनके ध्वजपट उड रहे हैं, जो दर्प से उद्भट हैं, जिन्होने रथो का सचालन किया है, जो विशाल आकारवाले हैं, जो अत्यन्त भयकर हैं, जिनके हाथो मे अस्त्र हैं, जिन्होंने अप्सराओ को सन्तुष्ट किया है, ऐसी दोनो सेनाओं मे कहीं युद्ध प्रारम्भ हो गया, और कही पथ रुद्ध हो गया। कही पर योद्धाओ ने तीरो से प्रहार किया, कही पर खड्गो से आहत किया। अश्वो के द्वारा स्वामीश्रेष्ठ दूसरे के स्थान पर ले जाया गया। कही पर सियारन ने योद्धा को पैर से ले लिया, सिर झुकाकर वह ऐसी हो गयी, जैसे प्रिया प्रिय के सामने स्थित हो। योद्धाओ से योद्धा आपस में तब तक लडते रहे, जब तक सत्तरह दिन बीत गये।

घत्ता—भयकर युद्ध करके भी कुमार शत्रुसेना को नही जीत सका। जिस प्रकार हाथी सिंह से शकित होकर चल देता है, उसी प्रकार कुमार वापस चला गया ॥३॥

एकदम म्लान, और किसी प्रकार मारा भर नही गया वह कालयवन शत्रुसैन्य से जर्जर, जैसे गरुड के आघातो से भरा हुआ नागकुल हो, जैसे वज्र से आहत पवत हो, जैसे सिंह से भयभीत मृगों का झुण्ड हो, जब घर आया तो भारतवर्ष का अर्ध-चक्रवर्ती राजा जरासध आग-बबूला हो उठा। उसने समस्त सेनाएँ भेज दी, जिनमे नाना प्रकार के वाहन चलाए जा रहे थे

णाणाविह वाहिय-वाहणाइं ॥
गुरुगयवट्टद्धु य धयवडइ ।
अप्फालिय-तूर-रव-उक्कडइ ॥
आऊरियइ जलयर-सघडइ ।
विहडप्फइ उब्भड-भडघडइ ॥
णिक्खोह-भरिय-सफड भडाइ ।
उम्मग्गलग्ग हयगयरहाइ ॥

घत्ता—जरसंधहो सेण्ण सरहसु कहिं मि ण माइयउ ।
लंघेवि पायारु दिसिअवदिसिहिं धाइयउ ॥४॥

एक्कोयरु भायरु णिययसमु ।
दुद्धर रणभर-धुर-धरणखमु ॥
आसण्ण-मरण-भय-वज्जियउ ।
सेणावइ करिवि विसज्जियउ ॥
अवराइउ धाइउ अतुल वलु ।
ण मेह गयणे मेल्लतु जलु ॥
एत्तहे वि जणद्दणु सण्णिहिउ ।
दस-दसारुह जरकुमार सहिउ ॥
सव्वउ सीराउह-परियरियउ ।
अवरेहिं भडेहिं अलकरियउ ॥
उत्थरियइ पसरिय-कलयलइ ।
नारायण जरसंधहो वलइं ॥
पहरण-जज्जरिय-णहगणइ ।
कोवग्गि झुलुक्किय-सुरगणइ ॥
उद्धाइय धूलीधूसरइ ।
रुहिरोहारुणिय-वसुधरइ ॥

प्रखरपवन से पताकाएँ उड रही थी, जो वजाए गए नगाडो के शब्द से उत्कट थी। शखो का समूह फूंक दिया गया, उद्भट भटो के समूह विकल हो उठे, गंभीर योद्धा क्षोभ से भर उठे। अश्व, गज और रथ उन्मार्ग से जा लगे।

घत्ता—हर्ष से भरी हुई जरासंध की सेना कही भी नहीं समा सकी। परकोटो को लांघकर वह दिशाओ-विदिशाओ मे फैल गयी ॥४॥

अपने ही सहोदर (भाई) को जरासंध ने सेनापति वनाकर भेजा, जो दुर्धर युद्ध-भार को उठाने मे सक्षम, और आसन्नमृत्यु के भय से दूर था। अतुलवल अपराजित इस तरह दौडा, मानो आकाश मे जल छोडता हुआ मेघ हो। यहाँ भी श्रीकृष्ण दस दशार्ह और जरत्कुमार के साथ तैयार हुए, वलभद्र के साथ, तथा दूसरे योद्धाओ से अलकृत। जिनमे कलकल बढ रहा है, श्रीकृष्ण और जरासंध की ऐसी सेनाएँ उछल पडी। हथियारो से आकाश के आँगन को जर्जर कर देनेवाली, क्रोध की ज्वाला से देवागनाओ को झुलसाती हुई, और धूल मे धूसरित वे रक्त की धाराओ से धरती को रँगती हुई दौड चली।

घत्ता—रउ णहि महिवट्टे रुहिरु, ण जाणहु कवणु गुणु।
अकुलीण जे उट्ठु होइ कुलीण तें खलु वि पुणु ॥५॥

[1]उट्ठतसूराइ वज्जत तूराइ।
जुज्झत सेण्णाइ रणवहु णिसण्णाइ ॥
जय लच्छि लुद्धाइ उहयकुल-सुद्धाइ।
पहरण वि हत्थाइ जयसिरि-समत्थाइ ॥
कोवग्गि वित्ताइ रुहिरेहि सित्ताइ।
हुम्मति दुरियाइ णिवडति तुरियाइ ॥
भज्जति सयडाइ जुज्झति सुरडाइ।
णिग्गति अताइ भज्जति गत्ताइं ॥
लोहति चिंधाइ तुट्ट ति छत्ताइ।
वेयाल-भूयाइ विसयाण भूयाइ ॥
अण्णोण्ण-दुव्वार मुक्केक्क हुकार।
पहरति पाइक्क णिग्गति मत्थक्क ॥
जज्जरिय उरवाह विक्खिण्ण सण्णाह।

घत्ता—कत्थइ गय-जुज्झ दसण-कसग्गि समुट्ठियउ।
दीसइ घणमज्झे विज्जु-विलासु णाइ ठिउ ॥६॥

दारुणह रणह एव गयइ।
छच्चालीस जाव तिण्णि-सयइ ॥

घत्ता—आकाश में धूल और धरती के मार्ग मे रुधिर (उठ रहा है) न जाने क्या बात है कि अकुलीन (धरती मे नही होनेवाला, अप्रतिष्ठित] जब उठता है तो वह कुलीन (धरती मे लीन, प्रतिष्ठित] हो जाता है, दुष्ट भी ऐसा ही होता है।

शूर उठते हैं, नगाडे बजते हैं, रण-वधू जिनके निकट हैं, ऐसी सेनाएँ युद्ध करती हैं जो विजयरूपी लक्ष्मी की लोभी उभय कुलो से शुद्ध हैं, जो हाथ मे हथियार लिये हुए हैं, विजयलक्ष्मी प्राप्त करने मे समर्थ हैं, क्रोध की ज्वाला से प्रदीप्त हैं, रक्त से सिंचित हैं। जो तेजी से प्रहार करती हैं। अश्व गिरते हैं, शकट नष्ट होते हैं, सुभट लडते हैं, आँतें निकलती हैं, शरीर भग्न होते हैं, ध्वजा-चिह्न लोटपोट होते हैं, छत्र टूटते हैं। वैताल और भूत बैलो पर सवार हैं, जो एक दूसरे के लिए दुर्निवार हैं, एक दूसरे पर हुँकार करते हैं। पैदल सैनिक आक्रमण करते हैं, मस्तक गिरते हैं, वक्ष-स्थल और बाहु जर्जर होते हैं, कवच बिखरते हैं।

घत्ता—कही गज के युद्ध में दाँतो से आग उठती है जो ऐसी मालूम होती है जैसे मेघो के बीच विद्युत्-विलास हो ॥६॥

इस प्रकार भयकर युद्ध करते हुए तीन सौ छियालीस दिन बीत गए। जिसका हाथ धनुष

---

१ "उट्ठत सूराइ। वज्जत तूराइ। जुज्झत सेण्णइ। रण वहु णिसण्णइ।" 'ज' प्रति मे ये पंक्तियाँ नहीं हैं।

तो ससर,सरासण पसर करु ।
जरसंध बंधु दुद्धर-रिस-धरु ॥
परिभमइ महाहवे एक्करहु ।
थिउ रासिहे णाइ कूरगहु ॥
उच्छरइ फुरइ पहरणइं जहिं ।
कुंभोट-थट्ट फुट्ट ति तहिं ॥
रहु कडयडति मोडति धय ।
छत्तइ पडति विहडति हय ।
णियवलु सभासेवि एक्कु जणु ।
सामरिसु ससदणु ससरु सधणु ॥
तहो जरकुमारु तहिं अंति भिडिउ ।
ण गयहो गइंदु समावडिउ ॥
ते वेवि वलुद्धर-दुद्धरिस ।
पारद्ध जुज्झ बद्धामरिस ॥

घत्ता—विंधतेहिं तेहिं वाणणिरंतरु गयणु किउ ।
सभुवगमु सव्वु उप्परि ण पायाल थिउ ॥७॥

तो [1]रणमुहि दिण्ण-महाहवेण ।
जरसंधहो वंधुर वंधवेण ॥
हयगयवररहु सयखंडु णिउ ।
धय पाडिउ सारहि विहलु किउ ॥
कह कहवि कुमारु ण घाइयउ ।
तहिं अवसरि सच्चइ धाइयउ ॥

और तीर पर फैला हुआ है तथा जो दुर्धर्ष ईर्ष्या धारण करनेवाला है, जरासंध का वह भाई अकेला ही रथ पर बैठकर उस महायुद्ध मे परिभ्रमण करता है। वह ऐसा लगता है मानो कोई क्रूर ग्रह स्थित हो। जहाँ वह हथियारो को उछालता और चमकाता है, वहाँ हाथियो की घटाएँ नष्ट हो जाती हैं, रथ कडकडा कर टूट जाते हैं और ध्वज मुड जाते हैं, छत्र गिर पडते हैं, अश्व विघटित हो जाते हैं। तब अपनी सेना से संभाषण कर, अमर्ष से भरा हुआ जरत्कुमार रथ, तीर और धनुष के साथ अकेला वहाँ अन्तत भिड जाता है, जैसे महागज पर महागज आ पडा हो। वे दोनो ही बल से उद्धत और दुर्धर्ष हैं। अमर्ष को बाँधनेवाले उसने युद्ध प्रारम्भ किया।

घत्ता—वेधते हुए उसने आकाश को लगातार आच्छादित कर दिया, जिससे सभी भुजंगम पाताल से निकल ऊपर आ गये मानो पाताल ऊपर स्थित हो गया हो ॥७॥

तब युद्ध प्रारम्भ होने पर महायुद्ध करनेवाले जरासंध के बंधु-बांधव ने अश्व, गज और श्रेष्ठ रथ के सौ टुकडे कर दिये। ध्वज फाड दिया, और सारथि को विफल कर दिया। किसी प्रकार केवल कुमार को आहत नही किया। उस अवसर पर सात्यिकी दौडा। अत्यन्त असहनीय वे दोनों आपस मे भिड गये। प्रवर रथो को उन्होंने प्रेरित किया। वे दौड पडे। शिनिसुत का धनुप

---

1. रणउहि।

ते भिडिय परोप्परु दुव्विसह ।
सचोइय, धाइय, पवररह ॥
सिणिसुअ सरासणु ताडियउ ।
सुरकरिहि विसाणु ण पाडियउ ॥
धणु लइउ अवर सरु विन्छियउ ।
वसुएए ताम पडिच्छियउ ॥
तुम्हेहिं आसि सगाम कियउ ।
रोहिणि पाणिग्गहे को ण जिउ ॥
एवहि सो जि हउ सो जि तुहु रहु ।
सो धणुद्धरु सो जि वाण-णिवहु ॥

घत्ता—पच्चारइ जाम ताम सिलीमुहेंहि लइउ ।
पाडिउ सण्णाहु को ण णट्ठु लोहत्थियउ ॥८॥

हक्कारिउ ताम हलाउहेण ।
वलएए जयसिरि-लुद्धएण ॥
छुडु रहु वाहि वाहि सवडमुहु ।
पउ जइ ण देहि पच्छाउहुत्त ॥
पच्चारइ जाम-ताम भिडियउ ।
ण गिरिंदहि दवग्गि समावडिउ ॥
वावरति विण्णिवि वारुणेंहि ।
मोहणत्थण-आकरिसणेंहि ॥
णहयल जज्जरिउ वसुधर वि ।
विहिए कुविए एक्कु सज्झु णवि ॥
विहि एक्कु वि ण एक्कु अक्कमइ ।
विहि एक्कु वि ण एक्कहों सरइ ॥
विहिए कुविए एक्कु ण खमइ ।

ताडित होकर ऐसे गिरा मानो ऐरावत का दाँत गिरा हो। उसने दूसरा धनुष ले लिया और उसपर तीर चढ़ाया। तब वसुदेव ने उसे फटकारा—"तुम लोगो के द्वारा सग्राम किया जा चुका है। रोहिणी के पाणिग्रहण में कौन नही जीता गया? इस समय वही मैं हूँ और वही तुम, और वही रथ हैं, वही धनुर्धारी और वही बाण-समूह हैं।

घत्ता—इस प्रकार जबतक वसुदेव ने ललकारा, तब तक उन्हें तीरो से ढक दिया गया। कवच गिर पडा, लोहार्थी (लोभ और लोहे का अर्थी) कौन नाश को प्राप्त नहीं होता ॥८॥

तब विजय-लक्ष्मी के लोभी हलधर श्री बलराम "शीघ्र रथ सामने हाँको, यदि तुम मुख पीछे कर पग नही देते हो, इस प्रकार जब तक ललकारते हैं तब तक वह सामने भिड गया। मानो गिरीन्द्र पर दावाग्नि गिर पडी हो। वे दोनों वारण मोहनास्त्र और आकर्षण-अस्त्र से व्यापार करने लगे। आकाशतल और धरती दोनो क्षत-विक्षत हो उठे। दोनो के कुपित होने पर एक भी साध्य नहीं था। दोनो मे एक भी आक्रमण नही कर सका। दोनो मे से एक भी नही हटता।

विहिए कुविए एक्कु ण अक्कमइ ॥
तहिं काले अणतें अतरिउ ।
अरिउर सिर खुरुप्पें कप्परिउ ॥

घत्ता—अवरेहिं मि सरेहिं कमकरसिरह णट्ठियइं ।
कलहसें णाइ कोमलकमलइ खुड्डियइ ॥९॥

जरसधवंधु [1]परिणट्ठु रणे ।
[2]आसक जाय जायवहं मणे ॥
लहु णासहो मतिलोउ चवइ ।
आयण्णइ ण जाम चक्कवइ ॥
जइ कइविपत्तु, तो कोविणवि ।
दसरुह णउ हरि-हलधर वि णवि ॥
णवि णदु ण गोट्ठु ण गोवियणु ।
पइसरहु गपि परिविउल वणु ॥
त सव्वहु हियवए वयणु थिउ ।
अयक्कए पुरणिग्गमणु किउ ॥
अट्ठारहकुल-कोडिहि सहिया ।
सिरि कुलहर हलहर णिव्विहिया ॥
एत्तहे वि सहोयर-सोयहउ ।
जरसध णराहिउ मुच्छ गउ ॥
कहकहवि लद्धु चेयणु चविउ ।
जें भाइ महारउ णिद्दलियउ ॥

आक्रमण नही करता। उस समय श्रीकृष्ण ने व्यवधान डाला। उन्होने खुरपे से शत्रु का उर और सिर काट लिया।

घत्ता—और भी दूसरे वीरो से पैर, हाथ और सिर नष्ट हो गये, जैसे कलहस के द्वारा कोमल कमल काट डाले गये हो ॥९॥

जब जरासघ का भाई युद्ध मे मारा गया, तो यादवो के मन मे आशका उत्पन्न हो गयी। मन्त्रिसमूह कहता है—"जल्दी भाग चलो, जब तक चक्रवर्ती नही सुनता। कभी वह यहाँ आ गया तो कोई नही है। न दशार्ह, न हरि-हलधर ही, न नन्द, न गोठ और न गोपीजन। अत्यन्त विपुल (बडे) वनमे प्रवेश करो।" यह बात सबके दिल मे जम गयी। शीघ्र ही उन्होंने नगर से कूच कर दिया तथा श्रीकृष्ण और बलभद्र अठारह कुल करोड लोगो के साथ वन मे छिप गये। यहाँ भी भाई के शोक से आहत राजा जरासघ मूर्छित हो गया। किसी प्रकार कठिनाई से उसने चेतना प्राप्त की और कहा—"जिसने मेरे भाई को मारा है—

---

१ अ—परिसुट्ठु। २ 'आसक जाय जायवह मणे। लहु णासहो मतिलोउ चवइ। आयण्णइ ण जाम चक्कवइ।' ये पक्तियाँ 'अ' प्रति मे नही हैं।

घत्ता—तं विरसु रसंतु जइ ण णेमि जमसासणहो।
तो कल्लए देमि उप्परि झप हुआसणहो ॥१०॥

पहु पइज्ज करिप्पिणु णीसरउ।
चउरंगाणीयालंकरियउ ॥
गहरक्खसकलिकालोवमहं।
वह-बारह-लक्ख-वीसगयहं ॥
हय जुत्तहं धुव्वमाण-धयहं।
तेत्तियइं लक्खइं संदणहं ॥
पहरणभरियहं रिउमद्दणहं।
वह-वोत्तिय-सहस-णराहिवहं ॥
मंडलपरिवालहं पत्थिवहं।
अवरु पमाणु कें बुज्झियउ ॥
अग्गिउ पेसिउ अप्पाण-समु।
लहुयारउ णदणु कालयमु ॥
मग्गाणु लग्गु अरिपुंगमहं।
ण खगवइ पवरभुअंगमहं ॥

घत्ता—तहिं तेहि काले पडिउवयारभायगयउ।
सेण्णहं वि चाले मिलियउ हरिकुलदेवयउ ॥११॥

बहुइंधणकूडागार किउ।
सचारिम महिहर णाइ थिउ ॥
चहु दिसु चीयउ पज्जालियउ।
धूमाउल-जालामालियउ ॥
अण्णण्णरूव सचारिणिउ।
महिला वुड्ढत्तण-धारिणिउ ॥

घत्ता—विरस चिल्लाते हुए उसे यदि मैंने यम के शासन मे नही पहुँचाया, तो कल ही, मैं आग पर कूद जाऊँगा। ॥१०॥

राजा जरासंध प्रतिज्ञा करके निकला। वह चतुरग सेना से अलकृत था। उसके पास नौ करोड प्रवर अश्व थे जो ग्रह, राक्षस और कलि के समान थे। बारह लाख बीस हाथी थे। उतने ही घोड़ो से जुते हुए, प्रकंपित ध्वजवाले, प्रहरणो से भरे हुए रथ थे। शत्रुओ का मर्दन करने वाले, मण्डलो का परिपालन करनेवाले तीन हजार दो सौ दस राजा थे। दूसरे प्रमाण को कौन समझ सका है? जरासंध ने अपने समान छोटे पुत्र कालयम को आगे भेजा जो शत्रुश्रेष्ठ के मार्ग के पीछे लग गया, मानो गरुड-प्रवर नागो के पीछे लग गया हो।

घत्ता—वहाँ उस समय, सैन्य के चलने पर प्रत्युपकार की भावना वाली हरिवंश की देवियाँ मिली ॥११॥

उन देवियो ने प्रचुर ईंधन के कूटागार (ढेर) बनाये, जैसे वे चलते-फिरते पहाड हो। चिताएँ चारो दिशाओ मे प्रज्वलित हो उठी जो धुएँ की ज्वालाओ से युक्त थी। दूसरे-दूसरे रूप बनाने वाली उन महिलाओ ने वृद्ध महिलाओ के रूप धारण किये। वे वहाँ रोने लगीं—"हे

रोवति ताउ तहिं देवियउ ।
देवइ जसोय हा कहिं गयउ ॥
हा हरि-हलहर-दसारुहहो ।
हा णंद-णंद हा गोवुहहो ॥]
हा जायवलोयहो जाउ खउ ।
हा वइय मणोरह होतु तउ ॥
तो कालजमेण पउच्छियउ ।
ताउ वि कहति उम्मुच्छियउ ॥
जरसधु कोवि तियसहु वलिउ ।
उक्खधें उप्परि उच्चलियउ ॥

घत्ता—तहो तणेण भएण जालामालाभीसण हो ।
मुअ जायवसव्व उप्परि चढिउ हुआसणहो ॥१२॥

त णिसुणिवि वइरिसेण्णु वलिउ ।
गउ जायवबलु अपडिक्खलिउ ॥
तो गिरि उज्जेंत णिहालियउ ।
कल-कोइल कलरव-मालियउ ॥
अलिउल-झकार-मणोहरउ ।
णं वसुह-वारगणहो सेहरउ ॥
जोव्वणविलासु णं रेवयहो ।
चूडामणि ण वणदेवयहो ॥
ण पुण्णपुज णारायणहो ।
ण सो जि मोक्खु सावयजणहो ॥
पासहि चउ महिहर चउ सरिउ ।
चउ णयरिउ सुट्ठु मणोहरिउ ॥
अप्पुणु मज्झारिउ जगुत्तमउ ।

देवकी ! यशोदा तुम कहाँ गयी ! हाय हरि हलधर और दशार्हों का, हाय नन्द और ग्वालो का अन्त हो गया। हाय ! यादव लोगो का क्षय हो गया। हे देव ! तुम्हारे मनोरथ पूरे हो।" तब कालयम ने पूछा, और वे उससे यह कहती हुई मूर्छित हो गयी कि देवताओ से भी बलवान् जरासघ नाम का व्यक्ति आक्रमण द्वारा ऊपर चढ आया है।

घत्ता—उसके भय के कारण सभी यादव ज्वालमालाओ से भयकर आग पर चढ़कर मर गये। ॥१२॥

यह सुनकर शत्रुसेना लौट गयी, और यादवो की सेना विना किसी प्रतिरोध के चली गयी। उस समय उसने गिरनार पर्वत देखा जो सुन्दर कोयलो के कलरव से घिरा हुआ था, भ्रमरकुल की झकार से ऐसा सुन्दर था मानो धरती रूपी वारागना का शेखर हो, मानो नर्मदा का यौवन विलास हो, मानो वनदेवी का चूडामणि हो, मानो नारायण का पुण्यपुज हो, मानो श्रावकजनो का वही मोक्ष हो। उसके पास मे चार पर्वत और चार नदियाँ हैं और अत्यन्त सुन्दर चार

ण मेरु सुपरिट्ठिउ पचमउ ॥

घत्ता--हरिवस पवित्तु तहो पासिउ गिरि सहसगुणु ।
जहि होसइ णेमि जहि सिज्झेसइ सो जि पुणु ॥१३॥

जो गज्जतमत्त-मायग-तुग-दतग्ग णिहस्सणुच्छलिय, मणिसिलापडण पेल्लणुव्वीमहाभराक्कत कूरकसणाहि-मुक्क फुक्कार-कोव-जालग्गि-जालमालाउलीयकयामूल-विउल-सिहरो ।
जो करि-करड-तड विणिग्गत-मयसरिसोत्ततिम्मत कुजसघाय खोल्ल-चिखिल्ल-तल्ल-लोलत-कोलउलवक्कदाढा[1]हय ससिकतमणिमयूहपज्झरत णइ-णिवह-भरियकुहरो ॥
जो गधवहविहूय ककेल्लि-मल्लिय-तिल्लय-वउल-चपय-पियगु-पुण्णाय-णाय-परिगलियकुसुम-परिमलमिलत लोलालिवलय-झकार-मणहरुद्देसचल्लिय गधव्वमिहुण-पारद्धगेयकम्मो ।
जो [2]अवयच्छियछुहामुह-महागुहगाहगहिय गयगत्तवियुत्त-णाहलणित्त णीसस-वस समुच्छलिय-धवल मुत्ताहलावलि चुण्णवण्ण-दसण-पहिट्ठ-अच्छत-अच्छराघलिहियचित्तयम्मो ॥छ॥

जहि चूय चदण-तमाल-ताल-वदण ।
असोय-णाय-चपया-पियगुपरिजायया ।
जहि चरति सवरा, वराह-वग्घ-वाणरा ।
गया समुद्धसोंडया, सदीवि-सीह गडया ।
जहि चयोर-चायया, मराल-चक्कवायवा ।

नगरियाँ हैं। वह स्वय श्रेष्ठता से बीच मे स्थित है, मानो पाँचवाँ मेरु स्थित हो।

घत्ता—हरिवश पवित्र है, उसकी तुलना मे पहाड हजार गुना पवित्र है जहाँ नेमिनाथ उत्पन्न होंगे और वही वह सिद्धि प्राप्त करेंगे ॥१३॥

गरजते हुए मतवाले हाथियों के ऊँचे दन्ताग्रो के सघर्षण से उछली हुई मणिशिलाओ के पतन की प्रेरणा से धरती के महाभार से आक्रान्त, क्रूर काले नागो के द्वारा छोडी गई फुफकारो के क्रोध की ज्वालाग्नि की ज्वालामालाओ से जिसके मूल और शिखर विस्तीर्ण हैं,

हाथियों की सूडो के तट मे निकलती हुई मदजल रूपी नदी के स्रोतो से गीले हुए, कुजो के समूहो के कीचड भरे हुए तलभागो मे खेलते हुए सूकर समूह के वक्रदन्तो से आहत चन्द्रकान्त मणियो की किरणो से झरती हुई नदियो के समूह से जिसके कुहर भरे हुए हैं,

पवन से आदोलित अशोक, मल्लिका (जुही), तिलक, बकुल, चपक, प्रियगु, पुन्नाग(पाटल), नागकेशर वृक्षो से गिरे हुए, पुष्पपरागो के मिले हुए, चचल भ्रमर समूहो की झकारों से मनोहर प्रदेशो मे चलते हुए गधर्वों के जोडो ने जिसमे गीत कर्म प्रारम्भ किया है,

दिखाई देनेवाली सुधामुख वाली महान् गुहाओ के ग्राहो (मगरो) के द्वारा गृहीत, गज-शरीरो से अलग हुई तथा भीलो द्वारा प्रेरित विश्वासो के कारण उछलते हुए धवल मुक्ता-वलियो के चूर्ण रगो को देखकर प्रसन्न हुई, विद्यमान अप्सराओं के द्वारा जहाँ चित्रकर्म लिखा जा रहा है,

जहाँ आम्र, चदन, तमाल, ताल, लाल चन्दन, अशोक, नागकेशर, चम्पा, प्रियगु और पारिजात वृक्ष हैं, जहाँ साभर चरते हैं, जहाँ वराह, बाघ और वानर हैं, सूड उठाए हुए हाथी,

---

१ अ—मियक व सरिस-समूह-मणि-पज्झरत । ब—दादा मियक व ससि-समूह-मणि पज्झरत ।
२. अ—अवयत्थिय । ब—अखयच्छिय ।

जहिँ चचरीयया, पफुल्ल-फुल्ल-लीलया।
जहिँ च मत्त कोइला, पुलिंद-भिल्ल-णाहला।
जहिँ च कम्मदारणा, णहो वरंति वारणा।

घत्ता—त गिरु उज्जेंतु मुएवि ससयणु ससाहणउ।
गउ पकयणाहु णाइं समुद्दहो पाहुणउ ॥१४॥

दूरहो जि समुद्दु णिहालियउ।
भीयर-करि-मयर-करालियउ ॥
भगुर-तरग-रगतजलु।
पुव्वावहिभरि-उव्वरिय थलु ॥
फेणकल्लोल-वलय मुहलु।
वरवेलालिंगय गयणयलु ॥
गभीरघोस घुम्माविय जउ।
परिवालिय-ससि पडिवण्ण सउ ॥
अवयण्णिय-वडवाणल-वइरु।
गिव्वाण-पहाण पीय-मइरु ॥
णीसारिय कालकूडकलुसु।
हरि हरिय सिरी-मणिणिप्फरसु ॥
परिरक्खिय-सयल-सुर-सरणु।
सरि सोत्ताणियपाणिय भरणु ॥
आगास-पमाणु दिसा-सरिसु।
जलहर-सधाय-वाहिय-वरिसु ॥

चीता सहित सिंह और गेडे हैं, जहाँ चकोर चातक हैं, जहाँ मराल और चकवे हैं, जहाँ खिले हुए फूलो से खेलनेवाले भ्रमर हैं, जहाँ मतवाली कोयलें हैं, पुलिंद, भील और नाहल जाति के हैं, अपने कर्म मे भीषण गज आकाश का वरण करते हैं,

घत्ता—ऐसे ऊर्जयत पर्वत को छोडकर, स्वजनों और सेना के साथ, श्रीकृष्ण मानो समुद्र के अतिथि बनकर गये ॥१४॥

उन्होंने दूर से समुद्र देखा, जो भयकर हाथियो और मगरो से विकराल था, जिसका जल वक्र लहरो से तरगित हो रहा था, जिसकी पूर्वी सीमा मे जल भरा हुआ था और उसके बाद की भूमि जल रहित थी जो फेनयुक्त तरगो के समूह से मुखर था, जो अपने श्रेष्ठ किनारो से आकाश को छू रहा था, जो गम्भीर घोष द्वारा विश्व मे अपनी जय घुमा रहा था, जिसने अपने मे चन्द्रमा के सैंकडो प्रतिबिम्बो का परिपालन किया है, जिसने बडवानल की शत्रुता की उपेक्षा की है, जिसमे प्रमुख देव मदिरा का पान करनेवाले हैं, जिससे कूटकाल विष का कलश निकला है, विष्णु ने जिससे लक्ष्मी और कठोर मणि का हरण किया है, जिसने शरणागत समस्त देवो की रक्षा की है, जिसमे नदियो के स्रोतो से जल का भरण होता रहता है, जो आकाश के प्रमाण वाला है और दिशाओ के समान है, जिससे मेघ-समूह वर्षा धारण करते हैं,

घत्ता—कल्लोलामएण हरि-आगम-कियायरेण।
सइ भूरिभुएण णाइं पणच्चियउ सायरेण ॥१५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयभूएवकए जायवबल-णिग्गमो
णाम णायव्वो सत्तमो सग्गो ॥७॥

घत्ता—जो कल्लोलमय है और जिसने श्रीकृष्ण के आगमन का आदर किया है, ऐसा समुद्र अपनी प्रचुर भुजाओं से स्वय नाच उठा ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव द्वारा विरचित 'अरिष्टनेमिचरित' मे
यादव-बलनिर्गमन नाम का सातवाँ सर्ग जानना चाहिए ॥१७॥

अट्ठमो सग्गो

लइय लच्छिय कोत्थुह उद्दालिउ ।
एव काइं करेसइ आइयउ[1] ॥
एण भएण जलोह-रउद्दें ।
दिण्ण थत्ति ण हरिहो समुद्दें ॥छ॥
तहिं हरिवल थिय दब्भासणेण ।
सुरु गउ तहिं इदहो पेसणेण ॥
सपाइउ सरह सुगहिय मुद्दु ।
बोल्लाविउ तेण महासमुद्दु ॥
अहो सायर सुदरसुरवरेण ।
हउ पेसिउ पासु पुरवरेण ॥
महुमहहो कएव्वउ पइ णिवासु ।
पंचासरहिउ जोयण सहासु ॥
सुरु गउ तसु एम भणेवि ज जि ।
मणि-रयणइ अग्घु लएवि त जि ॥
गउ जलणिहि पासु जणद्दणासु ।
चाणूरमल्ल-बल मद्दणासु ॥
लइ दिण्ण थत्ति करि पट्टणाइ ।
हउ सरियउ बारह जोजणाइ ॥
गउ णरवइ एम भणेवि जाम ।
पट्ठाविउ सुरिदें धणउ ताम ॥

पहले लक्ष्मी ले ली, फिर मणि छीन लिया, अब आकर (श्रीकृष्ण) क्या करेंगे ? इस डर से जलसमूह से रौद्र समुद्र ने हरि के लिए स्थान (स्थिति) दे दिया। वहाँ हरि और बलभद्र दर्भासन पर स्थित हो गये। इन्द्र के आदेश से रूप (मुद्रा) धारण कर एक देव वेग से वहाँ आया। उसने महासमुद्र से कहा—"हे सागर ! सुन्दर इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हे श्रीकृष्ण के निवास की रचना करनी चाहिए जो पचास कम एक हजार योजनो वाला हो।" जैसे ही उससे यह कहकर देव गया, वैसे ही मणिरत्न और अर्घ लेकर समुद्र चाणूर मल्ल के बल का मर्दन करनेवाले श्रीकृष्ण के पास गया [और बोला]—"लो, मैं स्थान देता हूँ। नगर की रचना कीजिए। मैं बारह योजन (पीछे) हट गया।" जब नरपति (श्रीकृष्ण) से यह कहकर समुद्र चला गया, तो देवेन्द्र ने कुबेर को भेजा।

---

१ अ—आलिउ।

घत्ता—जाहि कुवेर करहि महु पेसण फेडइ हरि-हलहर-दब्भासणु।
करि पट्टणु वारवइ सुणामे वारह जोजणाइ आयामे ॥१॥

वित्थारें णवजोयणाइ।
करि एक्कहि पच वि पट्टणाइ ॥
वासविहि कउ सविदसेणु।
दाहिणयहि महुरहि उग्गसेणु ॥
पच्छिमियहि सउरिदसारजेट्ठु।
उत्तरेणावासउ णदगोट्ठु ॥
वारवइ-मज्झि तहि पउमणाहु।
अच्छउ सबधु परियणसणाहु ॥
हरिभवणु करिज्जहि भुवणसारु।
अच्छारह भूमि-[1]सहासवारु ॥
आहुट्ठ-दिवस पुर धरिय ताम।
धण-धण्ण-सुवण्ण-वड्ढुत्त जाम ॥
रहु देज्जहि पहरण-भरियगत्तु।
गारुडधउ-चामर सेय छत्तु ॥
सिक्खिउ सुरिंदेण जाइ जेम।
अवराइ मि ताइ कियइ तेम ॥

घत्ता—सग्गहु पासिउ सक्काएसें, सउरी-पुरवरु रइउ विसेसें।
जहि तइलोय-मगलगारउ, उप्पज्जेसइ-णेमिभडारउ ॥२॥

पइसारिउ पुरे केसव-सुवधु।

घत्ता—"हे कुवेर! तुम जाओ, मेरे आदेश का पालन करो और हरि और वलभद्र का दर्भासन तुडवाओ, द्वारावती नाम का नगर वनाओ जो लम्बाई मे वारह योजन का हो ॥१॥

जो विस्तार मे नौ योजन हो ऐसे एक जगह पाँच नगर वनाओ। पूर्व दिशा मे सविदसेन का निवास वनाओ, दक्षिण दिशा मे मथुरा के उग्रसेन का, पश्चिम दिशा मे शौर्यपुर के दशार्हों मे सवसे जेठे समुद्रविजय का और उत्तर दिशा मे नदगोठ का निवास वनाओ। वहाँ द्वारावती के वीच मे पद्मनाथ (श्रीकृष्ण) के लिए हरिभवन वनाओ जो भुवन मे श्रेष्ठ हो, जिसमे अठारह भूमियाँ और एक हजार द्वार हो। साढे तीन दिन तक तव तक नगर की रचना करो जव तक वह धनधान्य और स्वर्ण से परिपूर्ण न हो जाए। हथियारो से भरा हुआ रथ दे।" कुवेर ने गरुडध्वज, चामर और श्वेत छत्र उसी प्रकार दिये, जिस प्रकार देवेन्द्र ने उसे सिखाया था। दूसरी चीजें भी उसने उसी प्रकार वनायी।

घत्ता—देवेन्द्र के आदेश से स्वर्ग को स्पर्श करनेवाला शौर्यपुर विशेष रूप से वनाया गया *जहाँ त्रिलोक का कल्याण करनेवाले आदरणीय नेमिनाथ उत्पन्न होंगे* ॥२॥

नारायण और सुवधु को नगर मे प्रवेश कराया गया। अभिषेक किया गया और पट्ट वाँधा

---

१ अ—स वारु वारु।

अहिंसिचिउ पुणु किउ पट्टबधु ॥
गउ धणउ सुरिंदहो पासु जाम ।
सिवएवि-गब्भहो सोहणं ताम ॥
आयउ सत्तारह देवयाउ ।
दससयपरिवारिय अवयराउ ॥
दसदिसि देवयउ सवाहणाउ ।
विविहद्धय-विविह-पसाहणाउ ॥
उवलय-दप्पहरण-पहरणाउ ।
सियचामर-आयव-[1]वारणाउ ॥
विज्जुलकुमारि वरबुद्धिकित्ति ।
जयलच्छि लज्जसिरि[2] परमतित्ति ॥
सव्वाउ सव्वालंकरियाउ ।
मंजीर-राव-झंकारियाउ ॥
सिवएवि-पासु पढुक्कयाउ ।
णिय-णिय-णियोलणि चक्खियाउ ॥

घत्ता—चंदकंतपह-धवलियधामे जामिणि[3]जामे पच्छिम जाए ।
पल्लंकोवरि णिद्दगयाए सोलह सिविणइ दिट्ठइ सिवाए ॥३॥

गउ-गोवइ हरि-सिरि-दामजुयलु ।
मयलछणु-दिणमणि-मीण-जुयलु ॥
सकलसु-कमलायर-कमलयाणु ।
सायर-सीहासणु-सुरविमाणु ॥
अहिहेलणु-मणिगण-जलणजालु ।

गया। जब तक कुबेर देवेन्द्र के पास गया, तब तक शिवादेवी के गर्भ का संशोधन करने के लिए सत्तरह देवियाँ आयीं। एक हजार देवियों से घिरी हुई वे अवतरित हुईं। वाहनों सहित देवियाँ दसों दिशाओं में थी। विविध ध्वजाओं और प्रसाधनों वाली उन देवियों ने दर्प का हरण करने वाले अपने शस्त्र निकाल रखे थे। वे श्वेत चमर और छत्र धारण किये हुए थीं। विद्युत्कुमारी, श्रेष्ठा, बुद्धिकीर्ति, जयश्री, लज्जा, लक्ष्मी, परमतृप्ति सभी देवियाँ सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत थीं। अपने नूपुरों की झंकार करती हुई वे शिवादेवी के पास पहुँचीं। वे अपने-अपने काम में निपुण थीं।

घत्ता—चन्द्रकान्त मणियों की प्रभा से धवलित प्रासाद में रात्रि का अन्तिम प्रहर बीतने पर पलंग पर सोती हुई शिवादेवी ने सोलह स्वप्न देखे ॥३॥

गज, गोपति (बैल), सिंह, लक्ष्मी, दो मालाएँ, चन्द्रमा, सूर्य, दो मत्स्य, कलश सहित कमलों का समूह, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, नागलोक, मणिसमूह और अग्नि।

---

1 अ—आयवधारणाउ। 2. ब—लच्छसिरि। 3 अ—जामहं।

विपगमुहे वसाराहसामिसालु ॥
बोल्लाविउ सविणउ पट्ठिउ तामु ।
पाडिक्क सयल मगल णिवासु ॥
सुणु णाह णिहालिउ पढमु हत्थि ।
पडिवियरू जासु जगे कोवि णत्थि ॥
सुहलक्खणु भद्दु मयविसाणु ।
मयसित्तगत्तु जुत्तपमाणु ॥
पुणु रिसरगोलिर-पुच्छ सढु ।
पुणु दीहणहर-णगूल सीहु ।
तरुपल्लव लोल ललतजीहु ॥

घत्ता—कमलालय कमलमालणयणी कमलचलणु कमलुज्जलवयणी ।
कमलपाणि सुरकरि अहिसारी दिट्ठलच्छि जगमगलकारी ॥४॥

पुणु गुरुगधुद्धर दामजुयलु ।
परिमल परिमिलिय चलालि मुहलु ॥
पुणु छण-ससिलछण रहिउ काउ ।
ताहिउ भामूसिउ भुवणभाउ ॥
पुणु दससयकिरण-करालियगु ।
तमतिमिरणियर-यारणपयगु ॥
पुणु मीणजुयलु [1]कलसद्दयाइ ।
ण सोक्खणिहाण-[2]महरिद्धयाइ ॥
पुणु सरवरु कमलाकमलरम्मु ।
पुणु जलणिहि जलयरजीवजम्मु ॥

सवेरा होने पर उसने विनयपूर्वक, दशार्हों के स्वामीश्रेष्ठ (समुद्रविजय) से कहा—"प्रत्येक (अथवा प्रत्यक्ष) समस्त मगल के निवास हे नाथ, सुनिये। पहले मैंने हाथी देखा जिसके समान दूसरा हाथी जग मे नही है, शुभ लक्षणो वाला भद्रहस्ति, जिसका शरीर मद से सिक्त है और जो उचित प्रमाण वाला है। फिर, ईर्ष्या से अपनी पूंछ हिलाता हुआ वैल, लम्बे नखो और पूंछवाला सिंह जिसकी चचल जीभ वृक्ष के पत्तो की तरह लपलपा रही है।

घत्ता—फिर, मैंने लक्ष्मी को देखा, सरोवर जिसका घर है, जिसके नेत्र कमलमाला के समान हैं, जो कमल के समान उज्ज्वल मुखवाली है, जिसके कमल के समान हाथ हैं, जो ऐरावत हाथी पर विहार करती है और जो विश्व का कल्याण करनेवाली है ॥४॥

फिर प्रचुरगध से उत्कट मालायुगल जो सौरभ से मिले हुए चचल भ्रमरो से मुखर है। फिर लांछन से रहित शरीरवाला चन्द्रमा जिसकी प्रभा से भुवन प्रभासित है। फिर, हजारो किरणो से आलिंगित शरीर और तम-तिमिर के समूह को नष्ट करनेवाला सूर्य। फिर मीनयुगल, फिर कमलो से आच्छादित सुख के घर दो कलश, फिर लक्ष्मी और कमलो से रमणीय सरोवर, फिर जलचर जीवो से सुन्दर समुद्र, फिर सिंहासन, फिर विमान, फिर प्रचुर भवनोवाला नागलोक,

---

१ अ, ब—कमल सद्दयाइ। २ अ, ब—महद्धयाइ।

पुणु केसरिविट्टर पुणु विमाणु।
पुणु भूरिभवणु भोइवथाणु॥
पुणु रयणरासि पुणु जलणजालु।
फलु अक्खइ जायव-सामिसालु॥
सुउ होसइ हरिकुल-गयण चदु।
गय-दसणें गुरुवदाहिवंदु॥

घत्ता—सुरवर-पुगउ गोवइ दसणे अतुलपरक्कमु-सीहणिरक्खणें।
तिहुअण-सिरिवइ सिरिहि पहावें तित्थ पदरिसि दाम-दक्खावें॥५॥

कतिल्लु [1]णियच्छिए छुद्दहोरि।
तेयालउ दिट्ठिए रविसरीरि॥
झसजुयल-णिहालणि सोक्खथाणु।
[2]घड-सघड-दसणे णवणिहाणु॥
लक्खणघरु दिट्ठें सरवरेण।
केवल विहूइ रयणायरेण॥
तइलोक्क-सामिय सीहासणेण।
अहमिंदु विमाणहो दसणेण॥
[3]भोइंदभवणि दिट्ठिए तिणाणि।
मणिरयणपुजे गुण-रयण-खाणि॥
सिहिवसणे लोय-णिरुघणाइ।
णिद्दहइ सयल-कम्मेंधणाइ॥
इह सोलह सिविणइ जे पढति।
तये मगल-सिउ-कल्लाण सति॥

फिर रत्नराशि, फिर अग्नि-ज्वाला। यादवो के स्वामीश्रेष्ठ समुद्रविजय फल कहते हैं—"तुम्हारा पुत्र हरिवश रूपी आकाश का चन्द्रमा होगा, हाथी देखने से श्रेष्ठ देवो से वन्दनीय होगा।

घत्ता—बैल देखने से सुरवरो मे श्रेष्ठ होगा, सिंह को देखने से अतुल पराक्रमी होगा, लक्ष्मी के प्रभाव से त्रिभुवन की लक्ष्मी का अधिपति होगा, मालाओ के देखने से तीर्थ का प्रदर्शन करनेवाला होगा॥५॥

चन्द्रमा के देखने से कान्तिमय, सूर्य देखने से तेजस्वी, मीनयुगल देखने से सुख का स्थान, कलश-समूह देखने से नवनिधान, सरोवर को देखने से लक्षणो को धारण करनेवाला, समुद्र को देखने से केवलज्ञान के ऐश्वर्य से युक्त, सिंहासन देखने से त्रिलोक का स्वामी, विमान को देखने से अहमिंद्र, नागलोक देखने से तीन ज्ञानवाला, मणिरत्नो के समूह से गुणो और रत्नो की खान, आग को देखने से लोक का अवरोध करनेवाला, समस्त कर्म रूपी ईधन को जलानेवाला तुम्हारे पुत्र होगा। इन सोलह सपनो को जो पढते हैं उसका मगल, शिव और कल्याण होगा। लोक के

---

१. अ—णिअच्छिए। २. अ—घडसघउ। ३ अ—भुवइद।

ओयरिउ जयतहो लोयणाहु ।
थिउ सिव सरीरि-तणुतणु-सणाहु ॥

घत्ता—पुण्णपवित्तु कति सपुण्णउ इदणीलमणिपुजसवण्णउ ।
थिउ सिवएविहे देहब्भतरि अलि जिह पउमिणी पकयकेसरि ॥६॥

बारहकोडिउपचासलक्ख ।
वसुहार पडिय घरे तीसपक्ख ॥
[1]सपुण्णे मासे जिणु जणिउ धण्णु ।
सावण्णसियछट्ठिहि सामवण्णु ॥
चित्तरिक्खे सुहलग्ग जाए ।
णिम्मलदिणे णिम्मलगयणभाए ॥
उप्पण्णु भडारउ सिवहे जाव ।
भावण वितर-जोइसह ताव ॥
सखुब्भइ देवागमण ताव ।
भावणवितर-जोइसह जाव ॥
कबुयपडह-झुणि-सहोणाय ।
जयघट सद्दु सेसामराह ।
ण गउ पोक्कउ हरिपुरसुग्गह ॥
सहसणयहो आसणकप जाउ ।
सावय-सेस सुरेहि आउ ॥
अइरावउ कचणगिरि-समाणु ।
थिउ जबुदीव परिप्पमाणु ॥

स्वामी स्वर्गलोक से अवतरित हुए और सूक्ष्म शरीर से युक्त वे शिवा के शरीर मे स्थित हुए।

घत्ता—पुण्य से पवित्र, कान्ति से सम्पूर्ण, इन्द्रनीलमणि के समान रगवाले वह शिवादेवी के गर्भ मे उसी प्रकार स्थित हो गये, जैसे कमलिनी और कमल के पराग मे भ्रमर ॥६॥

बारह करोड पचास लाख रत्नो की वर्षा तीस पखवाडो तक हुई। पूरे माह होने पर वह धन्य जिन (शिशु रूप मे) उत्पन्न हुए। श्रावण शुक्ला छठी के दिन चित्रा नक्षत्र मे शुभ लग्न आने पर निर्मल आकाशभागवाले निर्मल दिन मे आदरणीय जिन शिवादेवी के गर्भ से जिस समय उत्पन्न हुए उस समय भवनवासी, व्यतर और ज्योतिष देवो का आगमन क्षुब्ध हो उठा। शेष देवो द्वारा शख, पटह (नगाडो) की ध्वनि, सिहनाद जयघटा शब्द होने लगा। वह ध्वनि हरि के सम्मुख तक पहुँची। तब सहस्रनयन (इन्द्र) का आसन काँप उठा। वह श्रावको और शेष देवो के साथ आया। स्वर्णगिरि के समान और जम्बूद्वीप के समान आकार वाला

---

१ सपुण्णे मासे जिणु जणिउ धण्णु ।
सावण्ण सिय छट्ठिए सामवण्णु ॥
चित्तरिक्खे सुह लग्ग जाए ।
णिम्मलदिणे णिम्मलगयण भाए ॥
ये पक्तियाँ 'अ' प्रति में नही हैं।

बत्तीस सोंडु बत्तीस वयणु ॥
चउसट्ठिकण्ण चउसट्ठिणयण ।
एक्केकए मुहे अट्ठट्ठदंत ॥
कलहोयवलय-उवसोह देंति ।

घत्ता—दंति दंति सरो सरि-सरि पत्तणि स वि कमलिणिवत्तिणि ।
कमले कमले बत्तीस जे पत्तइ पत्ते-पत्ते णट्टाइ जि तेत्तइ ॥७॥

तहि ताहे मायावि गइंदे ।
चलकण्णताल-तुलियालिविंदे ॥
मय-णइ-[1]पक्खालिय-गंडवासे ।
सिक्कारमारु-[2]आऊरियासे ॥
आरूढपुरंदर-भावगहिउ ।
सत्तावीसच्छर-कोडि-सहिउ ॥
सचल्ल चउव्विह सुरणिकाय ।
ण सुण्णउ सग्ग करेवि आय ॥
णाणालंकार-विहूसियंग ।
णाणा मउडंकिय-उत्तमंग ॥
णाणाधय णाणाजाणरिद्ध ।
णाणायवत्त चामरसमिद्ध ॥
णाणा देवंगावरियगत्त ।
वारवइ खणद्धद्धेण पत्त ॥
जिणु लइउ दुकूल-पडंतरेण ।
चूडामणि णाइ पुरंदरेण ॥

ऐरावत हाथी स्थित हो गया। उसकी बत्तीस सूंडो पर बत्तीस मुख थे, चौसठ कान और चौसठ नेत्र थे। एक-एक मुंह मे आठ-आठ दांत थे। स्वर्णवलय उसकी शोभा बढाते थे।

घत्ता—एक-एक दांत पर सरोवर थे। सरोवर मे कमलपत्र थे जो कमलनियो से युक्त थे। प्रत्येक कमल मे बत्तीस दल और प्रत्येक दल मे उतनी ही नर्तकियाँ थी ॥७॥

उस समय वहाँ पर चंचल कुण्डल के समान भ्रमरसमूह मँडरा रहा था। जिसके गंडस्थल के पार्श्वभाग मदधारा से प्रक्षालित है, जिसने सीत्कार के जलकणो से दिशाओ को आपूरित कर दिया है, ऐसे उस मायावी गजराज पर भावो से अभिभूत देवेन्द्र, सत्ताईस करोड अप्सराओ के साथ आरूढ हो गया। चारो प्रकार के देवसमूह चले, मानो वे स्वर्ग को शून्य बनाकर आये हो। जिनके अंग नाना प्रकार के अलंकारो से विभूषित हैं, जिन्होने अपने सिरो पर नाना प्रकार के मुकुट धारण कर रखे हैं, जो नाना ध्वजो और नाना यानो से समृद्ध हैं, जिन्होंने नाना दिव्य वस्त्रो से अपने शरीर आच्छादित कर रखे हैं, ऐसे देव आधे से आधे क्षण मे द्वारावती जा पहुँचे। देवेन्द्र ने शिशु जिनेन्द्र को दुकूलवस्त्र के भीतर ले लिया, जैसे चूडामणि ले लिया हो।

---

१ ब—पक्खासिय। २ अ—आओरियासे।

घत्ता—मेरु-मत्थए ठविउ भडारउ तेयपिंड तमतिमिरणिवारउ।
खीरसमुद्दु होइ णिज्झाइउ ण अहिसेयपडायउ साइउ ॥८॥

अप्फालिउ ण्हवणारम्भतूरु।
पडिसद्दें तिहुयण-भवणतूरु॥
धुमदुम-धुमंति दुदुहियमालु।
घुमघुमघुमंत घुमुक्कतालु॥
[1]झिंझिकरंति सिक्करि-णिणाउ।
सिमि-सिमि सिमंत झल्लरि-णिणाउ॥
सलसलसलंत कंसालजुयलु।
गुगुजमाणु गुंजवु मुहलु॥
कणकणकणंत-कणयणइ-कोसु।
डमडम डमंतउ मरुवणि-णिघोसु॥
दों-दों दों दोंत मउद णवुवु।
थ्रां-थ्रां परिछित्त-हुड्डुक्क-सद्दु॥
टंटंत-टिवलु डडंत डुक्कु।
भमंत-भभु ढवंत ढक्कु॥
अवराइ मि ह्यइं विचित्ताइं।
अहिसेयकाले वाइत्ताइं॥

घत्ता—कोडाकोडि तूररव-भरियउ जइ तिवायवलएण ण धरियउ।
तो सहसुद्धमाए सव्वोयरु तिहुअण जंतु आसि सयसक्करु॥९॥

घत्ता—तमतिमिर का निवारण करनेवाले तेज शरीरवाले आदरणीय जिनदेव को सुमेरु पर्वत के मस्तिष्क पर स्थापित कर दिया गया। वे ऐसे लक्षित हुए मानो क्षीर समुद्र की भांति अभिषेक की पताका या ध्वजा हो ॥८॥

अभिषेक प्रारम्भ होने का नगाडा बजा दिया गया। उसकी प्रतिध्वनि से त्रिभुवन गूंज उठा। दुदुभि का शब्द दुम-दुम करता है, सिक्करी वाद्य का निनाद झिं झिं करता है, झल्लरि शब्द से सिमि-सिमि ध्वनित होता है, दोनो कसाल सल-सल करते हैं, शख गूं-गूं करता हुआ गूंजता है, कोश कण-कण करता हुआ कणकणाता है, मरुवणि का घोष डम-डम करता है। मृदग दो-दो-दोत शब्द करता है। हुड्डुक्क का शब्द थ्रा-थ्रा के रूप मे परिलक्षित है। तबला ट-ट करता है और डुक्क डडत करता है। भेरी भमत करता है, नगाडा ढ-ढ शब्द करता है। और भी दूसरे वाद्य अभिषेक के समय बजाए गये।

घत्ता—करोडो तूर्यों के शब्द से भरा हुआ, जिसके भीतर सबकुछ है ऐसा त्रिभुवन यदि त्रिवातवलय के द्वारा धारण नहीं किया जाता, तो शख की ऊंची आवाज के द्वारा सौ टुकडो मे होकर रहता ॥९॥

---

१ 'झिं झिं करति सिक्करि-णिणाउ।'
यह पक्ति 'अ' प्रति मे नही है।

अहिसेय-कलस हरिसियमणेंहि ।
उच्चाइय दससहसहिं जणेंहि ॥
सुरवइ-सिहि-वयवस-णिसियरेंहि ।
वरुणाणिल वसुवइ णीसरेंहि ॥
धरणिंदचंद-णामकिएँहि ।
मणिकुंडल-मउडालंकिएँहि ॥
अवरेंहि मि अवर महाविसाल ।
अट्ठट्ठजोयणब्भंतराल ॥
जोयणेक्केक्क-पमाणगीवकु ।
संचारिम खीरमहोअहीव ॥
अट्ठोत्तरकलस-सहास एव ।
उच्चाएवि ण्हवण करंत देव ॥
ससिकोडि-समप्पह-खीरधार ।
आमेल्लिय सव्वेंहि एक्कवार ॥
गिरिमेरुसिहर रेल्लंतु धाइ ।
संचारिम सायरवेलणाइ ॥

घत्ता--ण्हाइ णाहु ण्हावेइ पुरंदरु, उवहि अणिट्ठउ वियडउ मंदरु ।
सुरयण-खीरु वहंतु ण थक्कइ, तहिं अहिसेउ को वण्णिवि सक्कइ ॥१०॥

अहिसिंचिउ एम तिलोयणाहु ।
सक्कंदणु होएप्पिणु सहसबाहु ॥
सतेउरु सामरु सट्टहासु ।
उव्वेल्लइ अग्गइ जिणवरासु ॥
णच्चंतहो णयणावलि विहाइ ।

हर्षित मनवाले दस हजार देवो, इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर, वरुण, पवन, कुवेर, नरेश, धरणेन्द्र और चन्द्र के नाम से अंकित मणिकुंडलो और मुकुटो से अलकृत दूसरे देवो ने अभिषेक के कलश उठा लिये। दूसरे बडे बडे देव जो आठ-आठ योजन के अतराल से स्थित हैं, एक-एक योजन प्रमाण ग्रीवावाले है, क्षीर समुद्र से लाये गये (संचारित) एक हजार आठ कलश उठाकर अभिषेक करते हैं। सबके द्वारा करोड चन्द्रमाओ के समान प्रभावाली जल की धार एक साथ छोडी गयी, जो सुमेरु पर्वत के शिखरो को सराबोर करती हुई ऐसी प्रवाहित हो रही थी जैसे समुद्र का सचरणशील ज्वार हो।

घत्ता—प्रभु का अभिषेक होता है। इन्द्र अभिषेक करता है। समुद्र निःसीम है, पर्वत विशाल है। जहाँ देवसमूह जल प्रवाहित करते हुए नही थकता, वहाँ अभिषेक का वर्णन कौन कर सकता है॥१०॥

इस प्रकार त्रिलोकस्वामी (नेमिनाथ) का अभिषेक किया गया। हजार हाथोवाला होकर इन्द्र अन्तःपुर के देवो और अट्टहास के साथ जिनवर के आगे उछलने लगता है। नृत्य करते हुए उसकी नेत्रावली ऐसी शोभित होती है जैसे अर्चना के लिए नीलकमलो की माला रच दी

रइयच्चण-कुवलयमाल णाइ ॥
णच्चतहो णहमणि विप्फुरति ।
पज्जालिय णाइ पईव पति ॥
णच्चतए सरहसें अमरराए ।
णिवडइ तारायणु भूमिभाए ॥
आसीविस-विसहर-विस मुयति ।
पक्खुहिय महोवहि जए ण मति ॥
टलटलइ चलइ महिणिरवसेस ।
फुट्टति पडति गिरिपएस ॥
कड-कड वि कडत्ति ण मेरुभग्गु ।
टलटलिउ वि असेसु सग्गु ॥

घत्ता—एम णच्चिवि अग्गइ णेमिहे, थुइ आढत्त जगत्तयसामिहें ।
जिणवर-णिरुवम-गुण तुम्हारा, को सक्कई परिगणिवि भडारा ॥११॥

गुण गणे वि ण सक्कमि मदबुद्धि ।
जइ वोल्लमि तो णवि सद्दशुद्धि ॥
जइ [1]उवम वेमि तो जगि[2]जि णत्थि ।
तिहुअणहो ण [3]तूसइ भवपमथि ॥
अलिए पहु णवि [4]तूसति [5]आव ।
सतेंहि गुणेंहि वि ण थुइ ताव ॥
ण विसेसणु जेण विसेसु कोइ ।
असरिस-उवमेंहि ण कव्वु होइ ॥
तइलोयपियामह आरिसेंहि ।

गयी हो । नृत्य करते हुए इन्द्र के नखमणि इस प्रकार चमकते हैं जैसे दीपो की पक्ति जगमगा रही हो । देवराज के हर्षपूर्वक नृत्य करने पर ताराओ का समूह भूभाग पर गिर पडता है, आशीविष विषधर विष छोड देते हैं, समुद्र क्षुब्ध हो उठता है और विश्व मे नही समाता । टलमल करती हुई समूची धरती झुक जाती है । गिरि-प्रदेश गिरकर टूट जाते हैं, भग्न सुमेरु मानो कडकडा रहा हो । समूचा स्वर्ग भी (उस समय) चलायमान हो उठता ।

घत्ता—तीनो लोको के स्वामी नेमिनाथ के आगे इस प्रकार नृत्य करके इन्द्र ने स्तुति प्रारम्भ की—"हे आदरणीय जिनवर ! तुम्हारे अद्वितीय गुणो की गणना कौन कर सकता है ॥११॥

मैं मदबुद्धि आपके गुणो की गणना नही कर सकता । यदि बोलता हूँ तो शब्दशुद्धि नही है । यदि मैं उपमा देता हूँ तो जग मे ऐसी उपमा नही है । ससार का नाश करनेवाले ससार से सन्तुष्ट नही होते और जब स्वामी झूठ से प्रसन्न नही होते, तब विद्यमान गुणो के द्वारा भी स्तुति सम्भव नही है । ऐसा विशेषण भी नहीं है जिससे विशेष को बताया जा सके । असमान उपमाओ से काव्य की रचना नही होती । हे त्रिलोक पितामह ऋषि ! हम जैसे चिल्लानेवाले

---

१ ब—उउम । २ अ—णि । ३ अ—रुसहि । ४ अ—रूसति । ५ अ—साव ।

घत्ता—सो तइयलोयहो मंगलगारउ सुरगुरु-पुण्णपवित्तभडारउ ।
इंदियचोरगणहो आरूसेवि थिउ हरिवसु सव्व सभूसिवि ॥१३॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयभूएवकए
णेमिजम्माहिसेउ अट्ठमो सग्गो ॥८॥

घत्ता—तीनों लोकों का मगल करनेवाले वृहस्पति के पुण्यो से पवित्र, आदरणीय वे इन्द्रियरूपी चोरसमूह से रूठे हुए समस्त हरिवश की शोभा बढाते हुए स्थिर थे ॥१३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिचरित मे धवलया के आश्रित स्वयभूदेव कृत
नेमिजन्माभिषेक नामक आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥८॥

घत्ता— ण णारिरयणु वण्णुज्जल रूयोहामिय पहपसरु।
णारायणु कचणजडिउ अवसें होसइ महग्घयरु ॥१॥

णवजोव्वण-सोहग्ग-मयधए।
दप्पणवित्तियध-णिवद्धए ॥
घरि पइसतु ण जोइउ जइयरु।
झत्तिपलित्तु णाइ वइसाणरु ॥
जाम ण वुट्टहे[1] भग्गमडप्फरु।
ताव ण करमि किंपि कम्मतरु ॥
एम भणेवि सरोसुगउ तेत्तहे।
थिउ अत्थाणे जणद्दणु जेत्तहे ॥
अब्भत्थाणु करेवि अवग्गहेहिं।
उच्चासणे वइसारिउ सव्वेहिं ॥
वल-णारायणेंहिं पुणु पुच्छिउ।
गुरु एत्तडउ कालु कहिं अच्छिउ ॥
कहइ महारिसि हरिसु वहतउ।
आयउ कुडिल णयरहो होंतउ ॥
ज महिमडले सयले पसिद्धउ।
वहु-धणधण्ण-सुवण्ण-समिद्धउ ॥
तेत्यु भिप्फु णामेण पहाणउ।
णरवरिंद अमरिंद समाणउ ॥

घत्ता—धवलच्छि लच्छि तहो गेहिणि पुत्तु रुप्पि रुप्पिणी तणया।
णिहि रूवलवह लायण्णह गुणसोहग्गह पारगया ॥२॥

घत्ता—वह मानो रग से उज्ज्वल नारीरत्न थी, जिसने रूप से प्रभा के प्रसार को पराजित कर दिया था। नारायण (श्रीकृष्ण) रूपी स्वर्ण से विजडित वह अवश्य ही अत्यन्त मूल्यवान् (शोभा युक्त) होगी ॥१॥

नवयौवन और सौभाग्य से मदान्ध तथा दर्पण की चमक मे अपने ध्यान को लगानेवाली इस (सत्यभामा) ने घर मे प्रवेश करते हुए मुनिवर को नही देखा—[यह सोचकर) नारद आग की तरह भभक उठे—"जबतक मैं इस दुष्ट के घमण्ड को चूर-चूर नही कर दूंगा तबतक कोई दूसरा काम नही करूंगा।" यह विचार कर वह वहाँ गये जहाँ जनार्दन दरबार मे थे। शरीर-प्रमाण दूरी से वे उठ खडे हुए। सबने उन्हे ऊँचे आसन पर बैठाया। फिर बलभद्र और नारायण ने पूछा—"हे गुरु, आप इतने समय तक कहाँ थे?" महर्षि नारद ने हर्ष प्रकट करते हुए कहा—'उस कुण्डलपुर नगर से आया हूँ जो समस्त महीमण्डल मे प्रसिद्ध है। प्रचुर धन-धान्य और स्वर्ण से समृद्ध है। उसमे भीष्म नाम का प्रमुख राजा है। वह नरेश देवेन्द्र के समान है।

घत्ता—धवल आँखोवाली उसकी लक्ष्मी नाम की गृहिणी है। उससे रुक्मि पुत्र और रुक्मिणी पुत्री है। वह रूप-लावण्य और सौन्दर्य की निधि है तथा गुणो और सौभाग्य के पार पहुँच चुकी है ॥२॥

---

१ ज ब दुट्ठहो।

जाहि अगि परिवार-सहाए।
मुक्क पयाणउ वम्महराए ॥
लीलाकमलु-जुयल-चलणयलहि।
मणिरयणइ अगुलेहि सयलहि ॥
तोरणथभ उरूउद्दे सहि।
राउल पिहुल-णियव पएसहि ॥
तिवलि-तिपरहउ णाहिमंडले।
थण-अहिसेय-कलस वच्छयले ॥
'रत्तासोय करिल्लकरग्गहि।
भयणकुस णहदप्पणग्गहि ॥
कबुउकठि-वयणि कोइलकुलु।
णयणहि वाणजुयलु पिच्छाउलु ॥
भउहहि चावलट्ठि सचारिय।
सिरिहि सिहडि-सिखरि पइसारिय ॥
फिर परिणेवी कामहो वप्पें।
किउ आवासु तेण कवप्पें ॥

घत्ता—उवइट्ठ आसि सिसुवालहो ताव रिसिहि आएसु किउ।
जसु सोलह गोवि सहायइ होसइ सो रुप्पिणिहि पिउ ॥३॥

सो मइ कहिउ सव्वु णियवइयरु।
जहि अइमुत्तउ आइयउ जइवरु ॥
तहि उवएसु ताए फुडु लद्धउ।
हरि वरइत्तु वुत्तु मयरद्धउ ॥
तेहउ अवसरु होसइ कइयहु।

अपने परिवार की सहायता वाले राजा कामदेव ने उसके (रुक्मणी के) शरीर में डेरा डाल दिया है। दोनो चरणतलो मे नीलाकमल, समस्त अगुलियो मे मणिरत्न, जाँघों के प्रमाण मे तोरणस्तभ, नितम्ब-प्रदेशो मे विशाल राजकुल, नाभिमडल मे त्रिवलि रूपी तीन परिखाएँ (खाइयाँ), वक्षस्थल मे स्तनरूपी अभिषेक-कलश, हथेलियो की अगुलियो मे लाल अशोक, नख-रूपी दर्पण के अग्रभागो मे कामदेव का अकुश, कण्ठ मे शख, वाणी मे कोयलकुल, नेत्रो में पुंखो से व्याप्त बाणयुगल और भौहो मे धनुर्यष्टि सचारित कर दी गई है। मानो मयूर ने अपनी सम्पूर्ण शोभा का प्रसार पर्वत के शिखर पर किया हो। चूंकि कामदेव के पिता के द्वारा इसका परिणय किया जाएगा, इसलिए कामदेव ने उसके शरीर मे आवास कर लिया है।

घत्ता—वह शिशुपाल के लिए दे दी गई थी, परन्तु मुनियो ने आदेश दिया कि जिसकी सोलह हजार गोपियाँ सहायक हैं, वह (कृष्ण) रुक्मिणी का पति होगा ॥३॥

उस रुक्मिणी ने अपना सब वृत्तान्त मुझे बता दिया है कि जब अतिमुक्तक यतिवर आये थे, तब उस(रुक्मणी)ने उनसे उपदेश ग्रहण किया था। कामदेव हरिश्रेष्ठ कहे गए हैं—वह अवसर

---

१. ब प्रति मे 'रत्तसोयकरिल्लमरग्गेहि' यह पक्ति नही है।

कहिं लग्गइ णारायणु हत्थहो ॥
जाणमि महरिसि वयणु ण चुक्कइ ।
जइ परमेसरु पुरवरु ढुक्कइ ॥
णइयहु पवरुज्जाणे णवल्लए ।
रइ लेविणु आवेसइ वल्लए ॥
तो णिक्कसमि समउ जगणाहें ।
होउ होउ सिसुवाल-विवाहें ॥
अच्छउ णिययसेण चउरंगें ।
पट्टणु वेढिवि रुप्पि णिहंगें ॥
तिह करु गुरु जिह मिलइ जणद्दणु ।
दुद्दम-दाणव-देह-विमद्दणु ॥

घत्ता—पडपडिम लिहेवि दरिसाविय महुमहणाहो णारएण ।
ण हियवए विद्धु अणंगेण कुसुमसरासण धारएण ॥४॥

जिह-जिह चरणजुयलु णिज्झायइ ।
तिह तिह बाल चिंत उप्पायइ ॥
जिह-जिह ऊरुपएसु णियच्छइ ।
तिह तिह मुहदंसणु णिरु इच्छइ ॥
जिह जिह विउल णियंबु णिरिक्खइ ।
तिह-तिह णीससंतु ण थक्कइ ॥
जिह-जिह तिवलिमाल णिज्झायइ ।
तिह-तिह जर सव्वंगिउ आवइ ॥
जिह-जिह दिट्ठि थणोवरि थक्कइ ।
तिह तिह वम्महु जलणु झुलुक्कइ ॥
जिह-जिह पडिम कंठु दरिसावइ ।

कब होगा कि जब हरि मेरे हाथ लगेंगे । मैं जानती हूँ कि महामुनि का वचन असत्य नही होता । यदि परमेश्वर नगर मे आते हैं और नये श्रेष्ठ उद्यान मे रति स्वयं लेने के लिए आते हैं, तो जग के स्वामी के साथ निकलूगी । शिशुपाल का विवाह हो तो हो, चतुरंग प्रच्छन्न सेना के साथ रुक्मि नगर का घेरा कर रहे । हे गुरु, ऐसा कीजिए कि जिससे जनार्दन से भेंट हो जाए कि जो दुर्दम दानवो की देह का विमर्दन करनेवाले हैं ।

घत्ता—नारद ने पट-प्रतिमा लिख कर श्रीकृष्ण को दिखायी, मानो कुसुम धनुष धारण करने वाले काम ने हृदय मे विद्ध कर दिया हो ।।४।।

(पटचित्र में) जैसे-जैसे वे दोनो चरणो को देखते हैं वैसे-वैसे वह बाला रुक्मिणी उनके लिए चिन्ता उत्पन्न करती है । जैसे जैसे वे उरु प्रदेश देखते हैं वैसे-वैसे मुख देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है । जैसे जैसे वे विशाल नितम्ब देखते हैं वैसे वैसे निश्वास लेते हुए वे नही थकते । जैसे-जैसे वे त्रिवलि-माला देखते हैं वैसे-वैसे उनके शरीर के सब अंग तपने लगते हैं । जैसे-जैसे उनकी दृष्टि स्तनो पर ठहरती है वैसे-वैसे कामदेव की ज्वाला प्रदीप्त हो उठती है ।

घत्ता—तहिं अवसरि केण वि अक्खिउ दुद्दमदणु विणिवायणेण।
कुढि लग्गहो जइ ओलग्गहो रुप्पिणि णिय णारायणेण ॥६॥

तो कदप्पदप्प-उद्दालहो।
साहणु सणज्झइ सिसुवालहो ॥
भिच्चु भिच्चु जो अवसरु सारइ।
सूर सूर जो रहधुर धारइ॥
रहु रहु जो रहसेण पयट्टइ।
करि करि जो अरि करी विहट्टइ॥
तुरिउ तुरिउ जो तुरउ पयाणइ।
जाणु जाणु जो जाएवि जाणइ॥
जोहु जोहु जो जोहुवि सक्कइ।
रहिउ रहिउ जो रहिवि ण थक्कइ ॥
खग्गु खग्गु खग्गुज्जल धारउ।
चक्कु चक्कु परचक्क-णिवारउ॥
कोंतु कोंतु परकोंतु-णिवारउ।
सेल्ल सेल्ल परसेल्ल णिवारउ॥
सब्बल सब्बल सब्बल-भजणि।
लउडि लउडि लउडाउह तज्जणि ॥

घत्ता—सण्णहेवि सेण्णु सिसुवालहो धाइउ रणरहसुज्जमेण।
महुमहणेण पडिच्छिउ एतउ [1]आओसमणेण जमेण ॥७॥

तामपत्त मयमत्तवारणा।
सपहार-वावार-वारणा॥

घत्ता—उस अवसर पर किसी ने जाकर कहा—"दुर्दम दानवो का विदारण करनेवाले नारायण के द्वारा रुक्मिणी ले जायी जा रही है। यदि पीछा कर सकते हो तो करो" ॥६॥

तब कामदेव के दर्प को चूर-चूर करनेवाली शिशुपाल की सेना तैयार होती है। भृत्य वही है जो अवसर साधता है, शूर वही है जो रथ की धुरा को धारण करता है, रथ वही है जो वेग से दौडता है, हाथी वही है जो शत्रु के हाथी को नष्ट कर देता है और तुरग (अश्व) वही है जो तुरत प्रयाण करता है, यान वही है जो चलना जानता है, योद्धा वही है जो लड सकता है, रथिक वही है जो रथ मे (बैठा हुआ) नही थकता। खड्ग वही है जो खड्ग के पानी को धारण करता है। चक्र वही है जो शत्रुचक्र का निवारण करनेवाला है, कोंत वही है जो शत्रुकोंत का निवारण करनेवाला है। सेल वही है जो शत्रु-सेल का निवारण करनेवाला है। सब्बल भी वही है जो शत्रु के सब्बल को नष्ट करनेवाला है। लकुट वही है जो लकुट-आयुध का तर्जन करने वाला हो।

घत्ता—शिशुपाल की सेना तैयार होकर युद्ध के लिए हर्ष और उद्यम से दौडी। आती हुई उस सेना को क्रुद्धमन यम की तरह श्रीकृष्ण ने चाहा ॥७॥

इतने मे मद से मतवाले हाथी पहुँचे जो प्रहार के व्यापार का प्रतिकार करने वाले थे।

---

१ ज, ब—आयोसमणु, अ—आवोसमणु।

[1]भद्दलक्खण-गणिय सजुया ।
दससहास [2]परिमाण सजुया ॥
मद तेत्तिया तेत्तिया मया ।
बीससहास सकिण्णणामया ॥
सयलकाल जे दाणवतया ।
[3]सुरवारण-बहुदाणवतया ॥
तरुणिसिहिण-[4]अणुहारि कुभया ।
[5]जे जति विहुरे णिकुभया ॥
धवल-णिद्ध-णिद्दोस दतया ।
[6]जे कयावि ण केँ णवि अदतिया ॥
महिहरव्व बहुलद्ध-पक्खया ।
[7]कालवट्ठ-णट्ठ-परपक्खया ॥
जलहरव्व जलपूरियासया ।
सायरव्व परिपूरियासया ॥

घत्ता—तहि लक्खइ वरतुरगह सट्ठिसहासइ रहवरहं ।
सिसुवालरुप्पि रणे विण्णिवि भिडिय विहि वि हरि-हलहरह ॥८॥

तो रुप्पिणिहेँ वयणु थिउ कायरु ।
दीसइ सेण्णु णाइ रयणायरु ॥
अहो अहो देव णारायणु ।
हउँ हयासय-दुक्खह-भायणु ॥
पइ भत्तारु लहेवि जयसारउ ।
णवरि परिट्ठिउ दइउ महारउ ॥

महावतो से युक्त दस हजार भद्रलक्षण वाले थे। मन्द हाथी भी उतने ही थे और मद हाथी भी उतने ही थे। सकीर्ण नाम के हाथी तीस हजार थे, जो सदैव मदजल देनेवाले थे। सुर-वारण (ऐरावत) के समान प्रचुर मदजल वाले, युवतियो के स्तनो के समान कुभस्थल वाले थे जो सकट के समय बिना कुम्भस्थल के चलते हैं, जो धवल और निर्दोष दांतो वाले हैं, जो पर्वतो की तरह अनेक पक्ष धारण करनेवाले हैं, कालपृष्ठ धनुष की तरह परपक्ष को नष्ट करनेवाले हैं, मेघो के समान दिशाओ को जलो से आपूरित करनेवाले हैं तथा सागर के समान जिनका आशय परि-पूरित है।

घत्ता—वहाँ एक लाख उत्तम घोडे, साठ हजार श्रेष्ठ रथ थे। युद्ध मे शिशुपाल और रुक्मि दोनो से हरि और बलराम दोनो भिड गए ॥८॥

तो रुक्मिणी का मुख कातर हो गया। उसे सेना ऐसी दिखाई देती थी जैसे समुद्र हो। (वह बोली) हे देव नारायण ! मैं हताश और दुख की पात्र हूँ। विश्व में श्रेष्ठ आप जैसे पति को पाकर भी केवल मेरा भाग्य आकर खडा हो गया कि आप दो हैं और शत्रुसेना अनन्त है। क्या

---

१ अ—गलिय समुया। २ अ—परिणाम। ३ अ—सुरवरधवड्ड। ४ अ—अतुहरि। ५ अ—जेण जति विहुरे व कुभया। ६ अ—जे कयाइ ण किणावि दतिया। ७ अ—कालयम-बहुलद्धपक्खया।

चुलुएहिं लिज्जइ सायर सायरु ।
किं सुहेवि दिण्णइ अभयवयणु ॥
ओहामियतण्हाणिहि वरेंवे ।
छिंदिय सत्तताल जणणाहें ॥
चूरिउ वइरागरु समूलिय ।
सीमंतिणिहि मणोरह पुण्णिय ॥
जाणिवि अतुल-पयाउ अणंतहो ।
पडिय चलणे णियकंतहो ॥
जइवि दुद्धरु दुट्ठु अविणयगारउ ।
रक्खे रक्खिज्जइ भाइ महारउ ।

घत्ता तो णारायण-हलहरहिं अभउ दिण्णु असमाहिलासिणिहे ।
तहिं अवसरि पुण्णपहावें पत्ता विण्णि वाहिणिहे ॥६॥

जायवसेण्णु असेसु पराइउ ।
अवरुण्डु दिण्णु परोप्पर गाढउ ॥
सज्जइं पहरणइं रह वाहिय ।
कवचिय तुरय गइंद पसाहिय ॥
दिण्णइं तूरइं कलयलु घोसिउ ।
णारउ सहु सुरेहिं परिओसिउ ॥
ताव भरिउ दुद्दम-दणुवइरें ।
पूरिउ पंचयण्णु गोविंदें ॥
णियसंखु पऊरिउ बलहद्दें ।
बहिरिउ तिहुअणु ताहं णिणद्दें ॥
डरिय भुअंग वसुंधरि कंपिय ।
गिरि सघाय साय पासल्लिय ॥

घूँटों से समुद्र के जल को समाप्त किया जा सकता है? तब भयभीत उसे कृष्ण ने अभय वचन दिया। धन की तृष्णा रखनेवाले उसने सात तालवृक्षों को छेद दिया और हीरे की सम्पूर्ण अँगूठी को चूर-चूर कर दिया। सीमंतनी (रुक्मिणी) का मनोरथ पूरा हो गया। अनन्त (श्रीकृष्ण) का अतुलित प्रताप जानकर वह अपने पति के पैरों पर गिर पड़ी (और बोली)—"यद्यपि मेरा भाई दुर्धर, दुष्ट और अविनय करनेवाला है, तब भी युद्ध में उसकी रक्षा की जाए।"

घत्ता—तब असत् पाने की इच्छा रखनेवाली उसे वासुदेव और बलराम ने अभय वचन दिया। उसी समय पुण्य के प्रभाव से उन दोनों ने सेना प्राप्त की ॥६॥

समस्त यादवसेना पहुँच गयी। उसने हर्षपूर्वक एक-दूसरे का आलिंगन किया। अस्त्र ले लिये गये और रथ हाँक दिए गये। घोड़ों को कवच पहना दिए गये, हाथियों को सज्जित कर दिया गया, नगाड़े बजा दिए गये, कलकल घोषित कर दिया गया, देवों के साथ नारद संतुष्ट हुए। तब दुर्दम दानवों के समूह का दमन करनेवाले गोविन्द ने शंख बजाया। बलभद्र ने भी अपना शंख बजाया। उनके निनाद से त्रिभुवन बहरा हो गया। नागराज भयभीत हो उठे, धरती काँप गयी।

झलझल्लाविय सयल वि सायर ।
कउह् करिंदकाय किय कायर ॥
णवगह डरिय दिसामुह् वकिय ।
एहारह् वि रुद्द आसकिय ॥

घत्ता—तिहुअणभवणोयर वासियउ सयलु लोउ आसकियउ ।
रुप्पिणी-विउअ सतत्तउ परपडिवक्खु ण सकियउ ॥१०॥

रुप्पिणि-कारणे अमरिस कुद्धइं ।
अमरवरगण-रइ-रस-लुद्धइ ॥
भिडियइं वलइ पवल्लबलवतइ ।
दुद्दम-दंतिदतहयगत्तइ ॥
पडिपहराहय-णिहय गइदइ ।
किय कुभय लोलोक्खलविदइ ॥
दसणमुसल-छदाविय-पाणइ ।
पडिय-विमाण-जाण-जपाणइ ॥
सदाणिय-संदण-सदोहइ ।
दुज्जयजोह्-परज्जिय जोहइ ॥
रगाविय रणरग-तुरगइ ।
रुहिरारुणिय-रहोहरहगइ ॥
छिण्ण-कवय खडिय करवालइ ।
सुरवहुचित्तसयवर-मालइ ॥
उब्भडभिउडि-भयकरमालइ ।
पेसिय एक्कमेक्क-सरजालइ ॥

गिरिसमूह टेढा-मेढा हो गया । समस्त समुद्र छलछला उठे । दिग्गजो के शरीर कायर हो गये, नवो ग्रह डर गये और दिशाओ के मुख टेढे हो गये । ग्यारहो रुद्र आशकित हो उठे ।

घत्ता—त्रिभुवन के उदर (भीतर) मे निवास करनेवाला समस्त लोक आशकित हो उठा । रुक्मिणी के वियोग से सतप्त केवल शत्रुपक्ष आशकित नही हुआ ॥१०॥

क्रुद्ध देवो की उत्तम अगनाओ के रतिरस की लोभी प्रवलरूप से वलवान् दोनो सेनाएँ रुक्मिणी के कारण भिड गयी, उनके शरीर दुर्दम हाथियो के दाँतो मे आहत थे । जिन योद्धाओ के गज प्रतिहारो से हत-आहत थे, जिन्होने गजकुम्भो को चचल ऊखलो का समूह वना लिया है, दाँतो के मूसलो से जिनके प्राण छिन्न-भिन्न कर दिए गये हैं, जिनके विमान, यान और जपाण गिरे हुए हैं, रथो का समूह ध्वस्त कर दिया गया है, दुर्जेय योद्धाओ के द्वारा जिनके योद्धा पराजित हो गए हैं, जिनके घोडे रणरग (उत्साह) से रग दिए गये हैं, जिनके रथ समूह और चक्र रक्त मे रजित हैं, कवच छिन्न-भिन्न हैं और तलवारें खडित हैं, जिन पर सुरवधुओ ने स्वयवर की मालाएँ फेंकी हैं, जो उद्भट भौंहो की भयकर मालाओ वाली हैं, जो एक-एक कर तीरो का जाल फेंक रही हैं ।

घत्ता—रणवणे रिउरुक्ख भयंकरे ¹धणुसाहाणिवासिएहिं।
खज्जंति बलाइं सरसप्पेहिं तोणा-कोटर वासिएहिं ॥११॥

रणु आलग्गु ताम समरन्तहँ।
सच्चइ उत्तमसत्त सिणिसल्लहँ ॥
पिहुरुप्पिए उम्मय दुमरायहँ।
वेणुदारि रोहिणिसुअरायहँ ॥
जेत्तहे जेत्तहे हलहरु ढुक्कइ।
तेत्तहे-तेत्तहे कोवि ण चुक्कइ ॥
गयवरु गयवरेण चप्पट्टइ।
रहवरु रहवरेण पल्लट्टइ ॥
तुरउ तुरंगमेण संघट्टइ।
णरवरु णरवरेण मुसुमूरइ ॥
जाणें जाणु विमाणु विमाणें।
भिन्दए महदुमेण पहाणें ॥
जं करे लग्गइ तेण जि पहरइ।
सहसु लक्ख-कोडि वि संहारइ ॥
बलहो तणउ रणचरिउ णिएप्पिणु।
वेणुदार गउ पाण लएप्पिणु ॥

घत्ता—पिहु-रुप्पि रणंगणे जेत्तहे-जेत्तहे रोहिणिसुउ वलिउ।
बलपबलें कालु ण धाइउ पुणु अण्णेत्तहे ण संचलिउ ॥१२॥

रुप्पिणी-भायरेण पिहु जिज्जइ।
जीवग्गाहु जाव आय लइज्जइ ॥

घत्ता—शत्रुरूपी वृक्षों से भयंकर उस युद्धरूपी वन में धनुष रूपी शाखाओं में निवास करने वाले तूणीर (तरकस) रूपी कोटरों में रहनेवाले तीर रूपी साँपों के द्वारा सेनाएँ खाली जाती हैं ॥११॥

इस बीच बड़े-बड़े योद्धाओं, सत्यकी, उत्तम ओजोवाले शिनि, शल्य, पृथु, रुक्मी, उम्मद, द्रुम-राज, वेणुदारा और रोहिणी के पुत्र में युद्ध होने लगा। जहाँ-जहाँ हलधर जाते हैं, वहाँ-वहाँ कोई नहीं बचता। वह गजवर से गजवर को कुचलता है, रथवर से रथवर को टकरा देता है, घोड़े से घोड़े को चूर-चूर कर देता है, नरवर को नरवर से मसल देता है, यान से यान, और विमान से विमान को नष्ट कर देता है। चट्टान से महाद्रुम और पाषाण से—जो भी हाथ में आता है उससे प्रहार करता है। हजारों-लाखों और करोड़ों का वह संहार करता है, बलराम के रणचरित को देखकर, वे वेणुदार अपने प्राण लेकर भागे।

घत्ता—युद्ध के मैदान में जहाँ पृथु और रुक्मि थे उस ओर बलराम मुड़ा, जैसे सेना को निगलकर काल दौड़ा हो। फिर वह दूसरी ओर गये ॥१२॥

रुक्मिणी के भाई द्वारा पृथु जीत लिया गया। जब तक उसके जीव का ग्रहण किया जाता

---

१. ज, अ – धणुवाहाणिवासिएहिं। ब—धणुवा साहणिवासिएहिं।

तहिं अवसरे बलेण हक्कारिउ ।
[1]रहवरुरहवरेण मुसुमूरिउ ॥
राम-रुप्पि रहसेण रणगणे ।
उत्थरंति घण णाइ णहगणे ॥
विसहर-विससमेहिं-सरजालेहिं ।
खयदिणमणि-किरण-करालेहिं ॥
तो तालद्धधएण धम खडिउ ।
विरहु णिरत्थु करिवि रिउ छडिउ ॥
उम्मएण दुमराउ णिवारिउ ।
दिण्ण पुट्ठि गउ कहवि ण मारिउ ॥
उत्तमोज्ज सिणिसुयहो पभज्जिउ ।
सच्चइ-वप्पें सल्लु परज्जिउ ॥
चेइ णराहिउ ताम पधाइयउ ।
णारायणु णाराएहिं छाइयउ ॥

घत्ता—सिसुवालहो लोय-परिवालहो करचरणग-लग्गणा ।
जिह देंतह तिह जुज्झतह जति अलक्खण मग्गणा ॥१३॥

[2]णर-कवध-वर-सयुय ।
सिय-सरासणी सजुय ॥
खरप्पहारदारुण ।
णवपवालकदारुण ॥
समुच्छलिय लोहिय ।
सुरविलसिणि लोहिय ॥
पणच्चिय विरुडय [भरुडय] ।
भमिय-भूरिभेरुडय ॥

कि तभी बलराम ने उसे ललकारा और रथवर को रथवर से चूर-चूर कर दिया। बलराम और रुक्मि वेग से युद्ध के प्रागण मे इस प्रकार उछलते हैं मानो नभ के आँगन मे मेघ हो। विषधर और विष के समान तथा प्रलय के सूर्य की किरणो के समान भयकर सरजालो से तालार्धध्वजवाले ने ध्वज खडित कर दिया, और शत्रु को रथ और अस्त्र से विहीन करके छोड दिया। उम्मद ने द्रुमराज का प्रतिकार किया, उसने पीठ दी और भाग गया। किसी प्रकार उसे मारा भर नही। उत्तम और आर्य शिनिसुत से नष्ट हुए। सत्यकी के पिता से शल्य पराजित हुआ। इस बीच चेदिराज दौडा। नारायण भी नाराचो (तीरो) के साथ दौड पडे।

घत्ता—लोक का परिपालन करनेवाले शिशुपाल के हाथो और पैरो के अग मे लगनेवाले तीर—जिस प्रकार देनेवाले के—उसी प्रकार युद्ध करनेवाले के लिए अलक्षित रहते हैं ॥१३॥

जो मनुष्यो के कबधो से युक्त है, जो तीखे धनुषो से युक्त है, तीव्र प्रहार से दारुण है, नवरत्न प्रवालो के अकुरो के समान अरुण है, जिसमे रक्त उछल रहा है, जो सुरबालाओ का लोभी है, जिसमे भेरुड पक्षी नृत्य कर रहे हैं, जिसका लक्ष्मी ने स्वय वरण किया है, जो जल-थल-नभ

---

१ ज, अ, ब—रहवरेणतराले पइसारिउ। २ अ- कय णवर सयुय।

सयवरिय-लच्छिय।
[1]जल-थल-णह-सरु लछिय ॥
समुवधरिय णाहह।
छिंधिय दूरि सण्णाहय ॥
फडत्तरिय देहय।
जणिय-पाण सदेहय ॥
धराधरियछत्तय।
लुय धयावलीछत्तय ॥
गया अहोमुह गया।
पहरसगया णिग्गया ॥
महारुहिर-रगिया।
पर तुरगमा रगिया ॥
[2]कयावि रह दूरहा।
वहु मणोरहा णो रहा ॥
हरिप्पमुह चिधूया।
जउ-णराहिवा विद्धूया ॥

घत्ता—रिजुधम्मलग्गगुण कड्ढिया[3] मोक्खहलावसाण पसरा।
असरज्झियदेह-पयन्तयणे तवसि व कण्हहो लग्ग सरा ॥१४॥

तहि अवसरे सारग वि हत्थें।
दुद्दम-दाणव-दलण-समत्थें ॥
मुक्कु विअब्भाहिव सुयकन्तें।
सरवर-णियरु अणतृ अणतें ॥
पच्छइ जइवि ठइज्जइ अण्णेंहि।
को गुणवतु ण लग्गइ कण्णेंहि ॥

और सरोवरो से शोभित है, जिसमे स्वामियो का उद्धार किया गया है। जिसमे कवच दूर फेक दिया गया है, देह कडकड करके टूट गयी है, जिसमे प्राणो का सदेह हो गया है, जिसमे छत्र धरती पर रख दिए गये हैं, छत्र और ध्वजावलियाँ काट दी गयी हैं, गज अधोमुख होकर चले गये हैं, प्रहारो से सगत होकर चले गए हैं, महारक्त से जो रग गया है, जिसमे शत्रु के घोडे रग गये हैं, कभी रथ दूर थे, मनोरथ बहुत थे परतु रथ नही थे, हरिप्रमुख योद्धा जिसमे कपित हो उठे, जिसमें यादव राजा उखड गये।

घत्ता—जो ऋजुधर्म (सीधे धनुष) लगी हुई डोर से खीचे गये थे, मोक्ष (छुटकारा) रूपी फल के अवसान का प्रसार करनेवाले थे ऐसे तीर प्राण रहित देह के प्रयत्न मे तपस्वी की तरह कृष्ण को लगे ॥१४॥

उस अवसर पर जिसके हाथ मे धनुष है, जो दुर्दम दानवो का दलन करने मे समर्थ हैं, जो विदर्भराज की पुत्री के कान्त हैं ऐसे अनन्त (श्रीकृष्ण) ने अनन्त तीर समूह छोडा। दूसरों के द्वारा वे तीर यद्यपि पीछे स्थापित किए जाते हैं, परन्तु कौन गुणवान् कानो से नही लगता ? यद्यपि

---

१ अ—जलथल मरु लच्छिय। २ अ—कियावि एह। ३ अ—कच्छिया।

[1]जइवि मणहरपाणहरु रुच्चइ।
मुट्ठिहे जो ण माइ सो मुच्चइ॥
छड्डिय-सवणधम्मु गुणलघणु।
णिवसइ कासु पासि किर मग्गणु॥
घणु-कड्ढियउ सव्वु आकदइ।
गुणपणमणेण कवणु ण णदइ॥
वकत्रणगुणेण परिछिज्जइ।
को कोडीसरु जो णउ गज्जइ॥
पीडिज्जतु मुट्ठि को मुवइ।
कड्ढिज्जति जीवे को ण रुयइ॥

घत्ता—सरघोरणि-वइरि-विसज्जिय केसव सर पहराहिहय।
ण पासु भमेवि सुपुरसहो असइ विलक्खी होइ गय॥१५॥

तो विणिवारिएण सरजालें।
णिसि-पहरणु पेसिउ सिसुवालें॥
छाइउ अवरविवरु दियतरु।
एउ ण जाणहु कहि गउ विणयरु॥
फुरियइ तारागह-णक्खत्तइ।
णहसरे वियइ सयवत्तइ॥
णिरवसेसु जगु मायए छाइयउ।
जायवसाहणु णिद्दए लाइयउ॥
उर-कउत्थुह-मणिरयणुज्जोएँ।
लोइण-चदाइच्चालोए॥
मेल्लिउ दिणयत्थु गोइवें।

यह तीर सुन्दर प्राणो का हरण करनेवाला है, फिर भी अच्छा लगता है। जो मुट्ठी मे नही समाता उसे छोड दिया जाता है। जिसने श्रवण धर्म छोड दिया है, जो गुणो का लघन करनेवाला है ऐसा मग्गण (बाण और याचक) किसके पास ठहरता है? धणु (धन, धनुष) निकाल लिया गया, सभी आक्रन्दन करते हैं (चिल्लाते हैं)। गुण के प्रणमन से कौन आनन्दित नही होता? वक्रता गुण से भी वह क्षीण हो जाता है, कौन कोटीश्वर (धनुष, करोडपति) है, जो नहीं गरजता? पीडित किए जाने पर भी मुट्ठी कौन छोडता है? जीव के निकाले जाने पर कौन नही रोता।

घत्ता—शत्रु के द्वारा विसर्जित, श्रीकृष्ण के तीरो के प्रहार से अभिहत वीरो की परम्परा उसी प्रकार विलखकर आती है जिस प्रकार सत्पुरुष के निकट घूमकर असती स्त्री॥१५॥

तब सरजाल के विनिवारण कर देने पर शिशुपाल ने निशाप्रहरण प्रेषित किया। आकाश का विवर और दिगन्तराल आच्छादित हो गया। यह पता नहीं चला कि दिनकर कहाँ गया। तारा-ग्रह और नक्षत्र चमक उठे मानो आकाश के सरोवर में कमल खिल गए हों। अशेष विश्व माया से आच्छादित हो गया। यादव-सेना को नींद आ गयी। जिनके वक्षस्थल में कौस्तुभ

---

१ जइवि मणोहर पाणहु रुच्चइ।

पण्णय-पहरणु चेइ-णरिंदें ॥
फुरियफणामणि-सोहिय सेहर ।
रणुपूरंतु पधाइय विसहर ॥
णिवडिय गयवर वरगिरि सिहरइ ।
ण तरुवर-वरपल्लव णियरइ ॥

घत्ता—रहवर-वम्मीय-सहासेहि तुरय-कण्ण मुह-कोडरिहिं ।
णिवसियाणाराय-भुअगम जम जिह बहुरुवतरिहिं ॥१६॥

तहि अवसरे सरकरपरिहत्थें ।
पेसिउ गारुडत्थु सिरिवत्थें ॥
एक्कु अणेयागारेंहि धाइउ ।
दसदिसि-चक्कवाले णउ माइउ ॥
पक्खपसारणे किय घणडवरु ।
[1]दूरदवण-पवणविहुअणहयरु ॥
चलणुच्चालण-चालिय महिहरु ।
कय सयविवर-दुवार-वसुधरु ॥
सइ पायालहु जति विहगम ।
कहि णासतु वराय-भुअगम ॥
गारुडत्थु ज एम वियभियउ ।
तो चेइवें थाणु पारभिउ ॥
पेसिउ अग्गि-अत्थु बलवतउ ।
णहुमहि-एकीकरणु-करतउ ॥
हरिबलबलु समजालो हुयउ ।

मणिरत्न का प्रकाश है और जिनके नेत्र चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाशवाले हैं ऐसे गोविंद ने दिनकर अस्त्र छोडा। चेदिनरेश ने पन्नग प्रहरण छोडा। जिनके शेखर फणामणियों से शोभित हैं ऐसे विषधर रण को आपूरित करते हुए दौडे। गजवर और बडे पहाडो के शिखर ऐसे गिर पडे मानो बडे-बडे वृक्षो के वरपल्लव-समूह हो।

घत्ता—रथवरो की हजारो वामियो, घोडो के कानो और मुखो के कोटरो, और अनेक रूपान्तरो मे तीर रूपी नाग यम की तरह स्थित थे ॥१६॥

उस अवसर पर तीरो और हाथो की क्षिप्रता से श्रीवत्स ने (कृष्ण ने) गारुड अस्त्र प्रेषित किया। वह एक, अनेक आकारो मे दौडा, दशो दिशाओं मे चक्रमण्डल में वह नही समाया। पखो के फैलाव मे उसने मेघाडम्बर किया। दूर के दवाव से पवन ने नभचरो को प्रकपित कर दिया। पैरो के चालन से उसने महीधर को हिला दिया और धरती मे सैकडो विवर और द्वार बना दिये। जब पक्षी स्वय पाताल मे जाते हैं तो बेचारे साँप कहाँ भागें? गरुडास्त्र जब इस प्रकार बढने लगा तो चेदिराज ने स्थान-परिवर्तन प्रारम्भ किया। उसने बलवान् आग्नेय अस्त्र छोडा। आकाश और धरती को एक करते हुए हरि की सेना की शक्ति भस्मीभूत हो गयी, जैसे

---

१ ज, अ—दूर दवण पवण विहुअवरु। ब—दूरद्मण पवण विहुणचरु ॥

खधे चलाविय वइवस-दूवउ ॥

घत्ता—तो वारणु मुक्कु जणतेण हुयवहु तेण णिरत्थियउ ।
जहिं अप्पउ कहिं मि ण दीसइ तेउ अतेउ होवि थियउ ॥१७॥

वसीकरण-णिवारणा ।
अवरवारिणा वारिणा ॥
अहोमुह-विहारिणा ।
हुयवहहारिणा हारिणा ॥
णवव्रुरुह-वासिणा ।
बरहिवासिणा वासिणा ॥
कय-कुवलयंवसं ।
कुवलयवसज्झायस ॥
स चेइवइ वासुणा ।
किर सरेण दिव्वाउणा ॥
समाहणइ वारुण ।
महुमहेण सावारुण ॥
भिसवयणपकय ।
पलयभाणु-दप्पकय ॥
गुणाणिय-खुरुप्पय ।
वहइ ज फल रुप्पयं ॥
सयाइ अय-पुत्तय ।
कणयकत्तरीपुखयं ॥
तिणा पलय-दित्तिणा ।
रिउ-विराविणा राविणा ॥
ण तं हणइ कोसिर ।
सहसवार-उवकोसिर ॥

चलने पर यम का दूत चढ गया हो ।

घत्ता—तब श्रीकृष्ण ने वारुण अस्त्र छोडा । उसने आग्नेय अस्त्र व्यर्थ कर दिया । जिससे अल्प भी कहीं नहीं दिखाई दिया, तेज अतेज (प्रकाश अधकार) होकर स्थित हो गया ॥१७॥

जो वशीकरण का निवारण करनेवाला, दूसरो का प्रतिकार करनेवाला, अधोमुख विहार करनेवाला, अग्नि का शमन करनेवाला, नवकमलों मे निवास करनेवाला, मयूरो मे निवास करनेवाला है, ऐसे उस वारुण अस्त्र से श्रीकृष्ण ने कुवलय (पृथ्वीमडल) को वश मे कर लिया । जो कुवलय से भयभीत है, ऐसा चेदिराज दिव्यायुधवाले वायु शर से वारुण अस्त्र को नश्वर रूप से आहत करता है । तब मधुसूदन ने (बाण उठाया), जो अत्यन्त अरुण, कमल के मुखवाला, प्रलयभानु के दर्प से कल्पित, डोरो से जिसमें खुरपे लगे हुए है, जिसमें चाँदी के फलक है, लोहे के सैकडो अग्रभागवाले बाण है, जिनमे स्वर्ण कैचियो के पख है । प्रलय की दीप्तिवाले, शत्रु का नाश करनेवाले, भयकर शब्द से आक्रोश करनेवाले, हजार

गय वसुहवासय।
वसुह-वासय वासय ॥

घत्ता—सिर पडिउ कवधु पणच्चइ वत्तु णियतु सय भुवणे ।
बहुकालहो अविणयवतेण सीसें णमिउ सयभुवणे ॥१८॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयमूएवकए
सिरिरुप्पिणि-अवहरणणामो णउमो सग्गो। ॥९॥

वार गाली देनेवाले, धरती के वास को प्राप्त, धरती के वास को, वास को,

घत्ता—सिर गिरता है, कबन्ध नाचता है, भुवन मे मुख स्वय देखता है। बहुत समय तक अविनीत रहनेवाले सिर ने स्वय भुवन मे नमस्कार किया।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव द्वारा विरचित अरिष्टनेमिचरित मे
श्री रुक्मिणी-अपहरण नाम का नौवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दहमो सग्गो

उज्जंत-महागिरिवर-सिहरे जियसिसुवाल-महाहवेण ।
सइं रुप्पिणि-पाणिग्गहणु किउ [1]माहवे मासे माहवेण ॥

परिणेप्पिणु रुप्पिणि महमहणु ।
परणरवर-समरभरुव्वहणु ॥
पइसरइ स-बंधव-[2]बारवइ ।
जहिं मणसभवहो वि मणु हरइ ॥
पायाले सुरालए धरणिवहे ।
उवमिज्जइ उवमाणु णउ तहे ॥
गोविंदेण णयणाणंदयरु ।
रुप्पिणिहि समप्पियउ णिययहरु ॥
धणुधण्णु-सुवण्णु दिण्णु अतुलु ।
जियलोयसारु जीविउ विउलु ॥
कुप्पर[3]-कुडासय-कुप्पियइं ।
सोवण्णइं थालइं रुप्पियइं ॥
हय गय-रह-चामर-चिंधाइं ।
छत्तइं-वाइत्त-समिद्धाइं ॥
एयइं अवराइं मि जेत्तइं ।
को अक्खिवि सक्कइ तेत्तियइं ॥

ऊर्जयन्त महागिरि के शिखर पर शिशुपाल से महायुद्ध जीतनेवाले माधव ने वसन्त माह में स्वयं रुक्मिणी से विवाह कर लिया। रुक्मिणी से विवाह कर, शत्रुराजाओं के युद्धभार को वहन करनेवाले श्रीकृष्ण भाई बलराम के साथ द्वारावती (द्वारिका) में प्रवेश करते हैं। जहाँ वह नगरी कामदेव के भी मन का हरण करती है। पाताल, सुरालय और धरणीपथ में उसका उपमान नहीं है कि जिससे उपमा दी जाये। गोविन्द ने नेत्रों को आनन्द देनेवाला अपना घर रुक्मिणी के लिए समर्पित कर दिया। उसे अतुल धन-धान्य और सुवर्ण दिया। लोक के सार को जीतनेवाला विपुल जीवन, कोठर, जैसे कुडा, कुप्पियाँ और सोने-चाँदी के थाल, अश्व, गज, रथ, चामर, चिह्न, बाजों से समृद्ध छत्र आदि और भी जो दूसरी वस्तुएँ दीं, उन सबका वर्णन कौन कर सकता है?

१ ब—माहवहो मासहो। २. ब—पामराइं। ३. ब—कुडाइं मङ्कुम्पइं।

घत्ता—सच्छायइ अगइ रुप्पिणिहे सच्चहे जायइ सामलइ ।
णियचरियँहि को पावइ णवि रिसि-अवमाणकम्महो हलइ ॥१॥

तो वासुएव-वलएव जहिं ।
पडिवारउ णारउ आउ तहिं ॥
हरि अच्छइ एक्कु कण्णरयणु ।
[1]रुदारविंद-सण्णिह-वयणु ॥
वेयड्ढहो दाहिण-सेढियहे ।
विज्जाहरपुर-परिवेड्ढियहे ॥
जबुउरणाहहो जबवहो ।
पिय जबुसेण णामेण तहो ॥
सुय जबुमालि सुय जबूवइ ।
कल-कोइल-कठि-मरालगइ ॥
तो कण्हें दूउ विसज्जियउ ।
आयउ तियरयण-विवज्जियउ ॥
णियमणे चिंतावइ महुमहणु ।
किण्ण कियउ कण्णपाणिग्गहणु ॥
उववासें हरिवलएव थिय ।
परमताराहण तुरिउ किय ॥

घत्ता—तो जक्खिलदेवें तुट्ठिएण दिण्णउ णहयलगामिणिउ ।
सीराउह-सारगाउह-हरिवाहिणि-खग्ग-वाहिणिउ ॥२॥

ते गरुड-महद्धय-तालद्धय ।
वेयड्ढहो दाहिणसेढि गय ॥

घत्ता—रुक्मिणी के अग सुन्दर कातिवाले हो गए और सत्यभामा के अग काले पड गए। मुनि के अपमान के कर्म का फल, अपने चरित (आचरण) से कौन नही पाता ॥१॥

तब जहाँ वासुदेव और वलदेव थे, नारद फिर वहाँ आये और वोले—"हे कृष्ण ! एक विशाल मुख-कमलवाला सुन्दर कन्यारत्न है। विद्याधरो के नगरो से घिरे हुए विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे जम्वुपुर नगर के स्वामी जम्वु की जम्वुसेना नाम की पत्नी है। उसका पुत्र जम्वुमाली और पुत्री जम्वुवती है जो कोयल के समान स्वरवाली और हंस के समान गतिवाली है। तब श्रीकृष्ण ने अपना दूत भेजा, जो स्त्रीरूपी रत्न के विना आ गया। मधुसूदन अपने मन मे सोचते हैं कि उसने कन्यारत्न का पाणिग्रहण क्यों नही किया ? श्रीकृष्ण और वलराम दोनों उपवास करने के लिए वैठ गये और उन्होंने तुरन्त श्रेष्ठमन्त्र (णमोकार मन्त्र) का आराधन किया।

घत्ता—तब यक्षदेव ने सन्तुष्ट होकर आकाशतलगामिनी, सिंहवाहिनी और खड्गवाहिनी विद्याएँ श्रीकृष्ण और वलराम को प्रदान की।।२॥

वे गरुडध्वज और तालध्वजवाले (श्रीकृष्ण-वलराम) विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में

---

१ अ—सुदारविंद-सुन्दर-वयणु।

अवहरिय कण्ण कुढि लग्ग पहु ।
रणु जाउ परोप्परु दुव्विसहु ॥
पाडिउ सेण्णु जवुरुहेण ।
जिउ जवुमालि सीराउहेण ॥
महचंडु गएण रणुज्जएण ।
जयउ गोविंदें दुज्जएण ॥
विज्जाहरि परिणिय जंववइ ।
पइसारिय पुरवरे दारवइ ॥
अण्णहिं दिणि णयणाणंदयरे ।
सुमणोहरे वीयसोयणयरे ॥
पहु चंदमेरु चंदमइ तिय ।
किय कण्णहे तेहिं विवाह-किय ॥
आणेप्पिणु दिण्णु गोरि हरिहे ।
[1]सुहु थियइ दारावइ-पुरिहे ॥

घत्ता—लक्खण सुसीम गंधारितिय सस लहुयारी रेवइहे ।
पउमावइ परिणिय महुमहेण पुण्ण मणोरह देवइहे ॥३॥

इय अट्ठमहाएविहिं सहियउ ।
अण्णु वि उरसिरिए परिग्गहिउ ॥
भुंजतु रज्जु थिउ महुमहणु ।
धण-धण्ण-सुवण्ण-समिद्ध जणु ॥
घरे-घरे णं कामधेणु सवइ ।
घरे-घरे ण धण-दव्वु वहइ ॥
घरे-घरे वसुहार णाइ पडइ ।
घरे-घरे चिंतियउ समावडइ ॥

गये और कन्या का अपहरण किया। विद्याधर राजा पीछे लगा। दोनों में परस्पर अत्यन्त असह्य युद्ध हुआ। जवुरुह ने सेना को परास्त कर दिया। बलराम ने जम्बुमाली को जीत लिया। युद्ध में उद्यत दुर्जेय गोविन्द ने गदा से महाप्रचंड जम्बू को जीत लिया और विद्याधरी जम्बुवती का पाणिग्रहण कर लिया, तथा उसको द्वारावती में प्रवेश कराया। दूसरे दिन नयनानन्द अत्यन्त सुन्दर वीतशोक नगर में राजा चन्द्रमेरु और उसकी पत्नी चन्द्रमती ने अपनी कन्या को ब्याह दिया और गौरी लाकर श्रीकृष्ण को दे दी। द्वारावती में वे सुख से रहने लगते हैं।

घत्ता—लक्ष्मणा, सुसीमा और गन्धारी तथा रेवती की छोटी बहन पद्मावती से श्रीकृष्ण ने विवाह किया। देवकी का मनोरथ पूरा हो गया ॥३॥

इस प्रकार आठ महादेवियों सहित, तथा लक्ष्मीदेवी के साथ मधुसूदन राज्य का भोग करते हुए रहने लगते हैं। लोग धनधान्य और सुवर्ण से समृद्ध हैं। घर-घर में मानो कामधेनु दुही जाती है। घर-घर में धनद्रव्य बहता है। घर-घर में जैसे रत्नों की वर्षा होती है। घर-घर में मन-

---

[1] ब—सुहु थियइ दारावइ पुरिहे ।

अण्णहिं दिणे उववणे पइसरेवि ।
केलिहरे सुरयलील करेवि ॥
मडेप्पिणु रुप्पिणी अल्लविय ।
मणिवाविहे पासे परिट्ठविय ॥
मायाविणि अणिमिस-दिट्ठी किय ।
वणदेवय ण पच्चक्ख थिय ॥
उप्पाइय कावि अउव्वसिय ।
णउ णावइ जिह सामण्णतिय ॥

घत्ता—ज तहिं उव्वरिउ पसाहणउ त सच्चहे उवढोइयउ ।
देवय पचक्खी हूय महु कि अच्छरिउ ण जोइयउ ॥४॥

भद्दिएण भाम भामिय भवणे ।
पइसारिय पवरुज्जाणवणे ॥
अप्पणु सुट्ठु मणोहरए ।
थिउ पत्तलवहल-लताहरए ॥
जहिं रुप्पिणि-रूवहो पारु गय ।
ण मयणुब्भिय-सोहग्गधय ॥
लक्खिज्जइ भामिणि भामियए ।
घण-पीणपओहर-णामियए ॥
कर-चरणाणण-लोयण-कमले ।
तरमाण णाइ लायण्णजले ॥
भज्जइ व मज्झि तणुयत्तणेण ।
ण णिहालइ महि णवजोव्वणेण ॥
पेक्खेप्पिणु सच्चहाम णमिया ।
जइ तुहु कावि देवय सच्चिया ॥

चाही चीजें आ जाती हैं। दूसरे उपवन मे प्रवेश कर तथा केलिगृह में कामक्रीड़ा कर, श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को सजाकर अलक्तक लगा दिया और उसे मणिवापिका के पास स्थापित कर दिया। उस मायाविनी ने अपनी दृष्टि अपलक कर ली, और ऐसी स्थिति हो गयी जैसे साक्षात् वनदेवी हो। उसकी अनोखी ही शोभा थी। वह सामान्य स्त्री की तरह दिखायी नही देती थी।

घत्ता—जब रुक्मिणी का लेप (प्रसाधन) पूरा हो गया तो मधुसूदन सत्यभामा के पास पहुँचे और बोले—"मुझे देवी प्रत्यक्ष हुई हैं। क्या तुमने यह आश्चर्य नही देखा ॥४॥

मधुसूदन ने सत्यभामा को भवन मे घुमाया और फिर विशाल उद्यानवन मे घुमाया। वह स्वय प्रचुर पत्तोवाले सुन्दर लतागृह में बैठ गये, कि जहाँ रुक्मिणी रूप की सीमा पार कर स्थित थी, जैसे वह कामदेव की सौभाग्य ध्वजा हो। अपने सघन और स्थूल स्तनो से नमित हुई, सत्यभामा ने उसे देखा जैसे वह कर, चरण, मुख और लोचनरूपी कमलोवाले सौन्दर्य के जल में तिर रही हो। कटिभाग की कृशता के कारण भग्न होती हुई-सी वह नवयौवन के कारण धरती को नही देखती। सत्यभामा ने उसे देखकर नमन किया, "यदि तुम सचमुच की कोई देवी

तो मह्नु सोहग्ग देहि अचलु ।
कुसवत्तिहे दूहवह्नु महाहलु ॥

घत्ता—परमेसरि अणुदिणु होइ मह्नु आणवडिच्छउ महुमहणु ।
सीसु व आयरिय पायवडिउ [1]पोढव्व-पडिउ जिह थेरथणु ॥५॥

ज सुदरि एम [2]भणति थिय ।
तो जायवणाहें विहस किय ॥
मायण्ही फेडहि अप्पाणिय ।
एह रुप्पिणि देवय कहि तणिय ॥
विज्जाहरि तुहु णव-वह्नुडियहे ।
किह णमिय सवत्तिहे लहुडियहे ॥
हरिखेड्डु सुणेवि तणु-तणुयडिय ।
सच्चहे रुप्पिणि पाएहि पडिय ॥
तहि अवसरि रिउ-मइ-मोहणेण ।
पट्ठविउ लेह्नु दुज्जोहणेण ॥
महएविहि विहि वि पलवभुउ ।
जो उप्पज्जेसइ पढमसुउ ॥
तहो तणय देसु हउ अप्पणिय ।
संभावण एह मह्नुत्तणिय ॥
ज जायणु वोल्ल सुमणोहरेहि ।
उण्णयघणपीण-पओहरेहि ॥

घत्ता—उप्पण्णहो सुयहो पहल्लाहो कुरुव-तणय परिणताहो ।
णिपुत्ती सीसें मुडिएण हिट्ठि ठवेवि ण्हताहो ॥६॥

हो तो अचल सौभाग्य दो और मेरी कुत्सित सौत को दुर्भाग्य का महाफल दो ।

घत्ता—हे परमेश्वरी, मधुसूदन प्रतिदिन मेरी आज्ञा के माननेवाले हो। जिस प्रकार शिष्य आचार्य के पैर पडता है, या जिस प्रकार वृद्धा के स्तन प्रौढता से च्युत हो जाते हैं, उसी प्रकार वे मेरे पैरो मे पडे रहें ॥५॥

जव सुन्दरी सत्यभामा इस प्रकार कहती हुई स्थित थी, तो यादवनाथ ने उपहास किया, "तुम अपनी मृगतृष्णा छोड दो, यह रुक्मिणी है, देवी कहाँ की ? हे विद्याधरी, तुमने छोटी नव-वधू अपनी सौत को क्यो नमन किया ?" श्रीकृष्ण का उपहास सुनकर छोटी रुक्मिणी सत्यभामा के पैरो पर गिर पडी। उस अवसर पर शत्रु की मति का मोहन करनेवाले दुर्योधन ने लेख भेजा कि दोनो महादेवियो (सत्यभामा और रुक्मिणी) मे से जिसके लम्बी वाहुओवाला पहला पुत्र उत्पन्न होगा उसे अपनी कन्या दूँगा, यह मेरा सकल्प है। तव जिनके उन्नत और स्थूल पयोधर हैं ऐसी उन सुन्दर देवियो मे यह वात हुई (यह तय हुआ)।

घत्ता—पहले उत्पन्न हुए, दुर्योधन की कन्या से विवाह करते हुए स्नान करनेवाले पुत्र के नीचे, निपूती मुण्डित सिर से रखी जायेगी ॥६॥

---

१ अ—पोरव पडिउ। २. अ—एव चवन्ति ।

बहुदिवसहिँ भिसणगाय-ण्हायएँ ।
रयसमलएँ चउत्थतोयण्हायएँ ॥
जो पच्छिम पहरे णिसि दिट्ठउ ।
सो सिविणउ दिणमुहि अक्खियउ ॥
णारायण दिट्ठु विमाणु मइ ।
हरि चवइ लहेसउ पुत्तु पइ ॥
विज्जाहर-जायव-कुलतिलउ ।
सोहग्गरासि-गुणगणणिलउ ॥
भामए वि एम सिविणउ कहिउ ।
सुउ होसइ एक्कोयर सहिउ ॥
बहु दिवसेहिं महंतेहिं सोहलेहिं ।
णवमास-पुण्ण-बहु-दोहलेहिं ॥
एक्कहिं दिणि बेवि पसूयउ ।
पट्ठवियउ णिय णिय दूयउ ॥
पहिलारउ तुट्ठु पहु उट्ठियएँ ।
कमलोयर-चलणतट्ठियए ॥
वद्धाविउ रुप्पिणिदूयए ।
अवरएँ वि सिरतलि हूयए ॥
जउ णंदउ-णंदणु जाउ तउ ।
विहसंतु अणवु तुरंत गउ ॥

घत्ता—पहिलउ पेक्खंतहो पुत्तमुहु जं सुहु तहिं दामोयरहो ।
चक्कक्ककित्ति-वद्धावणए दुक्करु तं भरहेसरहो ॥७॥

पेक्खेप्पिणु रुप्पिणि-सुयवयणु ।
गउ सच्चहामघरु महुमहणु ॥

बहुत दिनो बाद, चौथे दिन जल से स्नान करनेवाली रजस्वला भीष्मराज की पुत्री रुक्मिणी ने रात्रि के पश्चिम प्रहर मे जो सपना देखा वह सवेरे बताया, "हे नारायण, मैंने विमान देखा है।" श्रीकृष्ण कहते हैं, "तुम पुत्र प्राप्त करोगी जो विद्याधरो और यादवो के कुलो का तिलक, सौभाग्यराशि और गुणसमूह का घर होगा।" सत्यभामा देवी ने भी इसी प्रकार सपना बताया। (कृष्ण ने कहा) भाई सहित एक पुत्र होगा। बहुत दिनो बाद बहुत बडे सोहरो और दोहलो के साथ नौ माह पूरे हुए। एक ही दिन दोनो ने पुत्रो को जन्म दिया और उन्होंने अपनी-अपनी दूतियो को भेजा। उठने पर स्वामी (कृष्ण) के जिनमे कमल चिह्न हैं ऐसे चरणो के निकट बैठी हुई, रुक्मिणी की दूती के बधाई देने पर पहले सन्तुष्ट हुए। दूसरी दूती ने सिर के पास (कहा), "आपकी जय हो, आप प्रसन्न हो, आपके पुत्र हुआ है।" हँसते हुए श्रीकृष्ण तुरन्त गये।

घत्ता—पहले पहल पुत्र का मुख देखते हुए वहाँ दामोदर को जो सुख हुआ, वह चक्ररत्न और पुत्र अर्ककीर्ति की बधाई मे भरतेश्वर को भी कठिन था ॥७॥

रुक्मिणी के पुत्र का मुख देखकर मधुसूदन सत्यभामा के पास गये। उस अवसर पर दूढ़

तहिं अवसरे धूमकेउ असुरु ।
दढ-कठिण-[1]भुयजुयल-वियड-उरु ॥
णहे जतहो तहो विमाणु खलिउ ।
णउ [2]चरमसरीरोवरि चलिउ ॥
जाणिउ विहणणाणहो वलेण ।
हउ चिर [3]परिहविउ एण खलेण ॥
अवहरिउ कलत्तउ महत्तणउ ।
तं [4]वइरि हणेव्वउ मइ अप्पणउ ॥
अइणिद्द महाएविहे करेवि ।
सो बालु विमाणहो अवहरेवि ॥
ण गरुडेण णायकुमारु णिउ ।
अइभूमि गपि चिंततु थिउ ॥
णउ आयहो जीविउ अवहरमि ।
सयमेव मरइ जिह तिह करमि ॥

घत्ता—गउ वालहो उप्परि देवि सिल [5]वइवसणयरपल्लि तहिं ।
तहिं कालि कालसवरु गयणें सुक्कें[6] कीलिउ मेहु जहिं ॥८॥

[7]खयरवणि तक्खसिल-सिहरि मुक्क ।
विज्जाहर सवरु ताम तहिं ढुक्क ।
तो मेहकूड-उर-सामियहो ।
सकलत्तहो णहयलगामियहो ॥

कठिन भुजयुगल और विकट उरवाला धूमकेतु विद्याधर था । आकाश मे जाते हुए उसका विमान स्खलित हो गया, वह चरमशरीरी के ऊपर नही चल सका । विभग अवधिज्ञान के बल पर उसने जान लिया कि इस दुष्ट के द्वारा पूर्वभव मे मेरा पराभव किया गया था । इसने मेरी पत्नी का अपहरण किया था, इसलिए मुझे अपने इस दुश्मन को मारना चाहिए। महादेवी (रुक्मिणी) को गहरी नीद मे कर, उस बालक का विमान मे अपहरण कर, वह उसे उसी प्रकार ले गया जिस प्रकार गरुड सांप के बच्चे को ले गया हो । मरघट (अतिभूमि) पर पहुँचकर वह विचार करता है—मैं इसके जीवन का अपहरण नही करूँगा, वैसा करूँगा जिससे यह खुद मर जाये ।

घत्ता—वह बालक के ऊपर वहाँ चट्टान रखकर चला गया कि जहाँ वइवस नगर की बस्ती थी । उस अवसर पर कालसवर आकाश मे उसी प्रकार कीलित हो गया, जिस प्रकार शुक्र नक्षत्र द्वारा 'मेघ' कील दिया जाता है ॥८॥

खदिरवन मे तक्षशिला मे उसे छोड दिया । इतने मे विद्याधर सवर वहाँ पहुँचा । तब मेघकूट नगर के स्वामी, आकाशगामी, पत्नीसहित विद्याधर कालसवर का विमान कुमार के

---

१ अ—भुयगलु । २. अ—चमरि । ३ अ—परिभमिउ । ४ अ—वयरु । ५ अ—वइवसणयर पयोलि णिह । ६ अ—खीलिउ मेहु जिह । ७ ये दो पक्तियाँ अ प्रति मे नही हैं ।

ण कुमारोवरि विमाणु चलइ ।
जडवयणु इव वार-वार खलइ ॥
जाणहो ज ओयरिउ वकियहो ।
मुत्ताहल-मालालकियहो ॥
दीसइ ससत सिल ताम तहिं ।
मयरद्धय चरमसरीरु जहिं ॥
सो उवलु छितु जें चप्पियउ ।
सिसु कचणमालहे अप्पियउ ॥
ण समिच्छिउ ताएँ वियक्खणएँ ।
णव-कोमल-कमल-दलक्खणएँ ॥
अहिजायइ णयणाणदणह ।
जहिं पचसयइ वरणदणह ॥
तहिं आयहे कवणु पहुत्तणउ ।
तेणणउ वेयारमि अप्पणउ ॥

घत्ता—तो कड्ढेवि कण्णहो कणयदलु सिरिजुवरायपट्टु थविउ ।
इहु सामिउ पयहो महारहहो एण पियहे मणु सथविउ ॥९॥

तो मणे परितुट्ठ पहिट्ठाइ ।
विण्णिवि णियणयरु पइट्ठाइ ॥
किर गूढगब्भु उप्पणु सुउ ।
पुरे मेहकूडें आणदु हुउ ॥
पज्जुण्णकुमारु णाम कियउ ।
रुप्पिणिहरे ण मसाणु णियउ[1] ॥
सा जाम विउज्झइ ताम णवि ।

ऊपर नही चलता मूर्ख के शब्दो की तरह वार-वार स्खलित होता है। जब वह अपने टेढे, मुक्ता-मालाओं से अलकृत विमान से उतरा तो उसे वहाँ शिला हिलती (साँस लेने से) हुई दिखायी दी कि जहाँ चरमशरीरी कामदेव(प्रद्युम्न) था। जिस पत्थर ने उसे चाँप रखा था, वह फेंक दिया गया, और शिशु कचनमाला को दे दिया। नव कमलदल के समान आँखोवाली विलक्षण उसने उसे नही चाहा। (वह बोली)—जहाँ नेत्रो को आनन्द देनेवाले पाँच सौ श्रेष्ठ पुत्र हो वहाँ इसकी क्या प्रभुसत्ता होगी इसलिए मैं इसे अपना नही समझती।

घत्ता—तव कर्ण कनकदल कर विद्याधर ने वालक को श्री युवराज-पट्ट वाँध दिया, यह प्रजा का और मेरा स्वामी है—इस प्रकार प्रिया के मन को ढाँढस वँधाया ॥९॥

मन-ही-मन सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर वे दोनो अपने नगर मे प्रविष्ट हुए। प्रच्छन्न गर्भवाला वालक उत्पन्न हुआ, इससे मेघकूट नगर में आनन्द छा गया। वालक का नाम प्रद्युम्नकुमार रखा गया। रुक्मिणी के घर जैसे मरघट आ गया। वह (रुक्मिणी) जव जागी तो उसने पुत्र नही देखा। वह जोर से चीखी—'धनुष और हल करकमल मे धारण करने वाले हरि

---

१ थियउ

जोइउ जायवकुलगअणरवि ॥
धाहाविउ धायहो हरिवलहो ।
सारंग-सीरवर-करयलहो ॥
सिणि-सच्चइ-पिहु-पसेण-णरहो ।
सिवतणय-समुद्दविजय-जरहो ॥
अक्खोह थिमिय सायरवरहो ।
हिम-हरि-विजयाचल-णरवरहो ॥
धारण पूरण अहिणंदणहो ।
वसुएव माम महु णंदण हो ॥

घत्ता—कुढे लग्गहो केण वि अवहरिउ वालु कमलपुंजुज्जलु ।
तुम्हहं सव्वह पेक्खताह गउ महु आसा-पोट्टलउ ॥१०॥

हा केण पुत्तु महु अवहरिउ ।
णिरुवमगुण-रयणालंकरिउ ॥
हा एक्कसि दावइ मुहकमलु ।
पण्हविउ पुत्तु थिउ थणजुयलु ॥
उव्वलिउ मलिउ ण णिहालियउ ।
ण सणेहे लालिउ-पालियउ ॥
मइ पावहं दुक्खहं भायणए ।
णिद्देवए हयएँ अलक्खणए ॥
दुद्दमदाणववल-मद्दणहो ।
उच्छंगे ण दिट्ठु जणद्दणहो ॥
उच्चाएवि लइउ ण हलहरेण ।
णालिंगिउ अम्हहु कुलहरेण ॥
ण दसारुहेंहिं परिचुंवियउ ।

और बलभद्र दौडो। सिनि, सत्यकी, पृथु, प्रसेन, अर्जुन, शिवा के पुत्र समुद्रविजय जरद्कुमार अक्षोम्य, स्तमित, सागरवर, हिमगिरि, विजय, अचल, नरश्रेष्ठ धारण, पूरण और अभिनंदन, ससुर वसुदेव मेरे पुत्र के पीछे लगो। आप सब लोगो के देखते-देखते मेरी आशाओ की पोटली चली गयी।

हा किसने मेरे अनुपम गुणरूपी रत्नो से अलंकृत पुत्र का अपहरण किया? हा एकबार उसका मुखकमल दिखाओ। हे पुत्र, स्तनयुगल से दूध झरता है तुम पिओ। न उबटन किया न मला और न देखा, न स्नेह से पालन-पोषण किया। पापो और दु:खो की भाजन, भाग्यहीन आहत और लक्षणहीन मैंने दुर्दम दानव-बल का मर्दन करनेवाले जनार्दन की गोद मे उसे नहीं देखा। हलधर ने उछालकर उसे नही लिया और न हमारे कुलधर ने उसका आलिंगन किया। और न दशार्हों ने उसे चूमा। किसी ने मेरे पुत्र को मार डाला है, उसके प्राण लेते हुए

फेण वि महु पुत्तु विहजियउ[1] ॥
तहो जीविउ लितहे वुम्मइहे ।
किह सीसु ण फुट्टउ पयावइहे ॥

घत्ता—तहिं अवसरे धीरिय महुमहेण पुत्तु तुम्हारिउ ।
तहो पावहो दुक्कियगारहो सणि अवलोयणे अज्जुयिउ ॥११॥

ण मरइ सुह णदणु जइवि णिउ ।
केवलिहि आसि आएसु कियउ ॥
होसइ विअब्भवइ-सुयहे सुउ ।
वम्महु सुरकरिकर-पवर-भुउ ॥
दुग्गेज्झु अवक्खय-णद्धउ वि ।
ण मरइ सुरिद वज्जाहउ वि ॥
जाएवि जाएसइ कति कहिं ।
हउ हलहर वेवि सहाय जहिं ॥
तहिं अवसरि णवर समावडिउ ।
आयासहो णारउ ण पडिउ ॥
भवभीसिय तेण तुरतएण ।
किं रोवहि भइ जीवतएण ॥
अइमुत्तमहारिसि सिद्धि गउ ।
जिणु अणुपओइयउ ण कहइ तउ ॥
हउ ताम गवेसमि सयल-महि ।
सो जाम ण दिट्ठु गुण-मणि उवहि ॥

दुर्मति प्रजापति का सिर क्यो नही फूट गया ?

घत्ता—उस अवसर पर श्रीकृष्ण ने उसे (रुक्मिणी को) धीरज बँधाया कि तुम्हारा पुत्र जिसके भी द्वारा ले जाया गया है, उस दुष्ट अन्यायकारी को देखने मे मैं आज शनि के समान हूँ।

तुम्हारा पुत्र मरेगा नही, यद्यपि उसका अपहरण किया गया है । केवलज्ञानियो ने ऐसा आदेश किया है कि विदर्भपति की कन्या का पुत्र कामदेव ऐरावत के सूंड के समान प्रबल बाहुओवाला, अपक्षय से नद्ध होने पर दुर्ग्राह्य, देवेन्द्र के वज्र से आहत होने पर भी नही मरेगा । हे काते ! जाकर भी, वह कहाँ जाएगा कि जहाँ मैं और हलधर उसके सहायक हैं । उस अवसर पर मात्र यह बात हुई, कि नारद आकाश से आ टपके । तत्काल उन्होंने अभय वचन दिया कि मेरे होते हुए तुम क्यो रोती हो ? अतिमुक्तक मुनि ने सिद्धि प्राप्त कर ली है । जिनेन्द्र भगवान् अनुपयोगी कथन नही करते । मैं पृथ्वी पर तब तक खोज करूँगा कि जब तक गुण रूपी मणियो के समुद्र उसे नहीं देख लेता ।

---

१. अ—विडवियउ ।

घत्ता—गउ एम भणेप्पिणु देवरिसि पुव्वविदेहे णहगणेण ।
सीमधरसामि-समोयरणु जहिं सयभूसियउ सुरयणेण ॥१२॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयभूएवकए
पज्जुण्ण-हरण णामेण दहमो सग्गो ॥१०॥

घत्ता—इस प्रकार कहकर देवर्षि नारद आकाश के आँगन से पूर्व विदेह के लिए चल दिये कि जहाँ देववरो ने सीमंधर स्वामी के समोसरण को स्वय अलकृत किया था ।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव द्वारा विरचित
नेमिनाथचरित मे प्रद्युम्नहरण नाम का
दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१०॥

एयारहमो सग्गो

ताम कालसवरणिवहो उद्धद्ध रज्जुपरचक्कें।
एक्करहेण जि वम्महेण हउ तिमिरु णाइ तरुणक्कें॥
तो ताम[1] जुवाणभावें चढियउ।
ण सुरकुमार सग्गहो पडियउ॥
सुमणोहरि मेहसिगणयरे।
हरितणउ कालसवरहो घरें॥
वड्ढिउ सोलहवरिसइ गयइ।
जायइ अगइ विक्कममयइ॥
सोहग्ग-महामणि-रयणणिहि।
तहो को णिव्वण्णइ रुवणिहि॥
जसु केरा [2]परवड्ढिय-पसरा।
तिहुअण-असेस जगडति सरा॥
सो मयर केउ सइ अवयरिउ।
कर-चरणाहरणालकरियउ॥
परिसक्कइ ढुक्कइ जहिं जि जहिं।
तरुणीयणु तम्मइ तहिं तहिं जि तहिं॥
दीहरलोयण-सर-पहर-हय।
णियजणणि जि वहो अहिलासु गय॥

इतने में शत्रुसमूह ने कालसवर का राज्य छीन लिया। एकरथी कामदेव(प्रद्युम्न)ने उसे उसी प्रकार पराजित कर दिया, जिस प्रकार तरुण सूर्य अधकार को पराजित कर देता है। कुमार इस बीच यौवन भाव को प्राप्त हुआ, मानो कोई देवकुमार स्वर्ग से आ पडा हो। सुन्दर मेघकूट नगर मे, काल सवर के घर हरिपुत्र प्रद्युम्न बडा होने लगा। सोलह वर्ष बीत गए। जिसके अग पराक्रम से परिपूर्ण हो गए, जो सौभाग्य का महामणि और रूप की निधि था, प्रसार को प्राप्त हुए जिसके तीर समस्त त्रिभुवन को पीडित करते हैं, ऐसा कामदेव स्वय अवतरित हुआ है। हाथो और पैरो मे गहनो से शोभित वह जहाँ जहाँ जाता या पहुँचता, वहाँ वहाँ युवतीजन आर्द्र हो उठती। लम्बे नेत्र रूपी तीरो से आहत उसकी अपनी माता(कचनमाला) की उस पर इच्छा हो गयी।

---

१ अ—ताण। २ अ—परविट्टिय-पसरा।

घत्ता—कामे कामुक्कोयणेण कलकोयल [1]मायलहे।
अगहो लाइउ रणरणउं अत्थक्कए कंचणमालहो ॥१॥

परमेसरि पीण पओहरीहिं।
बोल्लइ समाणु णियसहयरीहिं ॥
हलि लवलि-लवंगिए उप्पलिए।
हलि कक्कोलिए जाइहलिए ॥
कप्पूरिए कुंकुमकद्दमिए।
नवकुसुमिए मउलिए पल्लविए ॥
किण्णरिए किसोरि-मणोहरिएँ।
आलाविणि-परहुय-महुयरिएँ ॥
महु चित्तहो [2]भुंभुलभोलाहो।
पडिहाइ ण झुणि हिंदोलाहो ॥
णउ भास हें विविह पयारियहें।
णउ कउहहें ओसाहारियहे ॥
णउ ढक्कराय-टक्कोसियहे।
सामीरय-मालय-कोसियहे ॥
लइ पचमु पंचमु-कामसरु।
जो विरहिणिमण-संतावयरु ॥

घत्ता—विघणसीलउ-मारणउ सहि सत्थे पचमु गाइयउ।
कंचणमालहे वच्छयले वम्महेण णाइ सरु लाइयउ ॥२॥

पक्खोडइ णीवी-बंधणउं।
ढिल्लारउ करइ सइ परिघणउ[3] ॥
दरिसावइ वम्महो घरसिहरु।

घत्ता—सुन्दर कोयल की तरह मतवाली कचनमाला के शरीर मे काम की उत्कंठा उत्पन्न करनेवाले कामदेव ने शीघ्र बेचैनी उत्पन्न कर दी ॥१॥

स्थूल पयोधरो वाली वह अपनी सहेलियो से कहती है, "हला! लवली, लवंगी तथा उत्पला हला! ककोली, जातिफला, कर्पूरी, कुकुम, कर्दमा, नवकुसुमिता, पल्लविता, किन्नरी, किशोरी, मनोहरी, आलापनी, परभृता, मधुरा, हिंदोलराग की ध्वनि मेरे मदविह्वल चित्त को अच्छी नही लगती। विविध प्रकार की भाषा, ककुभ, ओसाहारी, टक्कराग, टक्कोशिराग, सामीरय और मालकोश की ध्वनि अच्छी नही लगती। तो यह लो पंचम पचमकामसर (काम स्वर/सर) है, जो विरहिणी के मन के लिए सतापकर है।

घत्ता—हे सखी! विघनशील मारण को शास्त्र मे पाँचवाँ राग गाया गया है। कंचनमाला के वक्षस्थल मे मानो कामदेव ने तीर मार दिया हो ॥२॥

वह नीवी की गाँठ खोलती है, स्वय अपने परिधान को ढीला करती है। कामदेव के गृह-

---

१ अ—वायालहो। २ अ ब—भुभर। ३. अ— परिहणउ।

रोमावलि-तिवलि थणद्धयरु ॥
आमेल्लइ-गिण्हइ-वप्पणउ ।
सयवार णिहालइ अप्पणउ ॥
गलि रसणा दामु परिट्ठविउ ।
करि णेउरु ककणु कण्णे किउ ॥
कमि कठउ पुट्ठिए [1]कण्णरसु ।
मुहि अजणु लोयणे लक्खरसु ॥
परिचिंतइ वसणु अहिलसइ ।
वीहरउ पुणु वि पुणु णीससइ ॥
जरु पेल्लइ मेल्लइ डाहु णवि ।
आहारभुत्ति ण सुहाइ कवि ॥
णिएवज्ज-लज्ज परिहरइ मणे ।
उम्महिँहि भज्जइ खणे जि खणे ॥

घत्ता—खणे उप्पज्जइ कलमलउ खणे मणु उल्लोलहिँ धावइ ।
वाहिहे णउखी भगि कवि एक्कुवि उसहु ण पहावइ ॥३॥

तो विरह वेयण-विहाणिएँ ।
सहि कावि पपुच्छिय राणियए ॥
ज सुवरु एत्यु मज्झु घरहो ।
त किं महु किम कासु वि परहो ॥
पणवेप्पिणु सहयरि विण्णवइ ।
कच्छउ कच्छियहि जि सभवइ ॥
जो तरु वल्लरिहि रक्ख करइ ।
अवसाणि तहो जि फलु उवयरइ ॥

शिखर को दिखाती है, जो रोमावली त्रिवलि और स्तन के आधे भाग को धारण करते हैं। वह दर्पण को छोडती है और ग्रहण करती है, सौ वार अपने को देखती है। करधनी को वह गले मे डाल लेती है, हाथ मे नूपुर और कान मे ककण धारण करने लगती है। पैरो मे कठा और पीठ पर कर्णफूल। मुख पर अजन और आँखो मे लाक्षा रस। वह चिन्ता करती है, देखना चाहती है, फिर वार वार लम्बे उच्छ्वास लेती है। ज्वर पीडा देता है और तपन नही छोडता। कोई भी आहार-मुक्ति उसे अच्छी नही लगती। निरवद्य लज्जा का वह अपने मन मे परित्याग कर देती है। उन्माद से क्षण क्षण मे नष्ट होती है।

घत्ता—एक क्षण मे बेचैनी उत्पन्न होती है, एक क्षण मे मन उत्सुकताओ मे दौडता है। उस व्याधि की अनोखी भगिमा यह थी कि एकाकी औषधि का प्रभाव नही होता था ॥३॥

विरह वेदना से व्याकुल रानी ने किसी सखी से पूछा—"जो यह सुदर मेरे घर मे है, वह मेरा है या किसी दूसरे का ?" तव सहेली प्रणाम करके निवेदन करती है—"कच्छ कच्छा पर ही सभव होता है। जो तरु लता की रक्षा करता है, अन्त मे उसी पर फल अवतरित होते हैं।" इस

---

१. अ—वणवसु ।

कोक्किकउ कुमारु त मणि धरिवि ।
पण्णत्ति समप्पिय पिउ करिवि ॥
ज पेसणु देव्वउ किंपि मई ।
त पडिवज्जेव्वउ सयलु पइ ॥
अण्णहिं दिणे पडिहक्कारियउ ।
पल्लकोवरि वइसारियउ ॥
कच्छिउ ओरेसरु सुहय लहु ।
एक्कसि आलिगणु देहि महु ॥

घत्ता—छत्तइ वसुमइ वइसणउ लइ हय-गय-रयणाइं ।
तुहु पइ, हउ महएवि, जइ तो सग्गें किज्जइ काइं ॥४॥

णिय-देहरिद्धि जइ वल्लहिय ।
तो रायलच्छि लइ मइ सहिय ॥
पहु होहि समाणु पुरदरहो ।
विसु सचारिज्जइ सवरहो ॥
तहे वयणु सुणेवि कुसुमाउहेण ।
बोल्लिज्जइ रुप्पिणि-तणुरुहेण ॥
एउ काइ अजुत्तु-वुत्त-वयणु ।
तुहु जणणि कालसवरु-जणणु ।
सिरु छिज्जइ जइवि अज्ज मरमि ।
दुक्कम्मइ विण्णिवि णउ करमि ॥
कचणमालए णिब्भच्छियउ ।
तुहु महु उयरे जि ण अच्छियउ ॥
वणे लद्धउ केण वि कहिं व हुउ ।
कहो तणिय माय कहो तणउ सुउ ॥
तें तेहउ ताहे वयणु सुणेंवि ।

बात को मन मे धारण कर उसने कुमार को बुलाया और प्रिय करके उसे प्रज्ञप्ति विद्या सौंप दी और कहा, "मैं जो भी आज्ञा दूं वह सब तुम्हारे द्वारा स्वीकार की जाए।" दूसरे दिन उसने कुमार को फिर बुलाया, और पलग के ऊपर बिठाया। "ओ सुभग, शीघ्र कच्छ को हटाओ और एक बार मुझे आलिगन दो।"

घत्ता—छत्र, धरती, कुबेर, घोडा, हाथी और रत्न ले लो। यदि तुम पति और मैं महादेवी होती हूँ तो स्वर्ग से क्या ? ॥४॥

यदि तुम्हें अपनी देह-ऋद्धि प्रिय है तो मुझ सहित राजलक्ष्मी लो। इन्द्र के समान राजा बनो। कालसवर के लिए विष का सचार कर दो।" उसके वचन सुनकर रुक्मिणी के पुत्र कामदेव ने कहा—"यह तुमने अयुक्त वचन क्यो कहा ? तुम माँ हो, और कालसवर पिता हैं। सिर चाहे काट दिया जाए, या आज मर जाऊँ, मैं दोनो ही दुष्कर्म नही करूँगा।" तब कचनमाला ने उसे झिडका—"तुम मेरे उदर मे नही थे। किसी के द्वारा कही पैदा हुए, वन मे तुम प्राप्त हुए। किस की माँ और किसका पुत्र ?" उसके वैसे वचन सुनकर कामदेव अपने अगो को

पभणइ अणगु अगइ धुणेवि ॥

घत्ता—पइ हउ लालिउ-ताडियउ-परिपालिउ णवतरु जेम ।
विण्ण विज्ज थणु पाइयउ भणु जणणि ण वुच्चइ केम ॥५॥

जउणवणु-णवणु वणुदलणु ।
अइबाल कमल-कोमल-चलणु ॥
गउ वीर महारहवर चढेवि ।
थिय कणयमाल मचए पडिवि ॥
णहणियर-विचारिय-थणय-जुअ ।
वाहयलोहाइय-णयण दुअ ॥
पिहिवीसरु ताव समोयारिउ ।
सामत सहासहि परियरियउ ॥
पिए पुच्छिय दुम्मण काइ थिय ।
तउ तणए एह अवत्य किय ॥
ज एम णरिवहो अक्खियउ ।
तेण वि करवालु कडक्खियउ ॥
तहि अवसरे विज्जुदाढु चवइ ।
खत्तियहो अखत्त ण सभवइ ॥
किं रह-गय-तुरय-जोह-वलेण ।
जइ हम्मइ तो केण वि छलेण ॥

घत्ता—सिरिमेसइरि-मल्लइरिहि सूयर-णिसियर-कइ-णायहि ।
तेहि णिहम्मइ वालु रणे आएँहि अवरेंहि उवायहि ॥६॥

थिउ णरवइ णिक्किय णिवारियउ ।
सिसु अग्गिकुडि पइसारियउ ॥

धुनता हुआ कहता है—

घत्ता—"मैं तुम्हारे द्वारा प्यार किया गया, ताडित किया गया। नववृक्ष की तरह परिपालित हुआ। तुमने विद्या दी, दूध पिलाया। वताओ तुम्हें माँ किस प्रकार न कहा जाए ?"॥५॥

दानवो का दलन करनेवाला, अत्यन्त नव कमल के समान कोमल चरणवाला, यदुनन्दन का नन्दन (प्रद्युम्न) वीर एक बडे रथ पर चढकर चला गया। जिसने नखसमूह से अपने दोनो स्तन विदीर्ण कर लिए हैं तथा आँसुओ से दोनो नेत्र लाल हैं, ऐसी कचनमाला पलग पर पडकर रह गई। तव राजा हजारो नौकर-चाकर तथा सामतो के साथ वहाँ प्रविष्ट हुआ। प्रिय ने पूछा—"तुम अनमनी क्यो हो ?" [उसने कहा] "तुम्हारे वेटे ने यह हालत की है।" जव राजा से यह कहा गया, तो उसने अपनी तलवार खडखडाई। उस अवसर पर विद्युत्दंष्ट्रा ने कहा कि क्षत्रिय से अक्षत्रिय आचरण नही हो सकता ? रथ, गज, अश्व और योद्धाओ की ताकत से क्या ? यदि मारना है तो किसी भी छल से !

घत्ता—श्री मेषगिरि, मल्लगिरि, सूकर, राक्षस, वानर और नाग, इन उपायो या किन्ही दूसरे उपायो से उस वालक को युद्ध मे मारा जाए ॥६॥

मना करने पर राजा निष्क्रिय बैठ गया। शिशु को अग्निकुड मे प्रविष्ट कराया गया। अग्नि

डहणेण वि तहु डाहोत्तरइ ।
दिण्णइ सोवण्णइ अवरइं ॥
णिउ मज्झे मेसमहीहरहु ।
वज्जोवसम विणिवायकरहु ॥
वे वज्जिउ तेहिं समप्पियउ ।
तिहुअण-जण णयण-मणप्पियउ ॥
साहिउ वराहु अवराहुकरु ।
तें दिण्णु संखु तहो भीमसरु ॥
जिउ रक्खसु तेण वि दिण्ण गय ।
समहारह सकवय जणिय भय ॥

घत्ता—सुरेण कवित्थ-णिवासिएण मणि-किरण-सहासु-भिण्णउ ।
विण्णि णहगण गामिणिउ पाउयउ कुमारहो दिण्णउ ॥७॥

थोवतरि विप्फुरमाणमणि ।
देवाहं पि दुद्दमु-दमिउ फणि ॥
तेण वि मरगयकर-विच्छुरिय ।
ढोइज्जइ भूय-मुहिय-छुरिय ॥
धणु-ससरु समडलग्गु फरउ ।
कामगुत्थलउ ससेहरउ ॥
विणिवारिय दिवसयरायवेण ।
देवें कणयज्जुणपायवेण ॥
दिज्जति सुरासुर-डमर-करा ।
धणु-कउसुमु कउसुमुपंचसरा ॥
खीरोवणि मक्कड तेण जिउ ।
सव्वोसहि मायामउ लहिउ ॥

ने भी उसे दहन से रहित सुवर्ण-वस्त्र दे दिये । उसे मेषमहीधर के भीतर ले जाया गया जो वज्र के समान निपात करनेवाला था ।

उन्होंने उसे दो वस्त्र दिये जो त्रिभुवन के जनो के नेत्रो के लिए प्रिय थे । उसने अपराध करनेवाले वराह को सिद्ध कर लिया । उसने उसे भीमस्वर करनेवाला शख दिया । उसने राक्षस को जीता । उसने भी हाथी दिया, तथा जो महारथ और कवच सहित था और भय उत्पन्न करनेवाला था ।

घत्ता—कपित्थ पर निवास करनेवाले देव ने मणि की हज़ारो किरणो से चमकती हुई, आकाशगामिनी दो पादुकाएँ कुमार को प्रदान की ॥७॥

थोडी देर मे, जिसका मणि चमक रहा है ऐसे देवो द्वारा भी दुर्दम्य नाग का उसने दमन कर दिया । उसके द्वारा भी मरकत मणि की किरणो से व्याप्त पिशाचमुखी छुरी भेंट मे दी गयी । तीर सहित धनुष, तलवार सहित स्फरक (अस्त्र विशेष) और मुकुट सहित काम की अगूठी । सूर्य के आतप का निवारण करनेवाले स्वर्णवृक्षदेव ने कुसुमधनुष और कुसुम के पांच तीर दिये जो देवासुरो को भय उत्पन्न करनेवाले थे । क्षीरवन मे उसने वानर को जीता और

सूरप्पह-रह-विमाणु-पवलु ।
सियच्छत्त-सेयचामर-जुयलु ॥
गउ विउल वावि तहि मयरु जिउ ।
उवलक्खणु णवर धयग्गे किउ ॥

घत्ता—वइरिहिं अमरिस-कुद्धएहिं सिलदिज्जइ वाविहि झपणउ ।
तावहि वुज्झिउ वम्महेण जिह चिंतिउ महु अहियत्तणउ ॥८॥

अणाउलें वालें तुलिय सिला ।
लक्खणेण आसि ण कोडिसिला ॥
पण्णत्ति-पहावें वइरि जिय ।
असमत्थ-णिरत्थ-असत्थ किय ॥
उद्ध-अद्ध-ओवद्ध-रुद्ध किह ।
थिय पायवि वाउल विहय जिह ॥
कह कहवि तहिं चुक्कु एक्कु जणु ।
गउ संवर-भवणु पवणगमणु ॥
णरवइ तुह णदण णट्ठविय ।
उव्वधवि सयल परिट्ठविय ॥
परिकुविउ कालसवरु मणेण ।
पट्ठविय असेसु सेण्णु खणेण ॥
तुरमाण तुरगारूढ भड ।
वाहियरह चोइय हत्थिहड ॥
सेणावइ तहिं सुघोसु पवरु ।
वाउद्धरु वाउवेउ अवरु ॥

उससे मायामयी सर्वोषधि प्राप्त की। सूर्य की प्रभा के समान रथ और प्रबल विमान, श्वेत छत्र और दो चामर भी। वह विशाल वावडी पर गया और वहाँ मगर को जीता और उसे केवल अपनी ध्वजा का चिह्न बनाया।

घत्ता—असहिष्णुता के कारण क्रुद्ध शत्रुओ ने वावडी को ढकने के लिए शिला रख दी। तब तक कामदेव अपने मन मे समझ गया कि किस प्रकार मेरा अहित सोचा गया है ॥८॥

अनाकुल उस वालक ने शिला उठा ली, जो लक्षण से कोटिशिला थी। उसने प्रज्ञप्ति विद्या के प्रभाव से शत्रुओ को जीत लिया और उन्हें असमर्थ, निरर्थ और अशस्त्र बना दिया। उठे हुए, आधे बंधे हुए और अवरुद्ध वे ऐसे मालूम होते थे जैसे वृक्ष पर वाउल पक्षी स्थित हो। वहाँ किसी प्रकार एक आदमी बच गया। पवन की गतिवाला वह कालसवर के घर गया, (और बोला), राजन्! तुम्हारे पुत्र नष्ट हो गये हैं, वे सब बाँधकर रख दिए गये हैं। कालसवर अपने मन मे कुपित हुआ। एक क्षण मे उसने समूची सेना भेज दी। योद्धा शीघ्र घोडो पर आरूढ हो गये, रथ हाँक दिये गये और गजघटा प्रेरित कर दी गयी। वहाँ सुघोष प्रवर सेनापति था तथा दूसरा वायु के समान उद्धत वायुवेग था।

घत्ता—रणरसिएं कियकलयलेण वज्जिय पडु पडह वमालें ।
वेढिउ वम्मह साहणेण विंज्झहरि जेम घण जालें ॥९॥

[1]उत्थरिउ वालरिउ-साहणहो ।
रहतुरय-महग्गयवाहणहो ॥
ण गिम्ह-दवग्गि-वसवणहो ।
ण गरुड्ड-भुयगविसमगणहो ॥
णं करिसंघायहो पचमुहु ।
णं जगहु सणिच्छरु थिउ समुहु ॥
गय दमइ ण दम्मइ गयवरेंहि ।
हय हणइ ण हम्मइ हयवरेंहि ॥
रहण दलइ दलिज्जइ णवि रहेंहिं ।
विक्खरइ सिरइ दसदिसिवहेंहिं ॥
पण्णत्ति-पहावें सयलुवलु ।
मदरेण महिउ ण उवहिजलु ॥
ण भग्गु गइंदें कमलवणु ।
साहारु ण वधइ सरणमणु ॥
हय-गय-रह-णर-णरिंद दलिय ।
सयलेंहि मि विउल वावि भरिय ॥

घत्ता—भरिय ढकणु देविसिल अण्णु पडिएतु णिहालइ ।
जमु करतु कलेवडउ सालण णाइ पडिवालइ ॥१०॥

घत्ता—सेना ने कामदेव को घेर लिया, मानो मेघजाल ने विंध्यागिरि को घेर लिया हो ॥९॥

वह बाल शत्रु जिसके पास रथ, अश्व, महागज और वाहन थे, ऐसे सैन्य के ऊपर इस प्रकार उछला मानो बासों के वन पर ग्रीष्मवह्नि उछली हो। मानो सांपो के विषम समूह पर गरुड हो, मानो सिह हाथियो के समूह पर हो, मानो विश्व के सम्मुख शनि हो। गज दमन नही करता, और न गजवरों के द्वारा वह दमित होता है। इसी प्रकार अश्व न तो मारता है, और न अश्व-वरो के द्वारा आहत होता। रथ दलन नही करता, और न रथो के द्वारा दला जाता है। दशो दिक् पथो मे सिर बिखरे हुए हैं। प्रज्ञप्ति के प्रभाव से समस्त सेना उसी प्रकार मथ दी गयी जिस प्रकार मदराचल से समुद्र मथ दिया जाता है, मानो गजेन्द्र ने कमलवन को नष्ट कर दिया हो। शरण की इच्छा रखनेवाले सैन्य को ढाढस नही बँधता। अश्व, गज, रथ, नर और राजा धराशायी हो गये, उन सबके द्वारा जैसे बावडी भर दी गयी।

घत्ता—भरी हुई बावडी पर शिला ढककर वह दूसरे शत्रु को उसी प्रकार आते हुए देखता है जैसे कलेवा करता यम सालन (कढी की तरह एक खाद्य) की प्रतीक्षा करता है ॥१०॥

---

1 अ—उवडियउ।

अयरेक्फेण केणवि किंकरेंण ।
कठपखलियक्खर जपिरेण ॥
अक्खियउ कालोत्तर सवरहो ।
धयधवल-छत्त-छइयवरहो ॥
परमेसर-सेण्ण-परज्जियउ ।
वइवसपुरवहेण विसज्जियउ ॥
तो राए अमरिस-कुद्धएण ।
सामत वेयि जसलुद्धएण ॥
ते भूमिकप महिकपभड ।
समुहउ सतुरग सइत्थिहड ॥
पट्ठविय पधाइय भिडियरणे ।
ण पवण-हुआसण सुक्कवणे ॥
जे वम्मह मारहु भणेवि गय ।
ते विज्जापण्णइ सयल हय ॥

घत्ता—जिणिव तिवारउ वइरिवलु अण्णहो वि दिट्ठि पुणु ढोइयउ ।
जमु तिहि कवलहि अघाइउ णवि ण कवलु चउत्थउ जोइयउ ॥११॥

पडिवत्त कालसवरहो गया ।
सामिय असेस सामत हया ॥
एवहि विहि कज्जह एक्कु करे ।
अह कहि यि णासु अह भिडु समरे ॥
वलु-सयलु कुमारें णट्ठविउ ।
पेयाहिव-पथे पट्ठविउ ॥
त णिसुणेवि णरवइ गीढभउ ।
तहे कचणमालहे पासु गउ ॥
ढोयहि पण्णन्ति दवत्ति महु ।

कण्ठ से लडखडाते हुए अक्षर वोलने वाले किसी एक और अनुचर ने, ध्वजो और धवल छत्रो से आकाश को आच्छादित करनेवाले कालसवर से कहा, "हे परमेश्वर, सैन्य पराजित हो गया । और वह यमपथ पर भेज दिया गया है ।" तव, असहिष्णुता से क्रुद्ध होते हुए, यश के लोभी राजा ने रथ, अश्व और गजघटा के साथ भूमिकप और महीकप योद्धा भेजे । वे दौडे और युद्ध मे भिड गए, मानो सूखे हुए जगल मे पवन और आग हो । जो कामदेव को मारने की कहकर गये थे, वे सव प्रज्ञप्ति विद्या के द्वारा आहत हो गये ।

घत्ता—इस प्रकार तीन वार शत्रुवल को जीतकर उसने फिर दूसरे पर दृष्टि डाली । तीन कौर से सतुष्ट नही होते हुए यम ने मानो चौथे कौर की प्रतीक्षा की ॥११॥

कालसवर के पास फिर समाचार गया—"हे स्वामी, सभी सामन्त मारे गये । अव दो कामो मे से एक कीजिए, या तो कही भाग जाइये या फिर युद्ध मे लडिए । कुमार ने सारे सैन्य को नष्ट कर दिया और उसे यम के रास्ते लगा दिया ।" यह सुनकर, राजा कालसवर डरकर कचनमाला के पास गया (और वोला)—"मुझे शीघ्र प्रज्ञप्ति विद्या दो जिससे मैं शत्रु

वावरंमि जेण अरिएण सहु ॥
पच्चुत्तरु दिण्णु कवडु करिवि ।
विज्जाहरणाह विज्ज हरिवि ॥
णिय मउ तेण तुह णंदणेण ।
आसकिउ णरवइ णियमणेण ॥
पुण्णक्खए पुण्ण-विवज्जियउ ।
विज्जउ वि ण होंति सहेज्जियउ ॥

घत्ता—अहवइ रणे णिवसताहो केसरिहो कवण सहिज्जउ ।
छुडु धीरत्तणु सुपुरुसहो भुयदड जि होति सहिज्जउ ॥१२॥

विज्जाहरणाहु एम भणेवि ।
णिय-जीउ तिणयसमाण गणेवि ॥
अवसेसु सेण्णु सण्णहेवि गउ ।
जहि दुम्महु वम्महु लद्धजउ ॥
ते भिडिय परोप्परु दुव्विसह ।
ण गयणहो णिवडिय कूरगह ॥
ण उद्धसुड सुरमत्त गया ।
णं हरि दूरुज्झिय-मरणभया ॥
ण सलील-पगज्जिय पलयघण ।
णं फणिमणि विप्फारिय-फारफण ॥
पहरति अणेयहिं आउहेहिं ।
पिसुणेहि व परविंधण मुहेहिं ॥
विहि एक्कु वि जिज्जइ जिणइ णवि ।
जम धणय पुरदर सोम रवि ॥
वोल्लति परोप्परु गयणे थिय ।

के साथ लड सकूं।" उसने कपटकर उत्तर दिया, "हे विद्याधर स्वामी, तुम्हारे उस पुत्र ने विद्या बलपूर्वक छीनकर ले ली है।" राजा अपने मन मे आशकित हो उठा कि पुण्य का क्षय होने पर मैं पुण्यविहीन हूँ। विद्याएँ भी तब सहायक नही होती।

घत्ता—अथवा वन मे निवास करने वाले सिंह का कौन सहायक होता है? धीरज और भुजदण्ड ही सत्पुरुष के सहायक होते हैं ॥१२॥

विद्याधर-स्वामी यह कहकर, अपना जीवन तिनके के बराबर समझकर, समूची सेना तैयार कर वहाँ गया जहाँ विजय प्राप्त करनेवाला कामदेव था। असह्य वे दोनो आपस मे लडने लगे। मानो आकाश से दो क्रूर ग्रह गिरे हो, मानो देवो के सूंड उठाए हुए मतवाले हाथी हो, जिन्होंने मृत्युभय दूर से छोड दिया है ऐसे सिंह हो, मानो लीलापूर्वक गरजते हुए प्रलयमेघ हो, मानो अपने विस्तृत फन फैलाए हुए फणमणि हो। वे, दुष्ट की तरह जिनके मुख दूसरो को काटनेवाले हैं, अनेक हथियारो से प्रहार करते हैं। दोनो मे से, न तो एक जीता जाता है, और न जीतता है। यम, धनद, देवेन्द्र, सोम और रवि आकाश पर स्थित होकर कहते है, "पुत्र और

गुय जणणहं अविणये पत्ति थिय ॥

घत्ता—ताम पराइउ वेयर्गिसि म वेवि अकारणे जुज्झहो ।
करेवि परोप्पर गोत्तागउ का कवण पत्ति जहिं सुज्झहो ॥१३॥

विणिवारिय विण्णवि णारएण ।
जिह घरियमेह अगारएण ॥
मघरोहिणि उत्तरपत्तएण ।
तिह तावसेण ढुक्कन्तएण ॥
ओसारिय मयर कुसुमसर ।
जुज्झतहं जगे जपणउ पर ॥
सुयजणण हो विग्गहु कवणु किर ।
दुल्लंघण लंघिय तवसि-गिर ॥
थिय विण्णिवि रणु उवसघरिवि ।
पुत्ततणु तायत्तणु करेवि ॥
पण्णत्ति पहावेण अतुल बलु ।
उट्ठविउ कालसवरहो बलु ॥
तो भणइ महारिसि कित्तिएण ।
हुउ एत्यु पराइउ एत्तिएण ॥
एहु चरम देहु सामण्णु णवि ।
मय रद्धउ हरिकुल गयण रवि ॥

घत्ता—असुरें णिउ पइ वड्ढावियउ सीमघरसामे सिट्ठउ ।
एहु सो णदणु रुप्पिणिहे मइं कहवि किलेसें दिट्ठउ ॥१४॥

पिता ने अविनय को स्थिरता दी है।"

घत्ता—इतने मे वहाँ नारद पहुँचे (और बोले)—"तुम दोनो अकारण मत लडो, परस्पर गोत्र का नाशकर वह कौन-सी स्थिति है जहाँ तुम शुद्ध होते हो ?॥१३॥

नारद ने दोनो को रोक दिया। जिस प्रकार मघा और रोहिणी के उत्तर मे प्राप्त मगल मेघो को रोक देता है, उसी प्रकार पहुँचते हुए मुनि नारद ने कालसवर और कामदेव को हटा दिया (यह कहते हुए) कि लडते हुए दुनिया मे तुम्हारी निन्दा होगी। पिता और पुत्र के बीच युद्ध कैसा ? तपस्वी की वाणी दुलंघ्य का भी लघन करनेवाली होती है। दोनों युद्ध बन्द करके स्थित हो गये, पितृत्व और पुत्रत्व का सम्मान करते हुए। प्रज्ञप्ति के प्रभाव से, कालसवर का अतुल बलसैन्य उठ खडा हुआ। तव महामुनि कहते हैं—कि यह किस तरह यहाँ पहुँच सका ? यह चरमशरीरी है, सामान्यजन नही है, कामदेव और हरिवशरूपी आकाश का चन्द्रमा है।

घत्ता—सीमघर स्वामी ने कहा है कि असुर के द्वारा ले जाया गया और तुम्हारे (कालसवर के) द्वारा बडा किया गया यह रुक्मिणी का वही पुत्र है जिसे मैंने बडी कठिनाई से किसी प्रकार देख लिया ॥१४॥

पेसिउ णरवइ णियपट्टणहो।
रिसि अक्खइ रुप्पिणि-णंदणहो ॥
किं वहुवें वाया-वित्थरेण।
जिह अक्खिउ सिरिसीमंधरेण ॥
जिह परिभमिओसि भवतरइ।
पावतउ दुक्खपरंपरइ ॥
जिह केसव-कंतहिं संभविउ।
जिह धूमकेउ दाणवेण णिउ ॥
जिह कहिमि सिलायलि सणिमिउ।
जिय खयरें पिय हे समल्लविउ ॥
जिह सोलह वरिसइं ववगयइं।
जिह सिद्धइं विज्जाहर पयइं ॥
जिह वइरि-सेण्णु सरें जज्जरिउ।
जिह कंचनमाला-दुच्चरिउ ॥
जिह पहु-कोपग्गि-समणं गयइ।
जिह लद्धइं कामएवपयइं ॥

घत्ता—तिह सयलु वि वुज्झियउ लहु जाहु देहि अवरुडणु।
जाम भाम णउ रुप्पिणिहो सइ भुएहिं करइ सिर-मुंडणु ॥१५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयम्भूएवकए पज्जुण्ण-
लीलावण्णणो णाम एयारहमो सग्गो ॥११॥

राजा कालसवर को अपने घर भेज दिया गया। महामुनि रुक्मिणी के पुत्र से कहते हैं—"बहुत वाणी के विस्तार से क्या, जिस प्रकार श्रीसीमधर स्वामी ने कहा है, जिस प्रकार तुम जन्मान्तरो मे घूमे हो और दु ख-परम्परा को प्राप्त हुए हो, जिस प्रकार नारायण के तेज से उत्पन्न हुए हो, जिस प्रकार धूमकेतु दानव के द्वारा ले जाये गये, जिस प्रकार शिलातल पर रखे गये, जिस प्रकार सोलह वर्ष बीते, जिस प्रकार विद्याधर पादुकाएं सिद्ध हुईं, जिस प्रकार तीर से शत्रु-सैन्य को जर्जर किया, जिस प्रकार कंचनमाला का दुश्चरित था, जिस प्रकार राजा की क्रोधाग्नि शान्त हुई और जिस प्रकार कामदेव का पद स्वीकार किया,

घत्ता—वह सब जान लिया। अब शीघ्र जाओ और (माँ को) आलिंगन दो, कि जब तक सत्यभामा अपने हाथ से रुक्मिणी का मुण्डन नही करती।" ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित महाकवि स्वयभूदेव द्वारा विरचित अरिष्टनेमिचरित मे प्रद्युम्नकी लीला-वर्णन नामक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥११॥

बारहमो सग्गो

पवरविमाणारूढु पचल्लु कुमारु गुरु वइ ।
सच्चहे छायाभगु रुप्पिणिहे मणोरहु णावइ ॥

छत्तिय-भिसिय-कमंडल धारउ ।
पुच्छिउ वम्महेण रिसिणारउ ॥
कहि-कहि ताय तणुतावणु ।
किह मायहे भद्दावणु ॥
भणइ महामुणि किं वित्थारें ।
सुणु अक्खमि तं जेण पयारें ॥
सच्चहाम महएवि पहिल्ली ।
रुप्पिणि-रुप्पिणि पुणु पच्छिल्ली ॥
ताह विहि मि चदविय णामह ।
हुय होड तुह मायरि भामह ॥
जाहि जि जेट्ठपुत्तु परिणेसइ ।
सो मुंडिए सिरि पाउ ठवेसइ ॥
कुविउ कामु गुणगण गरुयारी ।
का परिहवइ जणेरि महारी ॥
तहो तोडमि सिरु विरसु रसतहो ।
सरणु पवज्जइ जइवि कयतहो ॥

विशाल विमान पर आरूढ़ कुमार चला । वह ऐसा शोभित होता है जैसे सत्यभामा की कान्ति का भग और रुक्मिणी का मनोरथ हो । छत्र, आसन और कमण्डलु को धारण करनेवाले मुनि नारद से कामदेव ने पूछा—"हे तात ! कहिए कहिए, शरीर को सताप पहुंचानेवाला माता का मुण्डन क्यो ?" महामुनि कहते हैं, "विस्तार से क्या ? सुनो, मैं कहता हूँ कि जिस कारण मुण्डन होना है । सत्यभामा पहली पत्नी है । रुक्मिणी, रुक्मिणी बाद की पत्नी है । यश से अकित नाम वाली तुम्हारी माँ और सत्यभामा दोनो मे यह होड हुई कि जिसका जेठा पुत्र विवाह करेगा वह दूसरी के मुंडे हुए सिर पर अपना पैर स्थापित करेगी ।" यह सुनकर कामदेव कुपित हो गया—गुणसमूह से महान् मेरी माँ का पराभव कौन कर रहा है ? मैं, बुरी तरह चिल्लाते हुए, उसका सिर तोड दूंगा । भले ही वह यम की शरण मे चला जाए ।

घत्ता—एम भणेवि कुमारु सचलिउ विज्जापाणे ।
वीसइ णहयले जतु ण रावणु पुप्फविमाणे ॥१॥

चलिउ महारिसि समउ कुमारें ।
ण मयलछणु सहु सवितारें ॥
विण्णिवि तेअवत उवसोहिय ।
ण णहभवणे पईवा बोहिय ॥
पट्टणु ताव दिट्ठु कुरुणाहहो ।
कलिकालहो कलुस सणाहहो ॥
णिवडिउ सग्गखडु ण तुट्टेवि ।
थिउ धणयधाम विच्छुट्टिवि ॥
णाइ अणगणयरु आवासिउ ।
सुदर सुरवरपुरहो पासिउ ॥
जहि पायार णहगण लघा ।
गुरुउवएस जेम दुल्लघा ॥
जहि सुदर-मदिरइ अणेयइ ।
चदाइच्च-समप्पह-तेयइ ॥
केत्तिउ वार-वार वोल्लिज्जइ ।
हत्थिणायउर कहो उवमिज्जइ ॥

घत्ता—तहि पर एत्तिउ दोसु हरिवसमहद्दह-खोहणु ।
दुम्मडु दुण्णयवतु ज वसइ दुट्ठु दुज्जोहणु ॥२॥

णयरु णिएँवि णियरहसु ण रक्खइ ।
पुच्छइ वालु महारिसि अक्खइ ॥

घत्ता—जिसके हाथ मे विद्या है ऐसा कुमार इस प्रकार कहकर चला। आकाश मे जाते हुए वह ऐसा मालूम होता है मानो पुष्पक विमान मे रावण हो ॥१॥

कुमार के साथ महामुनि भी चले, मानो सूर्य के साथ चन्द्रमा हो। दोनो ही तेजस्वी और शोभित थे, मानो आकाश के भवन मे प्रदीप आलोकित कर दिये गये हो। इतने मे कलिकाल, कलक से युक्त कुरुराज(दुर्योधन) का नगर दिखाई दिया, मानो स्वर्णखण्ड ही टूटकर गिर पडा हो, मानो अलग हुआ कुबेर का घर हो, मानो कामदेव का नगर वस गया हो। सुन्दर सुरपुर के चारो ओर आकाश के आँगन को लाँघने वाला परकोटा था, जो गुरु के उपदेश की तरह दुर्लंघ्य था। जहाँ अनेक सुन्दर प्रासाद थे—जो सूर्य और चन्द्रमा के समान आभा और तेज वाले थे। बार-बार कितना कहा जाए, हस्तिनागपुर की किससे उपमा दी जाए?

घत्ता—परन्तु एक दोष है कि जो उसमे हरिकुल रूपी महान सरोवर को क्षोभित करने-वाला, दुर्मद, दुर्नय वाला दुर्योधन निवास करता है ॥२॥

नगर को देखकर प्रद्युम्न अपना हर्ष नही रख पाता। बालक पूछता है और महामुनि कहते हैं—

कि धरणिहि [धरणिहु] अगइ कटइयइ ।
णउ-णउ धण्णइ कणिसुब्भइयइ ॥
किर महि-चिहुरभार थिउ उच्चउ ।
णउ-णउ तरु-आराम-समुच्चउ ॥
किह उत्थल्लिवि उयहि परिट्ठउ [अहिट्ठउ] ।
णउ-णउ परिहावलउ परिट्ठिउ ॥
किह हिमवतु महतु महीहरु ।
णउ-णउ पुरपायार मणोहरु ॥
कि हिमगिरि-सिहरइ [हिम] धवलइ ।
णउ-णउ मदिराइ छुहधवलइ ॥
किह मेहउलइ महियल-पत्तइ ।
णउ-णउ गयविदइ मयमत्तइ ॥
किह तरग मयरहरहो केरा ।
णउ-णउ कुरुतुरग-परपेरा ॥

घत्ता—किह थलभिसिणी भावइ थियसियइ सेयसयवत्तइ ।
णउ-णउ ससिधवलइ आयइ दुज्जोहण-छत्तइ ॥३॥

इत्यु अराइ राइ-रण-रोहणु ।
णिवसइ कुरुव राउ दुज्जोहणु ॥

"क्या ये धरती के रोमाचित अग हैं ?"
"नही नही, उठे हुए अग्रभाग वाले धान्य हैं।"
"क्या यह धरती का उठा हुआ केश-समूह है ?"
"नहीं नही, वृक्षो उद्यानो का समूह है।"
"क्या यह समुद्र उछलकर बैठ गया है ?"
"नही नही, यह परिखावलय है।"
"क्या यह महान् हिमगिरि है ?"
"नही नही, यह सुन्दर नगर-परकोटा है।"
"क्या ये हिमगिरि के हिमधवल शिखर हैं ?"
"नही नही, सुधा(चूना) से धवलित मन्दिर हैं।"
"क्या ये मेघकुल धरतीतल पर आ गये हैं ?"
"नही नही, ये मदमत्त गजसमूह हैं।"
"क्या ये समुद्र की तरगें हैं ?"
"नही नही, यह कुरु के तुरगों की परम्परा है।"

घत्ता—"क्या यह स्थल-कमलिनी शोभित है या श्वेत कमल खिले हुए हैं ?"
"नही नही, ये चन्द्रमा के समान धवल दुर्योधन के छत्र हैं ॥३॥

यहाँ पर शत्रु-राजाओ से युद्ध करनेवाला कुरुराज दुर्योधन निवास करता है—

सच्चहे पक्खिउ दुण्णयवंतु ।
तेण विवाहु जोउ आढत्तउ ॥
उवहिमाल वर विक्कम सारहो ।
देसइ णिय-सुय भाणुकुमारहो ॥
मगलतूरु एउ श्रो वज्जइ ।
ण णव पावसे जलणिहि गज्जइ ॥
पुरवरे रक्खावणउ वट्टइ ।
एत्तिउ कुरुजणत्त पयट्टइ ॥
एत्थु विवाहु ताहि असुहावणु ।
होसइ तुह जणिणहे भद्दावणु ॥
त णिसुणेवि कुमार पलित्तउ ।
ण दवग्गि दुव्वाएँ घित्तउ ॥
रिसि सविमाणु मुएप्पिणु तेत्तहे ।
पइसइ कुरुवराय-पुरु जेत्तहे ॥

घत्ता—कामिणि-कामह कामु धुत्तह अब्भतरे धुत्तु ।
जगडइ पट्टणु सव्वु वहुरुविहि रुप्पिणि पुत्तु ॥४॥

सो पण्णत्ति-पहावें वालउ ।
पइसइ हत्थि होइ गयसालउ ॥
मयगल मयमुअत फेडाविय ।
भग्गालाणखभ ओसारिय ॥
पुरे पइसरइ वालु वडुवेसें ।
जोइज्जइ डिभयहि विसेसें ॥
दीहियवाविदुवारइ रुभइ ।
जलु जुवइहि गिण्हहु ण लब्भइ ॥

सत्यभामा के पक्ष का और दुर्नयी । उसने विवाह का योग प्रारम्भ किया है । विक्रम मे श्रेष्ठ भानुकुमार को वह अपनी कन्या उदधिमाला देगा । यह मगल तूर्य बज रहा है, मानो नवपावस मे समुद्र गरज रहा हो। पुरवर मे रक्षा का प्रबन्ध है । यह कुरु की बारात जा रही है, यहाँ उसका अशोभन विवाह होगा और तुम्हारी माता का सिर मूंडा जाएगा । यह सुनकर कुमार भडक उठा, मानो आग को तूफान ने छू लिया हो । महामुनि को विमान सहित वहाँ छोडकर, जहाँ कुरुराज का नगर था वहाँ प्रवेश करता है ।

घत्ता—कामिनियो और कामो का कामदेव, और धूर्तों के बीच मे धूर्त रुक्मिणी का बेटा अनेक रूपो मे सारे नगर से झगडा करता है ॥४॥

प्रज्ञप्ति के प्रभाव से वह बालक हाथी बनकर गजशाला मे प्रवेश करता है और मद छोडते हुए मैंगल गजो को नष्ट करता है । उसने आलान(खूंटे) नष्ट करके हाथियो को हटा दिया । बालक वटु के वेश मे नगर मे प्रवेश करता है । बालको के द्वारा वह विशेष रूप से देखा जाता

सव्वइ भोयणइ आगरिसइ ।
वभणजण अवसण्णइ दरिसइ ॥
दहगुण वणिहि अग्घु वड्ढावइ ।
ण तो बहूरूवहि कड्ढावइ ॥
सो णरु णाहि जो ण खलियारिउ ।
पट्टणि एम करतु दुवालिउ ॥

घत्ता—गउ दुज्जोहणु जेत्थु, करे माहुलिगु ढोइज्जइ ।
तेण वि पुणु सयवार पियमाणुस जिह जोइज्जइ ॥५॥

जसु-जसु ढोयइ कुरुपरमेसर ।
सो-सो भणइ देव एउ विसहर ॥
भडागारिएण ण समिच्छउ ।
देव ण माहुलिगु एँउ विच्छिउ ॥
पुच्छिज्जतु वियारेहि जपइ ।
वडु पडिउ पयडु णउ कपइ ॥
हउ पीयवरजणणे जायउ ।
कण्णत्थिउ तुम्हह घरु आयउ ॥
परिरक्खति अज्जु जइ देव वि ।
मइ परिणेवी अवसे लेय वि ॥
तहि अवसरे दुज्जोहण-राणी ।
उवहिमाल णामेण पहाणी ॥
पेसिय ताए महत्तरि ढुक्की ।

है। वावडी के लम्बे द्वारो को अवरुद्ध करता है। युवतियो के द्वारा जल ग्रहण नही किया जा सकता । उसके द्वारा सारा भोजन खीच लिया गया। ब्राह्मण लोग अप्रसन्न दिखाई देते हैं। भिक्षुको के द्वारा दसगुनी पूजा सामग्री वढवा देता है और नही तो, अनेक रूपो मे निकाल लेता है । वहाँ कोई ऐसा आदमी नही था जिसे तग न किया गया हो। नगर मे इस प्रकार ऊधम करता हुआ,

घत्ता—वह वहाँ गया, जहाँ दुर्योधन था। उसके हाथ मे बिजौरा नीबू था। उसने भी उसे सौ बार प्रिय मानुस के समान देखा ॥५॥

वह कुरु परमेश्वर जिस-जिसको नीवू देता है वह वह कहता, "हे देव, यह विषधर है।" भण्डारी ने भी उसे नही चाहा, वह कहता है—"हे देव, यह नीवू नही है।" विद्वानो द्वारा पूछे जाने पर वह बोलता है कि "मैं वटु पण्डित हूँ और प्रचण्ड हूँ, मैं काँपता नही। मैं पीताम्वर पिता से उत्पन्न हुआ हूँ और कन्यार्थी होकर तुम्हारे घर आया हूँ। यदि देव भी आज रक्षा करते हैं, तव भी मैं अवश्य ही कन्या को लेकर रहूँगा।" उस अवसर पर दुर्योधन की उदधिमाल नाम की प्रधान रानी थी। उसके द्वारा भेजी गयी महत्तरी (उदधिकुमारी) पहुँची।

वम्महेण मूयल्लेवि मुक्की ॥
णउ णीसरइ वाइ परसण्णइ (उ)।
वालु णिरारिउ गुण-णिव्वण्णइ (उ) ॥

घत्ता—खुज्जउ होवि पइट्ठु चडिलेण लेवि वहु ण्हाविय ।
पुणु वरयत्त-छलेण अवहरिवि विमाणि चढाविय ॥६॥

तहिं अवसरे सणज्झइ साहणु ।
रहवर तुरय महागय-वाहणु ॥
दिण्ण तूर विवड्ढिय कलयलु ।
दणु दप्पहरणु पहरण कलयलु ॥
रुप्पिणि-तणए विसम सहावें ।
मोहिउ बलु पण्णत्ति-पहावें ॥
जो-जो ढुक्कइ त त चप्पेवि ।
उवहिमाल कुरुवइहे समप्पेवि ॥
रिसि उच्चइ उहु रुप्पिणिणदणु ।
काइ अकारणे किउ कडमद्दणु ॥
एम भणेवि वेवि गय तेत्तहे ।
पडवराअ-पहाणउ जेत्तहे ॥
रहवर-तुरय-गइद-विमाणेहिं ।
धय-छत्तेहि अणेय-पमाणेहिं ॥
दप्पण-दहि दुव्वक्ख सेसहिं ।
अइहव मगल-फलस-विवेसहिं ॥

कामदेव ने उसे मूक बनाकर छोट दिया। उसकी वाणी नही निकलती, वह सज्ञा से वोलती है। वालक गुणो की अत्यन्त प्रशसा करता है।

घत्ता—वौना होकर प्रविष्ट हुए नाई ने वहू को ले जाकर नहलाया। फिर वर के छल से उपहरण कर उसे विमान मे चढ़ा लिया ॥६॥

उस अवसर पर जिसमे रथवर, तुरग और महागजवाहन हैं, ऐसी सेना तैयार होती है। नगाडे वजा दिये गये। कलकल वढने लगा। दानवो के दर्प का हरण करनेवाली, शस्त्रो की आवाज होने लगी। विपम स्वभाववाले रुक्मिणी के पुत्र ने प्रज्ञप्ति के प्रभाव से सेना को मोहित कर लिया। जो जो उसके पास पहुँचता है उसे उसे चांपकर उदधिमाल कुरपति को सौंपता है मुनि ने कहा—"वह रुक्मिणी का बेटा है। तुमने अकारण मारकाट क्यो की?" यह कहकर वे दोनो वहा गये जहाँ पाण्डवराजाओ का प्रमुख था। रथवर, तुरग और गजेन्द्र और विमानो, ध्वज-छत्रो, अनेक प्रकार के दर्पण, दही, दूर्वा, अक्षत और दीप, अत्यन्त उत्तममगल कलश विशेषो के साथ।

जणमणणयणाणंदजणेरउ ॥
माया-मयकडेण विद्धंसिउ ।
मउर-फुल्लफलपत्तु विणासिउ ॥
कहि वि अणंगु होवि पुरु मोहइ ।
णायरियायण मणु संखोहइ ॥
कत्थवि विज्जु कहि मि णेमित्तउ ।
कत्थवि भुमिदेउ वहुसुत्तिउ ॥

घत्ता—वम्भण सयइं जिणेवि उवइट्ठु णवि अग्गासणे ।
सच्चहे ज घरे रद्धु त घित्तइ णाइ हुयासणे ॥१०॥

भोयणु भुजेवि पाणिउ सोसि वि
तहि अणतु मतु आघोसेवि ॥
खुद्धावेसें पइसइ तेत्तहि ।
रुप्पिणि भवणु मणोहरु जेत्तहि ॥
ताम ताए सुणिमित्तइ दिट्ठइ ।
णेमित्तियहि जाइ उवइट्ठइ ॥
कोइल महुर-मणोहर जपइ ।
अवउ मउरिउ फलिउ पयकउ ॥
सुक्कवावि जलभरिय खणतरि ।
पुत्तागम दिट्ठु सिविणतरि ॥
जायइ खुज्ज पगु-वहिरंधइ ।
रुवगमण सवणच्छि समिद्धइ ॥
ताम पराइउ णयणाणंदणु ।
खुद्धावेसें केसव-णंदणु ॥

उपवन को मायावी मर्कट (वन्दर) ने विध्वस्त कर दिया। उसके मोर, फूल, फल तथा पत्ते नष्ट कर दिये। कही पर वह कामदेव वनकर नगर को मोहित करता है, तथा नगर-स्त्रियो के मनो को क्षुब्ध करता है। कही पर भवनवासी देव, कही पर नैमित्तक और कही पर जनेऊ पहने हुए वहुत से ब्राह्मण।

घत्ता—सैकडो ब्राह्मणो को जीतने के लिए वह अग्र-आसन पर जाकर वैठ जाता है और सत्यभामा के घर मे जो भोजन वनाया गया था उसे जैसे आग मे डालने लगता है ॥१०॥

भोजन कर और पानी सोखकर तथा वहाँ अनन्त मन्त्र की घोषणा कर क्षुल्लक के वेश मे उस स्थान पर प्रवेश करता है जहाँ रुक्मिणी का सुन्दर भवन है। उस अवसर पर उसके द्वारा (रुक्मिणी के द्वारा) अच्छे निमित्त देखे गये, कि जिनका पूर्वकथन ज्योतिषियो ने किया था। कोयल और भी सुन्दर वोली, आम मे वौर आ गये, वह फल गया और पक गया। सूखी वावडी एक क्षण के भीतर भर गयी। सपने मे उसने पुत्र के आगमन को देखा। वौने, लगडे, वहरे और अन्धे रूप, गमन, श्रवण और आँखो से समृद्ध हो गये। इतने मे नेत्रो को आनन्द देनेवाला केशवपुत्र (प्रद्युम्न) क्षुल्लक के रूप मे वहाँ पहुँचा और तुरन्त कृष्ण के आसन पर

आयउ कामवालु हक्कारिउ ।
कोक्कइ गिरि-गोवद्धणधारउ ॥
तहिं अवसरि विज्जापरिवालउ ।
थिउ णारायणवेसें वालउ ॥
गउ सविलक्खु णियत्तिवि हलधरु ।
एत्थु जे तहिं ते मि वे भायहिं ।
मइ वेयारहिं थाएवि मायहिं ॥
एम जणद्दणु कोवे चढाविउ ।
मच्छुडु ढुक्कु कोवि मायाविउ ॥
तूरइ देवि लेहु अक्खत्तें ।
रुधेंवि बधेंवि धरहु पयत्तें ॥
जाम सणज्झइ जायव-साहणु ।
उक्खय पहरणु वाहिय-वाहणु ॥
हय पडपडह पसारिय कलयलु ।
ताव लच्छि-लछिय-वच्छत्यलु ॥

घत्ता—रुप्पिणि लेवि वालु थिउ णहयले भडकडमवद्दणु ।
कहइ महारिसि ताहें इहु माए तुहारउ णदणु ॥१३॥

तो पण्हविय वेवि थण मायहें ।
कठु वेइ णीसारण वायहें ॥
हरससयहो उरत्थलु तिम्मिउ ।
बालें णिय-बलत्तणु णिम्मिउ ॥
लग्गु पओहरे णाइ धणद्धउ ।
तक्खणे णवजुवाण मयरद्धउ ॥

बुलाया गया कामदेव आया । गोवर्धनपर्वत उठानेवाले उसे पुकारते हैं। उस अवसर पर विद्या का परिपालन करनेवाला वालक नारायण के वेश मे बैठ गया। वलराम को लज्जित घूर-कर चला गया। जिस प्रकार यहाँ उसी प्रकार वहाँ भी मतिभ्रम पैदा करनेवाली माया से दो भागो मे स्थित होकर उसने इस प्रकार जनार्दन को आग-ववूला कर दिया । लगता है कोई मायावी आ गया है। तूर्यों को वजाकर शीघ्र उसे अक्षात्रभाव से पकड लो। रौंधकर बाँधकर प्रयत्नपूर्वक पकड लो, जब तक यादवसेना तैयार होती है। हथियार उठा लिये गये, कल-कल प्रसारित कर दिया गया, तब तक जिसका वक्ष लक्ष्मी से अंकित है,

घत्ता—ऐसा योद्धाओ को चकनाचूर करनेवाला कामदेव वालक प्रद्युम्न रुक्मिणी को लेकर आकाश मे स्थित हो गया। तव महामुनि नारद उस (रुक्मिणी) से कहते हैं—"हे आदरणीये, यह तुम्हारा पुत्र है ।" ॥१३॥

तब माँ के दोनो स्तन भर आए, वाणी निकलने के लिए कण्ठ देती है। हर्ष के आँसुओ से उसका उरस्थल गीला हो गया । वालक ने अपना वचपन निर्मित किया, और दूधपीते बच्चे की तरह पयोधरो से लग गया। उसी क्षण वह नवयुवक कामदेव बन गया। तपस्वी (नारद)

पभणइ तवसि पेक्खु परमेसरि ।
जायवगयह भिडतउ केसरि ॥
तहि अवसरे बलु ढुक्को हूयउ ।
णाइ कयते पेसिउ दूयउ ॥
तो सहसत्ति कुमारें पेल्लिउ ।
णिच्चलु मोहिवि थभिवि मेल्लिउ ॥
केण वि कहिउ गपि गोविंदहो ।
दुद्दम-दाणव देह-विमद्दणहो ॥
देव-देव साहण तुह केरउ ।
रण उहि केण वि किउ विवरेरउ ॥

घत्ता—हरि रहे चढिउ तुरतु सारग-विहत्यु धावइ ।
महिहर-सिहरि सचाउ गज्जतु महाघणु णावइ ॥१४॥

दुद्दम-दारुण-दणु-तणु घायण ।
विण्णिवि भिडिय मयण-णारायण ॥
विण्णिवि ण जमहाहिव अथउ ।
विण्णिवि मयरकेउ गरुडद्धउ ॥
विण्णिवि सुरवर-णयणाणदण ।
विण्णिवि रुप्पिणिदेवइ-णदण ॥
विण्णिवि समरसएहि-समत्था ।
कउसुमधणु-सारगविहत्था ॥
विण्णिवि णहयल-महियल-गामिय ।
मेहकूड-दारावइ-सामिय ॥
विहि एक्कु वि ण एक्कु ओवग्गइ ।
विहि एक्कहो वि ण पहरणु लग्गइ ॥

कहते हैं—"हे परमेश्वरी देखो, यादवरूपी गजो से यह सिह लडता है। उस अवसर पर बलराम एकदम पास पहुँचे मानो यम ने अपना दूत भेजा हो, तो कुमार ने शीघ्र उन्हें हटा दिया और मोहित स्तभित कर, निश्चल छोड दिया। किसी ने दुर्दम दानवो का दमन करनेवाले गोविन्द से जाकर कहा, "हे देव देव, तुम्हारे सैन्य को युद्ध मे किसी ने विपरीत-मुख कर दिया है।"

घत्ता—श्रीकृष्ण रथ पर चढकर तुरन्त धनुष हाथ मे लेकर दौडते हैं, मानो महीधर के शिखर पर इन्द्रधनुष सहित महामेघ गरज रहा हो ॥१४॥

दुर्दम और भयकर दानवो के शरीरो का घात करनेवाले मदन और नारायण दोनो आपस मे भिड गये। दोनों ही देववरो के नेत्रो के लिए आनन्ददायक थे। दोनो क्रमश रुक्मिणी और देवकी के पुत्र थे। दोनो सैकडो युद्ध में समर्थ थे, दोनो के हाथ मे कुसुमधनुष और सारग थे। दोनो आकाशतल और महीतल पर विचरण करनेवाले थे। मेघकूट और द्वारावती के स्वामी थे। दोनो मे से एक, एक पर आक्रमण नही कर पाता था। दोनो मे से एक का अस्त्र एक को नही लगता था। इतने मे दोनो के बीच नारद आ गये (और बोले), "हे नारायण, यह

अतरे ताम परिट्ठिउ णारउ ।
एहु णारायण पुत्तु तुहारउ ॥
जो वालत्तणे असुरें हरियउ ।
एउ भणेवि महियलि ओयरियउ ॥

घत्ता—तक्खणे महुमहणेण परिहरिवि घोर समरगणु ।
णिब्भरणेह-वसेण सइ भुएहिं दिण्णु आलिगणु ॥१५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयभूदेवकए पज्जुण्णमिलणवण्णणो
णाम वारहमो सग्गो ॥१२॥

तुम्हारा पुत्र है जिसका अपहरण वचपन मे असुर ने किया था ।" यह कहकर वह धरतीतल पर आ गये ।

घत्ता—मधुसूदन ने उसी क्षण घोर युद्ध-प्रागण छोडकर, परिपूर्ण स्नेह के वश होकर अपनी भुजाओ से उसे आलिगन दिया ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव कृत अरिष्टनेमिचरित मे
प्रद्युम्न-मिलन नामक वारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१२॥

तेरहमो सग्गो

पुरि पइसारियउ परिणाविउ बालउ ।
कुरुवइ - णरवइ - सुअ - उवहिहीमालउ ॥छ॥
णारायण-णयण-मणोहिराम ।
पच्चारिय रुप्पइ सच्चहाम ॥
कहिं गम्मइ बहिणि ण मुवमि अज्जु ।
भद्दावमि सिरु किर कवणु चोज्जु ॥
रक्खहु तुहकेरउ सामिसालु ।
महुसूअण अहवइ कामबालु ॥
अह सभरु भाणुकुमारुपुत्तु ।
भद्दावणु दरिसावमि णिरुत्तु ॥
त वयणु सुणेप्पिणु भणइ भाम ।
पयभगुप्पाइय तिविहु णाम ॥
णियणदण-गव्वणि जइवि जाय ।
किह तुह महे णीसरिय वाय ॥
जो मउ गउ कालतरेण खद्धु ।
आवाय जि कहिं पइ पुत्तु लद्धु ॥
वेयारिय आए तावसेण ।
महु मज्झे वेढिय तामसेण ॥
घत्ता — सच्चउ चिरु गयउ कहिं दीसइ णदणु ।
भामए भामियउ भमे भमइ जणद्दणु ॥१॥

उसे नगर मे प्रवेश दिया गया और कुरुराज की पुत्री बाला उदधिमाला से उसका विवाह कर दिया गया ॥छ॥

नारायण के नेत्रो के लिए सुन्दर रुक्मिणी ने सत्यभामा को ललकारा—"हे बहिन ! तुम्हें आज नही छोडूंगी, तुम्हारा सिर मुडवाऊँगी। इसमे आश्चर्य की क्या बात ? स्वामीश्रेष्ठ मधुसूदन (कृष्ण) कामबाला की रक्षा करें । तुम अपने पुत्र भानुकुमार की याद करो। निश्चित ही सिर का मुंडन दिखाऊँगी।" ये वचन सुनकर सत्यभामा कहती है—"तीन तरह से तुम्हारा वचन भग हुआ है। यद्यपि तुम अपने पुत्र से गर्वीली हो रही हो, फिर भी तुम्हारे मुँह से यह बात कैसे निकली ? जो मर गया और काल द्वारा खा लिया गया, अचानक उस पुत्र को तुमने किस प्रकार पा लिया ? इस तपस्वी (नारद) ने तुम्हे प्रवचित किया है और तुम्हें मुझे भिडा दिया है।"

घत्ता—सचमुच बहुत समय से गया हुआ बालक कहाँ दिखाई देता है ? सत्यभामा के द्वारा घुमाए गये जनार्दन घूमते हैं ॥१॥

परिचिंतिवि णर-सुर-घायणेण ।
सुररिसि-णारउ-णारायणेण ॥
सविणय-गुण-वयणेहिं एम वुत्तु ।
पइ जाणिउ किह महु-णणउ पुत्तु ॥
सयकेय-विसत्थ-जणाभिराम ।
पत्तियइ ण केमवि सच्चहाम ॥
त णिसुणेवि पभणइ अवदचारु ।
जहिंकालि गवेसिउ मइ कुमारु ॥
तहिं कालि पुडरिगिणि पइट्ठु ।
सीमधरसामिउ गपि दिट्ठु ॥
तहिं पउमरहेण रहगिएण ।
विक्कमसिरि रामालिगिएण ॥
पणवेप्पिणु परमजिणिदु-वुत्तु ।
किं कीडउ ण णरु एहु णिरुत्तु ॥
गयणगण-गामिउ गुणसमिद्धु ।
णारायण-णारउ इहु पसिद्धु ॥

घत्ता—वारावइपुरिहिं चक्कवइ जणद्दणु ।
दइववसेण तहो विच्छोइउ णदणु ॥२॥

णिसुणतहो महु परमेसरेण ।
चक्कवइहे अक्खिउ जिणवरेण ॥
धणधण्ण-सुवण्ण-जण-पय-गामे ।
जबूवहे ता सालिगामे ॥

इस वात का विचारकर, मनुष्यो और सुरो का घात करनेवाले नारायण ने विनयगुणवाले वचनो से देवर्षि नारद से इस प्रकार कहा—"आपने किस प्रकार जाना कि यह मेरा पुत्र है? अपने घर मे विश्वस्त रहनेवाले जनो के लिए अभिराम इस पर सत्यभामा किसी भी प्रकार विश्वास नही करेगी।" यह सुनकर सुन्दर नही बोलनेवाले नारद कहते हैं—'जिस समय मैंने कुमार की खोज की थी, उस समय मैं पुण्डरीकिणी नगर मे प्रविष्ट हुआ था और जाकर सीमधर स्वामी के दर्शन किये थे। वहाँ पर पद्मरथ चक्रवर्ती ने—जो विक्रम लक्ष्मीरूपी रमणी का आलिगन करने वाला था—प्रणाम करके परम जिनेन्द्र से कहा—"निश्चय से यह मनुष्य कौन-सा कीडा है?" उन्होंने कहा—"आकाश के आँगन मे गमन करने वाले गुणो से समृद्ध यह प्रसिद्ध नारायण के मुनि नारद हैं।

घत्ता—द्वारावती नगरी मे जनार्दन चक्रवर्ती हैं। दैव वश उनके पुत्र का वियोग हो गया है।" ॥२॥

मेरे सुनते हुए, परमेश्वर सीमधर स्वामी ने चक्रवर्ती से कहा—"जिसमे धन, धान्य, स्वर्ण, जनपद और गाँव हैं ऐसे शालिग्राम मे दो सियार थे। दुर्वात और अनवरत वर्षा और अपनी लम्बी आयु छोडने के कारण दोनो मरकर उसी गाँव मे सोमदत्त और अग्गिला ब्राह्मण

दुव्वाए अविरयपाउसेण ।
सत्तेण विमुक्क महाउसेण ॥
उप्पण्ण-मरेप्पिणु तहिं जि गामें ।
सोमग्गल बभणि-विहुणधामें ॥
पहिलारउ णामें अग्गिभूइ ।
अणुसभउ वीयउ वाउभूइ ॥
वइतंड करिवि सहु मुणिवरेंहि ।
जिणधम्मु लइज्जइ वियवरेंहि ॥
सल्लेहणेण सुरलोउ पत्त ।
तहिं वसेवि पचपल्लइ णियत्त ॥
साकेयपुरिहिं पुणु इब्भ जाय ।
सावयवयसजुय वेवि भाय ॥

घत्ता—पुणभद्द समरे अणियच्छिय पअछलु ।
माणभद्दु-अवर - जिणसासण-वच्छलु ॥३॥

गय सग्गहो सल्लेहणु करेवि ।
विहिं उवहि पमाणेंहि ओयरेवि ॥
गयवरें उप्पण्ण णरिंदपुत्त ।
रिसिगणगुणगणणा-गुणिय-सुत्त ॥
महुकेटभणामे अउलगव्व ।
किय वस विहेय सामत सव्व ॥
वडउर-परमेसर-वीरसेणु ।
विच्छोहउ करिणिहिं जिह करेणु ॥
चदाहणाम तहो तणिय भज्ज ।
महुराए हिय परिहरिवि लज्ज ॥

के घर मे उत्पन्न हुए। पहला नाम मे अग्निभूत हुआ और वाद मे होनेवाला दूसरा वायुभूति। मुनिवरो के साथ वितडावाद (तर्क-वितर्क) करके उन द्विजवरो ने जिनधर्म ग्रहण कर लिया। सल्लेखना के द्वारा उन्होने स्वर्गलोक प्राप्त किया। वहाँ पाँच पल्य प्रमाण निवासकर वे निवृत हुए और साकेत नगरी मे पुन वणिक्पुत्र हुए। वे दोनो भाई श्रावकव्रत से युक्त थे।

घत्ता—पूर्णभद्र युद्ध शब्द और छल नही चाहनेवाला था, दूसरा मणिभद्र जिनशासन में वत्सल भाव रखता था ॥३॥

वे सल्लेखना कर स्वर्ग मे गये, और दो सागर प्रमाण आयु के वाद, अवतरित होकर, हस्तिनापुर में राजा के पुत्र हुए। जिन्होंने ऋषियो के गुणो की गणना सूत्र से की है, ऐसे अतुल गर्व वाले मधु और कैटभ नाम वाले उन्होंने युद्ध करके सव सामन्तो को वश मे कर लिया। वटपुर का स्वामी वीरसेन था। जैसे हथिनी से हाथी विछुड जाए, उसी प्रकार उसकी चन्द्राभा नाम की भार्या को मथुरा के राजा ने लज्जा छोड़कर हरणकर छीन लिया। पति उस अवसर

पइ तावसु तहिं विरहेण जाउ ।
सो धूमकेउ ओयरिवि आउ ॥
महुणा तउ किउ कालतरेण ।
गउ सग्गु पसण्णजिणवरेण ॥
वावीसोवहिसम वसिवि तेत्थु ।
इय मयणु हूय रुप्पिणिहें एत्थु ॥

घत्ता—पुव्वविरुद्धएण असुरेण विओइउ ।
को तहो खउ करइ जो दइवें जोइयउ ॥४॥

खयरवणे तक्खसिल-सिहरि मुक्कु ।
विज्जाहर सवरु ताम ढुक्कु ॥
णियकतहो तेण कुमारु दिण्णु ।
परिवालिउ ता जोवणु पवण्णु ॥
वण्णिज्जइ काइ अणगु तेत्थु ।
णिक्खोहु भरिउ सोहग्गु जेत्थु ॥
णिय मायरि णयणसरेंहि विद्ध ।
अवगणिय पाविणि पावरिद्ध ॥
णहमुहेंहि वियारिय सिहिण वेंवि ।
ण थिय घुसिणकिय कलस वेवि ॥
णरवइ विरुद्धु घल्लिउ कुमारु ।
पावतु लभ मयणावयारु ॥
गउ विउलवावि तहिं भायरेंहि ।
सिल उप्परि विज्जह कायरेंहि ॥

पर विरह से तपस्वी हो गया। वही अवतरित होकर धूमकेतु बनकर आया। जिसमे जिनवर को प्रसन्न किया गया है ऐसे कालान्तर में मधु ने तप किया और स्वर्ग गया। बाईस सागर प्रमाण समय तक निवासकर यहाँ रुक्मिणी से कामदेव के रूप मे उत्पन्न हुआ।

घत्ता—पूर्व से विरुद्ध असुर के द्वारा विमुक्त किये गये, जिसे दैव देखता है उसका क्षय कौन कर सकता है ? ॥४॥

खदिरवन मे तक्षशिला के शिखर पर छोड दिया गया। तब तक कालसवर विद्याधर पहुँचा। उसने अपनी कान्ता को वह कुमार दिया। उसने पाला। वह यौवन को प्राप्त हुआ। उस कामदेव का क्या वर्णन किया जाए कि जिसमे निष्कम्प सौभाग्य भरा हो। नेत्रो के तीरो से उसने अपनी माँ को विद्ध कर दिया। पाप से समृद्ध उस पापिनी की उसने उपेक्षा की। अपने दोनो स्तन नखो के अग्रभागो से उसने विदारित कर लिये जो ऐसे लगते थे मानो केशर से अंकित दो कलश हो ? राजा विरुद्ध हो गया। कुमार को घर से निकाल दिया गया। लाभ प्राप्त करता हुआ मदनावतार वह विशाल बावडी पर गया। वहाँ पर कायर भाइयों के द्वारा

किउ संवरेण सहु संपहारु।
कलि फेडिवि आणिउ मइं कुमारु॥

घत्ता—सग्गहु आयरेवि अवरु वि आवेसइ।
संवुकुमारु-सुउ जंबवइहे होसइ ॥५॥

रिसिवयणेंहि णिच्छयपुत्तकाम।
विण्णवइ णवेप्पिणु सच्चहाम॥
त रयस्सल-वासउ देहि देव।
उप्पज्जइ सो महु पुत्तु जेव॥
पडिवण्णु असेसु जणद्दणेण।
परियाणिउ रुप्पिणिणदणेण॥
जववइहें दिज्जइ णियय-मुद्द।
जिह सच्च ण ढुक्कइ कहवि खुद्द॥
थिय ताहे जि केरउ वेसु लेवि।
पइसारिय महुमह-भवण देवि॥
सुविणावलि-दसण-दोहलेंहि।
उप्पण्णु महतेंहि सोहलेंहि॥
जय-णद-वद्ध-वद्धावणेंहि।
णच्चतिंहि खुज्जयवामणेंहि॥

घत्ता—सबु-समिद्धि गउ मयरद्धय-छदें।
वड्ढय उवहि जिह वड्ढते चदें॥६॥

तो मयर-महद्धय-मायरिए।
णारायण-णयण-मणोहरिए॥

उसके ऊपर शिला रख दी गयी। उसने कालसवर के साथ युद्ध किया। लडाई बन्द कराकर मैं कुमार को लाया हूँ।

घत्ता—स्वर्ग से अवतरित होकर एक दूसरा आएगा और जाम्ववती के शबुकुमार नाम का पुत्र होगा ॥५॥

जिसकी निश्चित पुत्र-कामना है ऐसी सत्यभामा मुनि-वचनो से (प्रेरित होकर प्रणाम) निवेदन करती है—"हे देव, वह रजस्वलावास मुझे दीजिए जिससे वह मेरा पुत्र हो सके।" जनार्दन ने उसकी पूरी बात मान ली। रुक्मिणी के पुत्र ने इस बात को जान लिया। उसमे जाम्ववती को अपनी मुद्रा दे दी कि जिससे क्षुद्र सत्यभामा न पहुँच सके। वह (जाम्ववती) सत्यभामा का रूप लेकर स्थित हो गयी। देवी को श्रीकृष्ण के भवन मे प्रवेश कराया गया। स्वप्नमाला-दर्शन और दोहलो और बडे-बडे सोहलो और जय हो, प्रसन्न रहो, बढ़ो इत्यादि बधाइयो से नाचते हुए कुबडो और बौनो के साथ शम्बुकुमार उत्पन्न हुआ।

घत्ता—कामदेव की प्रकृति के अनुसार शम्बुकुमार वृद्धि को प्राप्त हुआ, उसी तरह जिस तरह चन्द्रमा के बढने पर समुद्र बढता है ॥६॥

तब नारायण के नेत्रो के लिए सुन्दर, कामदेव (प्रद्युम्न) की माँ रुक्मिणी

पट्ठविउ दूउ णियभायरासु ।
कुडिणपुरवर-परमेसरासु ।।
वइअब्भी-माहवि-पढमदुहिय ।
छण छुद्दहीरच्छवि-छाय-मुहिय ।।
विज्जइ महु पुत्तहो वम्महासु ।
तो तेण समच्छरु करिवि हासु ।।
दुम्महेण दुब्वयणहिं दूउ वुत्तु ।
कहो तणिय भइणि कहो तणउ पुत्तु ।।
अवगणिय मायर जणण-जाए ।
को सववहारु समाणु ताए ।।
वरि दिण्ण-कण्ण-चडाललोए ।
ण वि घत्तिय रुप्पिणि-तडिणि-तोए ।।
ज जपिउ जेम बलुद्धरेण ।
त अक्खिउ दूए णिट्ठुरेण ।।
परमेसरि थिय विच्छाय-वयण ।
मायग होवि गय सबुमयण ।।

घत्ता—वुच्चइ वम्महेण कुलजाइ-विसुद्धी ।
परवइ तुम्ह सुय [1]चडालिय इद्धी ।।७।।

चक्कवइहे घरे उच्छलिय वत्त ।
जिह तुह सुय डोंवह पुव्व दत्त ।।
जइ वरु चडालु वि दइवे दिट्ठु ।
तो महु पासिउ जगे को विसिट्ठु ।।

कुण्डनपुर के राजा अपने भाई के पास दूत भेजा कि चन्द्रमा के समान मुखवाली वैदर्भी माधवी की प्रथम पुत्री मेरे पुत्र कामदेव को दी जाए। इस पर मत्सर से भरी और दुर्दमनीय उसने उपहास करते हुए खोटे शब्दो मे दूत को उत्तर दिया—"किसकी बहिन और किसका भाई ? जिसने माता-पिता का अपमान किया हो उसके साथ किस बात का व्यवहार ? अच्छा है, कन्या चाण्डाल-लोक में दे दी जाए, परन्तु उसे रुक्मिणी रूपी नदी के पानी में डालना ठीक नही।" इस प्रकार बल से उद्धत उसने जो कुछ कहा, निष्ठुर दूत ने वह सब जाकर कह दिया। परमेश्वरी रुक्मिणी का मुख कान्ति से विहीन हो उठा। इतने में शम्बुकुमार और प्रद्युम्न चाण्डाल बनकर गये।

घत्ता—कामदेव ने कहा—"कुल और जाति से विशुद्ध होते हुए भी, हे राजन्, तुम्हारी पुत्री चण्डालता से युक्त है।" ।।७।।

चक्रवर्ती के घर मे यह बात फैल गयी कि जिस प्रकार तुम्हारी कन्या पहले चाण्डाल को दी गयी थी, यद्यपि वर चाण्डाल है परन्तु यह दैव के द्वारा दृष्ट है। तो मेरी तुलना मे विश्व मे

---

१ म—चडालपट्टी।

पडु पंडिउ गायणु पुरिस-रयणु ।
सोहग्गें पुणु पच्चक्खु मयणु ॥
तं णिसुणिवि कुविउ वियब्भराउ ।
वरु महुवरु सीलु वहतु आउ ॥
हक्कारहु तलवरु तूरु छिवहु ।
जीवतु वि लहु सूलियहिं सरहु ॥
णिऊवारउ[1] मंति चवति एव ।
तुहु अप्पणु चरियहिं पत्तुदेव ॥
को आयह दोसु अणाउलाह ।
वेयावउ होंति णराउलाह ॥
णारायण-गायण-सावलेव ।
मारणह ण जंति णिरिक्क जेव ॥
आए समाणु किं विग्गहेण ।
जे थिय चक्कवइ परिग्गहेण ॥

घत्ता—चाडुसयइ करिवि आवासु विसज्जिय ।
वाहिरि णीसरेवि ण णवघण गज्जिय ॥८॥

तो जणमण-णयणाणंदणेण ।
वुच्चइ जववइहे णदणेण ॥
हउ आयउ तुम्हह कुलकयतु ।
को चुक्कइ एवहिं महु जियतु ॥
मयरद्धउ पेसिउ जाहि देव ।
तिह करे-करे लग्गइ कण्ण जेव ॥

कौन विशिष्ट है ? मैं चतुर पण्डित गायक पुरुषरत्न हूँ और सौभाग्य मे साक्षात् कामदेव हूँ ।" यह सुनकर विदर्भराज कुपित हो उठा, "मेरा घर श्रेष्ठ है, जो शील को धारण करता आया है । तलवर को बुलाओ, तूर्य बजाओ, जीते जी इन्हे सूली पर चढा दो ।" इस प्रकार कह रहे उसे मन्त्री ने मना किया—"हे देव, इस अवसर पर तुम अपने चरितो को प्राप्त हुए हो । अनाकुल इन लोगो का क्या दोष ? राजकुल के लोग विद्यावाले होते हैं। नारायण के ये गायक अहकार से भरे हुए हैं । मारने से ये चोर की तरह नही जाते । इनके साथ लडने से क्या ? ये चक्रवर्ती के परिग्रह के साथ स्थित हैं ।

घत्ता—सैंकडो चापलूसियाँ करके उन्हे विर्साजित कर दिया गया । वे वाहर निकलकर इस प्रकार बोले जैसे नवघन गरजे हो ॥८॥

तब जन-जन के मन और नेत्रो को आनन्द देनेवाले जाम्बवती के पुत्र ने कहा—"मैं तुम्हारा कुलकृतान्त आया हूँ, इस समय कौन मुझसे जीवित बचता है ?" कामदेव को भेजा गया कि "हे देव, तुम जाओ, और ऐसा करो जिससे कन्या मिल जाए ।" तव कामदेव गया, शम्बुकुमार

१. ब—णिहुवारहु ।

गउ थम्भहु सवुकुमारु थक्कु ।
उप्पाइयउ मायावलु सुसक्कु ॥
चडाललोउ पुरवरे ण माइ ।
जुयखए उत्थलु समुद्दणाइ ॥
अहि-विच्छिय-मडल-कइ-तुरग ।
असयल्लि-रिच्छ केसरि-मयग ॥
खग-खर दद्दुर-मूसय-अणंत ।
धाइय सउवद्दव विद्दवत ।

घत्ता—एत्तिउ हरिसुएण पमुक्कउ पट्टणे ।
कूर-महागहेण णावइ गहघट्टणे ॥६॥

रह जोत्तहो पल्लाणहु तुरग ।
पहरणइ लेहु सज्जहु मयग ॥
सारहि सारथ्यइ रएँवि आय ।
रइ पुणु पप्पड-पिट्ठजाय ॥
महवत्त पत्त जप्पत एव ।
गय गयवर-साल मुएवि देव ॥
मंदुरिय विसूरिय मदुरेहि ।
गलखोटि लद्धउ उदुरेहि ॥
पल्लाणइं गसियइ तुट्टबध ।
कहि अहिणव तुरयाऊ गलद्ध ॥
अण्णेत्तहे होमारभणेहि ।
आवभणि घोसिय बभणेहि ॥
चडाली हूवउ पुरु असेसु ।
कहि णिवसहु णिक्कउ कोपएसु ॥

ठहर गया। उसने अत्यन्त गतिशील माया बल पैदा किया। चाण्डाल-समूह नगर मे नही समा सका, जैसे युग का क्षय होने पर समुद्र उछल पडा हो। साँप, विच्छू, कुत्ता, वन्दर और घोडे, वाघ, रीछ, सिंह और गज, पक्षी, गधे, मेढक और उपद्रव सहित अनेक चूहे विनाश करते हुए दौडे।

घत्ता—कृष्ण के पुत्र के द्वारा छोडा गया मायाबल ऐसा प्रतीत होता था, जैसे क्रूर महाग्रह के द्वारा ग्रहसघर्ष मे डाल दिया गया हो ॥६॥

रथ जोतो, घोडो पर काठी रखो, हथियार ले लो और हाथियो को सजाओ। सारथि सारथीपन रचकर आये। रथ पापड की पीठ वन गये। महावत यह कहते हुए आये, कि हे देव, हाथी गजशाला छोडकर चले गये, अश्वो ने अश्वशालाएँ नष्ट कर दी। चूहो ने गल-खूंटे खा लिये। काठियाँ ग्रसित हैं। उनके वंध टूट गये हैं, कही पर अभिनव अश्व फेंक दिए गये। दूसरी जगह होम को प्रारम्भ करनेवाले ब्राह्मणो के द्वारा, अब्राह्मणी विद्या घोषित की गयी। लेकिन सारा शहर चाण्डालमय हो गया। कहाँ रहें? कौन प्रदेश क्रियारहित है? तडफता हुआ श्रेष्ठि-

कंविउ सेट्ठिहिं विहडप्फडेहिं ।
दाक्ख रुक्खइ खद्धइ मक्कडेहिं ॥

घत्ता—किउ हल्लोहलउ पुरे सबुकुमारें ।
मारिय ण रायसुय कह-कहवि कुमारें ॥१०॥

सवियारइं कामोक्कवणाइं ।
रूवेण णिरुद्धइं लोयणाइ ॥
गेएण वसीकिय कण्ण दोवि ।
थिउ हियवइ हियसामण्णु होवि ॥
सा वि पुच्छइ कलयलु काइ माएँ ।
विण्णविय णवेप्पिणु सुय ताए ॥
यहु गायणु सो चडालु आउ ।
तहो उप्परि कुविउ विदब्भराउ ॥
विहसेप्पिणु वुच्चइ वालिकाए ।
मइ लइय सयवरमालियाए ॥
कहिं तणउ बप्प कहिं तणिय माय ।
महु आयहो उप्परि इच्छ जाय ॥
जो हुउ सो हुउ कुलेण काइ ।
तहिं हियउ जाइ जहिं लोयणाइ ॥
विणिवारहो किं कोलाहलेण ।
किउ पाणिग्गहणु सुमगलेण ॥

घत्ता—जाएवि लग्ग करे गलगज्जिउ बालें ।
रक्खहु रायसुय मइ णिय चडालें ॥११॥

गण चिल्ला उठा । दाखो के वृक्ष वानरो के द्वारा खा लिये गये हैं ।

घत्ता—शम्बुकुमार ने समूचे नगर मे खलबली मचा दी। उसने राजकन्या को किसी प्रकार मारा भर नही ।।१०।।

काम की चेष्टाएँ विकारमय थी। रूप से नेत्र रोक लिये गये। गीत से दोनो कान वश मे कर लिये गये। हृदय मे हृदय सामान्य होकर स्थित हो गया । वह कन्या पूछती है—"हे आदरणीये, यह कोलाहल क्यो ?" उसने (धाय ने) प्रणाम करके निवेदन किया, "वह चाण्डाल ही गायक बनकर आया है, उस पर विदर्भराज कुपित हैं ।" तव वालिका ने हँसकर कहा—"लो स्वयवर माला के द्वारा मैंने ले लिया। कहाँ का पुत्र, कहाँ की माँ ? मेरी इसके ऊपर इच्छा हो गयी है । जो जैसा हुआ सो हुआ, कुल से क्या ? मेरा मन वहाँ जाता है कि जहाँ मेरी आँखें हैं। मना करो, कोलाहल से क्या ? उस सुमगल से मैंने विवाह कर लिया ।"

घत्ता—इस प्रकार उसके हाथ से लगकर वाला ने गर्जना की कि राजकन्या को वचाओ, मैं चाण्डाल के द्वारा ले जायी जा रही हूँ ।।११।।

जइ सक्कहु तो रक्खहु वलेण ।
णिय वहु मइ डोंवे विट्ठलेण ॥
पण्णत्तिपहावें भुयपलवु ।
पज्जण्णु कुमारहो मिलिय सवु ॥
तहे काले कलह-विणिवारएण ।
जाणाविउ रुप्पिहो णारएण ॥
एहु रुप्पिणिणदणु कामएउ ।
तुम्हह जि सहोयर भायणेउ ॥
थोवतरि जायव तहि जि आय ।
अवरोप्परु खेमाखेमि जाय ॥
मेल्लेप्पिणि सव्वेहि किउ विवाहु ।
परिओसिउ हलहरु पउमणाहु ॥
रुप्पिणि णारायण चित्तचोरि ।
जबवइ पउमगधारिगोरि ॥
वसुएव समुद्दविजअ सणेमि ।
जो होसइ सव्वहो जगहो सामि ॥
घत्ता—ज जे विण्णु हलु त जइवि ण मग्गइ ।
दइवें पेरियउ सइ भुएहि लग्गइ ॥१२॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयभूएवकए
जायवकड समत्त ॥१३॥

"यदि हो सके तो सेना से बचाओ, मैं नीच डोम के द्वारा ले जायी जा रही हूँ।" प्रज्ञप्ति के के प्रभाव से दीर्घबाहु प्रद्युम्न शम्बुकुमार से आकर मिला। उस अवसर पर कलह का निवारण करनेवाले नारद ने रुक्मि को बतलाया कि यह रुक्मिणी का पुत्र कामदेव तुम लोगो लोगो का सगा भानजा है। थोडी देर मे यादव लोग भी वहाँ आ गये। उनकी आपस मे कुशल-वार्ता हुई। सबने मिलकर विवाह कर दिया। नारायण और बलभद्र प्रसन्न हुए। रुक्मिणी, जाम्बवती, पद्मा, गान्धारी और गौरी नारायण का चित्त चुरानेवाली थीं। वसुदेव और समुद्र-विजय उन नेमिनाथ के साथ थे जो समस्त विश्व के स्वामी होंगे।

घत्ता—जिसको जो फल दिया जाता है यद्यपि वह माँगा नही जाता, फिर भी दैव से प्रेरित वह स्वय बाहुओ से आ लगता है ॥१२॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयभूदेव द्वारा विरचित
अरिष्टनेमिचरित में यादवकाण्ड समाप्त हुआ ॥१३॥

परिशिष्ट

'रिट्ठणेमिचरिउ' मे आये हुए कतिपय शब्दो के अर्थ

पहला सर्ग

१ जायवकुरुव-कव्वुप्पलु—यादव-कौरव-काव्योत्पल। हरिबलकुलणहयलससहरहो—हरि और बलराम के कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा। यह और आगे के पद 'तित्थकरहो' के विशेषण हैं। कल्लाण-णाणगुणरोहणहो—पाँच कल्याणो [गर्भ, जन्म इत्यादि] ज्ञानो और गुणस्थानो मे रोहण करने वाले। णिरुणिरुवम-चामरयासणहो—अत्यन्त सुन्दर चामरो और छत्रोवाले। या वासत्तणहो—वर्षात्राण > वस्सत्तण > वासत्तणहो। उप्पण्णाहा—उत्पन्न हुई आभा।

२. हरिवंसमहण्णउ—हरिवंश-महार्णव। गुरुवयण-तरंडउ > गुरुवचनतरंड—गुरुवचनरूपी नौका। णायउ—ज्ञात, ज्ञान प्राप्त किया। परिमोक्कलउ—परिमुक्त, खोला। सरसइ—सरस्वती। इंदेण—इन्द्र ने, ऐन्द्र व्याकरण के आदिप्रवर्तक। भरहेण—भरत के द्वारा। रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक और नाट्यशास्त्र के रचयिता। वासें—व्यास के द्वारा। पिंगलेण—पिंगलाचार्य के द्वारा, छंदशास्त्र के प्रवर्तक। भमहें—भामह के द्वारा, प्रसिद्ध संस्कृत समीक्षक। दंडिणिहि—दण्डी ने। बाणेण—बाणभट्ट ने। सिरिहरिसें—श्रीहर्ष ने। चउमुहेण—चतुर्मुख ने, स्वयंभू के पूर्ववर्ती पद्धडिया काव्यशैली के आविष्कर्ता। ससमय—स्वसमय, स्वमत। परसमय—परमत। भडारा—आदरणीय (भट्टारक)।

३ विवरेउ—विपरीत। सुव्वइ—श्रूयते, सुनी जाती है। णारायणु—श्रीकृष्ण। णरहो—नर को, अर्जुन को। महाभारत के अनुसार नर और नारायण एक ही तत्त्व के दो रूप हैं जो अर्जुन और कृष्ण के रूप मे अवतार लेते हैं। परदारजणिया—परदारजनित अर्थात् जो वास्तविक पति से नहीं, अन्य रूपों से उत्पन्न। महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्रज पुत्र थे, अर्थात उनकी विधवाओ से नियोग द्वारा उत्पन्न हुए थे। व्यास के नियोग से ये उत्पन्न हुए। कोंतिहि—कुन्ती के। शूरसेन की पुत्री, राजा कुन्तीभोज की दत्तक कन्या सिद्धिनामा देवी के अंश से उत्पन्न। कुन्ती राजा कुन्तीभोज के यहाँ अतिथियो की सेवा मे नियुक्त थी। सेवा से सन्तुष्ट होकर दुर्वासा ने उसे मन्त्र दिया। कुतूहल वश वह सूर्य का आह्वान करती है। उससे कर्ण की उत्पत्ति होती है। पर [illegible] कन्या [illegible] रहती है। उसके आदेश से यम, वायु और इन्द्र के द्वारा कुन्ती से क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म होता है।

४ एयहँ—इन के द्वारा (शूरसेन के द्वारा [illegible] वंश) हुए। सहोयरियाउ—समान उदर से उत्पन्न बहिनें।

५ [illegible]—[illegible]। परिणिय—परिणीता। [illegible]—[illegible] के

उग्र। भरोड्ढियकंधहो—भार से ऊँचे कन्धे वाले। रयणणिहाणाद्धद्ध-समिद्धी—आधे-आधे रत्नो और खजानो से समृद्ध। अणुरमाणी—समान।

६ ठ्ठियहो—स्थितस्य, उद्यान मे बैठे हुए गधमादन के। दरिसावियपरममोक्खपहहो—जिन्होंने परममोक्ष पथ को प्रदर्शित किया है। णियभवतरइ—अपने जन्मान्तरो को। णियणामुप्पत्ति परपरइ—अपने स्थान उत्पत्ति और परम्परा को। णरइ पडतु धरे—नरक मे पडते हुए (मुझे बचाओ)।

७ दिक्खकिय—दीक्षात किया। महुराहिउ—मथुराधिप। अलत्तउ—अलक्तक। खिज्जइ—खिद्यते। पइधणइ—परिधान। दुब्बलढोर इव—दुर्बल ढोरो के समान। धवल से ढोर का विकास हुआ। धउल>धोल>धोर>ढोर।

८ उवायउ—(उप+याच्)—मनौती। पसेइयउ—प्रस्वेदित। चच्चरु—चत्वर, चबूतरा। णिब्भरणेह-णिबधचित्तु—स्नेह निर्भर निबन्धचित्त।

९ कूवारें—'पाइयसद्दमहण्णव' कोश मे 'कूव' देशी शब्द है जिसका अर्थ है—चुराई हुई चीज की खोज मे जाना। 'कूवार' अपभ्रश काव्यों का विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है। स्व० डॉ० पी० एल० वैद्य के अनुसार 'कूवार' का पर्याय पूत्कार है। पुष्पदन्त के महापुराण मे इसका प्रयोग है—

णरणाहहु कय माहुद्धारें।
ता पयगय सयल वि कूवारें॥

किसी अत्याचार या कष्ट के निवारण के लिए प्रजा सामूहिक रूप मे राजा के पास करुण पुकार के साथ निवेदन करने के लिए जाती है उसे कूवार कहते हैं। उम्मडियइ—उपशोभित। परउल-उत्तियाइ—दूसरे कुल की पुत्रियाँ।

१० कोक्किउ—पुकारा। अलियसणेहें—अलीक स्नेह (झूठे स्नेह)से। उच्चोलिहि—गोद मे। पच्छण्ण-पउत्तिहिं—प्रच्छन्न उक्तियो के द्वारा। सपइ—सप्रति, इस समय। केलीहरए—केलिगृह मे। वायागुत्तिहिं—वचनगुप्तियो के द्वारा। वसुएव-गइदु—वसुदेव गजेन्द्र। विणय-कुसेण—विनयरूपी अकुश द्वारा।

११ समलहणु—समालभन, विलेपन।

१२ मसाणय—श्मशान। णाइय—ज्ञात। महीगहोवसेविय—महीग्रह सेवित, ब्राह्मणो द्वारा सेवित। चियग्गिजालमालिय—चिताग्नि की ज्वालमालाओ से युक्त। णिसायरेक्क-कदिय—निशाचरो के समूह से आक्रान्त।

१३ सत्तच्चिहे—सप्तार्चि के, आग के। घल्लियइ—डाल दिये (क्षिप्तानि)। साहरणइ—साभरणानि, आभूषण सहित। वे कण्णउ—दो कन्याएँ।

दूसरा सर्ग

१ परणेप्पिणु—परिणय, विवाह कर। रण्णय—अरण्य, वन। चदाइच्च-मडल—चन्द्रादित्यमण्डलम्। सलिलावत्तु—सलिलावत। णयणाणदयरु—नयनानन्दकर, नेत्रो को आनन्द देने वाला।

२ सत्थविच्छुलाइ—प्राणि समूह से पूरित। सत्थ—स्वत्व। मच्छ-कच्छ-विच्छुलाइ—

मत्स्यो और कछुओ से व्याप्त। **मत्तहत्थि डोहियाइ**—मतवाले हाथियो से प्रकम्पित। **भी-तरग-भगुराइ**—भय की लहरो से भगुर। **मारुप्पवेवियाइं**—हवाओ से प्रकम्पित। **सूर-रासिवोहि-याइ**—सूर्य की किरणो के लिए बोहित (नाव) के समान। **अहिणववासारित्तुहि**—अभिनव वर्षा ऋतु मे।

३ **कर-पुक्कर-परिचुंबिय पयगु**—हाथ की तरह सूंड से जिसने सूर्य को चूम लिया है (कर-पुष्करपरिचुंवित-पतग)। **दढदतोसारिय-सुरगइदु**—दृढदन्तोत्सारित-सुरगजेन्द्र, जिसने अपने मजबूत दाँतो से ऐरावत को हटा दिया है। **उद्धिरसणभीसणरूवधारि**—पराभव करनेवाला और भीषणरूप धारण करनेवाला। **साहारण**—साधारण जाति का गजेन्द्र। **सो आरणु**—वह आरण, आरण्यक अर्थात् जगली हाथी।

४ **जोह**—योद्धा। **चवइ**—चवति, कहता है। **परिअसे**—परिरमण, आलिगन मे।

५ **कुढे लग्ग**—पीछे लगी। **पडिखलिउ**—प्रतिस्खलित हो गया। **खडतरेण**—क्षणान्तर मे। **ढुक्कु**—पहुँचा। **इदियदप्पदमणु**— इन्द्रियो के दर्प का दमन करने वाले। **छेउ**—अन्त।

६ **खेउ**—खेद। **भूमिदेउ**—भूमिदेव, ब्राह्मण। **दिअवर**—द्विजवर। **पडुरिय-गेहु**—पडुरित गृह, धवलघर। **चप**—चम्पानगरी। **णिरुवम-रिद्धिपत्त**—निरुपम-ऋद्धिपात्र। **भूगोयर-सयइ**—भूगोचरशतानि, सैकडो मनुष्य। **मरट्ट**—अहकार।

७ **ढोइयइं**—ढौकितानि, उपस्थित की गयी। **वल्लइय**—वल्लकी, वीणा। **ततिवज्जु**—तन्त्रिवाद्य, वीणा। **रिसहसारु**—ऋषभसार, श्लेष मे—एकराग और ऋषभ तीर्थंकर। **बहुल-पक्खणहु**—बहुलपक्ष नभ, कृष्ण पक्ष का आकाश। **मदतारु**—मन्द हैं तारे जिसमे (आकाश), जिसके तार (स्वर) मन्द हैं, (वीणा)।

८ **कुसुमाउहसरेहिं**—कामदेव के सरो से। **जीवग्गगुत्तिए**—जीवन को लेनेवाले कठघरेमे। **तरुणीयणथणमद्दणेण**—तरुणीजनो के स्तनो के मर्दन द्वारा। **फग्गुणणदीसर**—फाल्गुन नन्दीश्वर। **सिरिवासुपुज्जजिण-जत्त**—श्रीवासुपूज्य जिन की यात्रा।

९ **लाउण्णजलाऊरिय-दिसोह**—लावण्य जल से आपूरित दिशाओ का समूह। **कउतवें**—कौतुक के साथ। **दुहिय**—दुखिता। **सुए**—सूतेन, सूत के द्वारा। **झायइ**—ध्यायति, ध्यान करता है।

१० **मउम्मत्त**—मदोन्मत्त। **तिलोयग्गामी**—त्रिलोक के अग्रभाग पर चलनेवाले। **सकरेणु**—हथिनी-सहित।

११ **कुमारकएण**—कुमारकृतेन, कुमार के लिए। **पासेअ**—प्रस्वेद। **दाहिणि सुरहि मन्दु**—दक्षिण सुरभित मन्द (पवन)। **माए**—आदरणीये। **सुहसुत्तउ**—सुख से सोते हुए।

तीसरा सर्ग

१ **कड्ढिय**—आकर्षित किया। **थाणहो चुक्की**—स्थान से चूकी हुई। **तक्खय-दिट्ठीव**—तक्षकगीध की दृष्टि के समान। **णियसामिणि अणुलग्गी**—अपनी स्वामिनी के पीछे लगी हुई।

२ **कचणमचमयधह**—स्वर्णमच से मदान्ध। **धयरट्ठवि**—धृतराष्ट्र भी। **करिणि चोइय**—करिणी (हथिनी) प्रेरित की। **पडवतह**—नगाडावादको। **सवणेंदियह**—श्रवणेन्द्रियो को।

३ पडिच्छइ—प्रतीक्षा करती है। सव्वहो चगउ—सबसे अच्छा है। सव्वाहरण-विहूसियअगउ—सभी प्रकारो के गहनो से विभूषित शरीर। चिरचदायणि-चिण्णहो—चिर चाँदनी के चिह्न वाले, चन्द्रमा के।

४ आढत्तमहापडिवघें—महाप्रतिवन्ध प्राप्त करनेवाले। सण्णिय—सकेत किया। उद्दालहो—छीन लो। रयणाइ सभवति महिवालहो—रत्न महीपाल के ही सम्भव होते हैं। यमपहे—यमपथ पर। दप्पुब्भडकक्कमद्दणे—दर्प से उद्धतो को मर्दित करनेवाले। रणरहसणुराए—युद्ध के हर्ष और अनुराग से।

५ परिणिउ—परिणीत। वइवस-महिसंसिगु—यम के भैसे का सीग। उद्धकबधणिवहु—ऊर्ध्व धडो का समूह। दप्पुत्तालहु—दर्प से उद्धत।

६ धूलिवाउ-धूसिराइ—धूलि और हवा से धूसरित। आउहोह-जज्जराइ—आयुध ओघ (समूह) से जर्जर। सोणियव रेल्लियाइ—श्रोणित-अम्ब (रक्त-जल) से प्रवाहित। णित्त-अत-चोभलाइ—जिनकी आतें और शेखर ले जाए गये हैं, ऐसे सैन्य। विवक्खे—विपक्ष मे। सवक्खे—स्वपक्ष में।

७ वड्ढिय-अवलेवेंहि—जिनका अवलेप (अहकार) बढ रहा है। अखचिय-वग्गेंहि—जिन्होंने वल्गा (लगाम) खीच रखी है। आसवारु—अश्वारोही। आयवत्त—आतपत्र, छत्र।

८ पउडे—पौण्ड्र ने। धणु हत्यें—जिसके हाथो मे धनुष है। सधइ—सधान करता है। णायवासु—नागपाश। णिय सत्तुप्पत्तदीणहो—अपना शत्रु उत्पन्न होने के कारण दीन हुए का। लक्खणहीणहो—लक्षणो से रहित का।

९ असरालउ—लगातार। अजस्रतर>अअसर अर>असरार>असराल। "कैसव कहि कहि कूकिए न सोइए असरार"—कबीर। 'र' का 'ल' मे अभेद होता है। कमवहे—क्रम पथ मे, पैरो के रास्ते मे।

१० पेक्खयलोए—प्रेक्षकलोक के द्वारा। णराहिवसत्तें—नराधिप के सत्त्व द्वारा। अक्खत्तें—अक्षात्रभाव से। पिहिविपरिवालें—पृथ्वीपाल ने। समरभरोड्डियखधहो—जिसके कधे युद्ध के भार से उठे हुए हैं।

११ दतवक्कु—दतवक्र। मुच्छपराणिउ—मूर्च्छा को प्राप्त हुआ। मरि-रक्खिय जीयउ—मृत्यु से जिसने अपने जीवन की रक्षा की है। ससल्लु—शल्य सहित। ओणुल्लउ—लुढ़क गया। पहुप्पइ—प्रभवति, समर्थ होता है। जणेरीणदणु—जननी का पुत्र। विहिगारउ—धृतिकारक, धैर्य दिलाने वाला। महारउ—मेरा।

१२ दिण्ण आसि—दत्त आसीत्, दिया हुआ था। छायाभगु—कान्तिमग। सामियाल-अव-चितए—स्वामीश्रेष्ठ के अपचिन्ता करने पर।

१३ सुहद्दाएवि-थणधय—सुभद्रादेवी के पुत्र। भग्गालाणखभ ण मयगल—मानो, ऐसा मदमाता गज जिसने आलानस्तभ उखाड दिया है। सासयपुरवर-गमणमणगिय—दोनो मोक्ष नगर की इच्छा रखनेवाले हैं।

१४ सुहद्दवगरुहपहाणें—सुभद्रा के सबसे बडे बेटे समुद्रविजय ने वैशाख स्थान से तीर मारा। दुहड—द्विखड। पट्ठवइ—प्रेपित करता है। छिण्णइ—छिन्न-भिन्न कर देता है। ढोइउ—उपस्थित हुआ।

१५ बरिससयहो—सौ वर्षों मे। कुकलत्तु—खोटी स्त्री। ओसारिय-पेसणु—जिसने आज्ञा को टाल दिया है ऐसी। कुसुमवासु—कुसुम वर्षा। वर्षा > वस्सा > वास।

चौथा सर्ग

१ परिणेप्पिणु—परिणय कर। हक्कारियइं—बुलाया। परमाइरिउ—परम आचार्य। विज्जत्थिउ—विद्यार्थी। घरघल्लिउ—घर से निकाला हुआ। दणुदुद्दमदेहणिवारणइ—दानवो के दुर्दमदेह का निवारण करनेवाले। सिक्खउ—शिक्षित, शिक्षा दी। वत्त—वार्ता। विहुय—विधूत, कपित।

२. परवेढिउ—घेर लिया। सीसत्तणरुक्खहो—शिष्यत्व रूपी वृक्ष का। परमहलु—परमफल। लद्धपसर्से—प्रशसा प्राप्त करनेवाले।

३ आखंडल मडलणयर-णिहु—इन्द्र के नगर के समान। आलत्तु—आलपितः, कहा। मुद्दविहूसिए—मुद्रा से विभूषित।

४ कलियारउ—कलह करने वाला। सत्थइ—शास्त्रो को। णद्दहे—नद मे। हत्थुच्छलियउ—हाथ उठा दिया।

५ उक्खर्घे—घेरा डालकर या आक्रमण कर। चाउवण्णहलइ—चातुर्वर्ण्यफलानि, चार वर्णों के फल। वीसरइ—विस्मरति, भूलता है। ससपडिवण्णी—स्वसृ-प्रतिवर्णा, अपनी बहिन के समान। गुरुदक्खिणण—गुरु-दक्षिणा।

६ तिण्णाणधरु—त्रिज्ञान के धारी। गभीरमए—गम्भीरता से। धीरमए—धैर्य से। चरियए—चर्या के द्वारा। धू—ध्रुव, निश्चय से।

७ गग्गर-सर—गद्गद स्वर। वणप्फइ—वनस्पति। वणमइदें—वनमृगेन्द्र के द्वारा। पउमवइ-अगएण—पद्मावती के पुत्र (कस) ने।

८ सोहलउ—शोभाकर, सुखकर या सुखवत् (सुहल्ल सोहल)। कलमलउ—बेचैनी। दइयहे—दयिता के। सल्लियउ—पीडित। अब्भत्थियउ—अभ्यर्थित।

९ रइयाजलि—जिसने अजली बना रखी है। थोत्तुग्गिण्णगिरु—स्तोत्र मे जिसकी वाणी निकल रही है ऐसा। पइहरे—पतिगृह मे।

१० धणणदणजोवणइत्तियह—धन, पुत्र और यौवनवाली स्त्रियो का। उयरु—उदर। जिणवर-कहिय—जिनवर के द्वारा कही गई।

११ अल्लविय—अर्पित कर दिया। माए—आदरणीये। महुत्तणउ—मेरा। मत्थासूल जिह—मस्तकशूल के समान।

१२ णारायण-चलणगुट्ठहउ—नारायण के अगूठो से आहत होकर। कयत्थकिय—कृतार्थ किया।

१४ वामयरंगुट्ठ-रसायणेण—वामेतर (दाएँ) पैर के अँगूठे के रसायन से।

पाँचवाँ सर्ग

१ अवक्खए—दिखने पर। रणंगणकखए—युद्ध के प्रागण की आकाक्षा से। चिरावइ—चिरायति, देर करती है। रिट्ठकक्कु—अरिष्टकक, अरिष्ट कौआ। अवइण्णेण—अवतीर्ण होने पर।

२ परचित्तइ—दूसरो के चित्तो को। अलियउ—अलीक, झूठमूठ। णिरायउ—अत्यन्त। ओरुजइ—गरजता है। विउज्झणे—जागने पर।

३ पव्वइयउ—प्रव्रजित। अग्गि-कूवारउ—अग्निकूपार। कूवार का प्रयोग सभी अपभ्रंश कवियो ने किया है। कल्पवृक्षो के नष्ट होने पर प्रजा ऋषभ तीर्थंकर के पास जाकर कहती है

'एक्कदिवसे गय पय कूवारें
देव देव मुग्र मुक्खामारें'—पउमचरिउ, २-८

हिन्दी शब्दकोश कूवार का विकास सस्कृत कूपार से मानते हैं 'पाइअसद्दमहण्णव' में कूवार के तीन अर्थ हैं—जहाज का अवयव, मुख्य भाग या गाडी का अवयव जिस पर गाडी का जुआ रखा जाता है। 'कूवार' का अपभ्रंश साहित्य मे विशिष्ट प्रयोग है, जिसके मूल शब्द का अनुसन्धान अपेक्षित है।

४ खणतरि—क्षणातर मे। समसुत्ति—वज्र। पाडिज्जइ— पाडा जाय, गिराया जाय। धाइया—दौडी। धाईवेसें—धाय के वेश मे। छद्ध—क्षुप्त, डाल दिया। माइउ—समाता हुआ।

५ पण्हुवति—(प्र+स्नु, पन्हाना) पनहाती हुई। माहव-रुहिरपाण—माधव के रक्त का पान। परिचत्तउ—परित्यक्त। वसुधरिहे—पृथ्वी का।

६ उक्कदरु—ऊँचा। समवरु—स्वमन्दिर, अपने घर मे। थोवे काले—थोडे समय मे। णवणवणीय-हत्थु—नवनीत के समान हाथवाले।

७ सदणवेसें—स्यदन के रूप मे। रुदिम-सदाणियचदक्केहि—विस्तीर्णता मे जिन्होंने चन्द्रमा और सूर्य को पराजित कर दिया है। अरिट्ठु—अरिष्ट, वृषभ।

८ भग्गगीउ—भग्नग्रीव। अवरकमेण—दूसरे पैर के द्वारा। कडत्ति—कडकड करके। दणुदेहदलण-अवयिण्हें—दानव की देहदलन मे अवितृष्ण। सरत्तियइ—सात रातो मे।

९ परिवड्ढिय दुद्धइ—जिनका दूध बढ़ रहा है, ऐसे गोप। दाक्खिय-कचुयद्धथण-सिहरु—जिन्होंने कचुकी से आधे स्तन का अग्रभाग दिखाया है। णारायणसियहे-णिसण्णउ—नारायण की श्री मे स्थित। महग्घयरु—महार्घकर।

१० पीयलवासु—पीतवस्त्र। आण—आज्ञा, शपथ। पण्हुउ—प्रस्नुत।

११ अवहत्यु करिवि—अपहस्त कृत्वा, हटाकर। कसहो पासिय—कस की ओर से। छुट्टइ—छूटती है। वसुमइ—वसुमती।

१२ सच्चहामवरद्दत्तणिमित्तें—सत्यभामा के वर के कारण। णिरुत्तओ—निश्चय से।

१३ सज्झसु—साध्वस, भय। वेड्ढि—घेरकर। चिंति—चिन्ता करो।

छठा सर्ग

१ पइज्ज—प्रतिज्ञा। अलिवलय-जलय-कुवलय-सवण्ण—भ्रमर समूह, मेघ और नील कमल के समान रगवाले। कठिणि—कटिनी, मेखला, करधनी। संखोहिय—सक्षुब्ध।

२ विसमलीलु—विषम लीला वाला। फणामणि-किरणजालु—फणामणियों के किरण जाल वाला। विसदूसिय-जउण-जल-पवाहु—विष से दूषित जल का प्रवाह। अवगण्णिय-

पकयणाहणाहु—जिसने विष्णु स्वामी की अवहेलना की है। उरजंगमेण—नाग के द्वारा।

३ णउ णाउ णाउ—न नागः ज्ञातः, साँप मालूम नही पडा। परमचारु—सर्प। फणकडप्पु—फनो का समूह। विहडप्फड—विकल।

४ णियवत्थइ—अपने वस्त्र। णाउ—नाग। गिल्लगड—आर्द्रगड। वीयउ—द्वितीय। महणे—मन्थन होने पर।

५ जायवा वि—यादव भी। णेवावियाइ—ले जाए गये। घल्लावियाइ—डाल दिए गये। मुट्ठियउ—मुष्टिक।

६ बोल्लाविय—वोल का सामान्यभूत। इसके दो रूप हैं—वोल, बोल। 'ल' द्वित्ववाला रूप भी है, वोल्ल बोल्ल। बोल्ल का एक अर्थ गुजरना या अतिक्रमण करना भी है। जैसे—यह फल वोल गया है, यानी सड गया है, खराब हो गया है। सीरा उहु—सीरायुध, हलायुध, बलभद्र। भूभूसिय—भौंहो से अलकृत। कूवारु—पुकार। एक सम्भावना यह है कि कूवार के मूल मे कोक्कार शब्द हो, कोक्कार—पुकार। कोक्कार>को आर>कूवार, पुकार, गुहार।

७ रोहिणि देवइ-तणुरुहेहिं—रोहिणी और देवकी के पुत्रो ने। धोवु—धोबी (धोवक>धोवउ>धोवु)। कियवत्थारूढरयावसाणु—जिसने वस्त्रो मे लगी हुई धूल का अन्त कर दिया है ऐसा (धोबी का विशेषण)। कडिल्लइ—कटिवस्त्र।

८ लायण्णमहाजलभरिय-भुअण—लावण्य के महाजल से जिन्होने विश्व को आपूरित कर दिया है। अप्फोडणरव बहिरिय दियत—आस्फालन के शब्द से दिगन्त को वहरा बना देनेवाले। मयरसचार-महाणुभाव—जो मन्द-मन्द सचलन से महान आशयवाली थी। मडण—प्रसाधन। विहजेवि—विभक्त करके।

९ थोवतरि—थोडे अन्तर से। कवलिज्जइ—ग्रसित किया जाता है। वारणेण—हाथी के द्वारा। खेलावि-वि—खिलाकर। करिविसाणु—हाथी दाँत।

११ सावण्णमेह—सावन के मेघ। अजणपव्वय—अजन-पर्वत। महामइद—महामृगेन्द्र। असियपक्खु—असित पक्ष, कृष्ण पक्ष। कदोट्ट—नीलकमल।

१२ सासहो—शासक का। जस-तण्हहो-कण्हहो—यश के लोभी कृष्ण के। भामरीहिं—मल्लयुद्ध की क्रियाएँ। पीडणेहिं—हाथ की कैंची निकालना, करण, चक्कर खाना, हाथ से चोटें मारना, पकड, पीडन।

१३ अवइण्णु विट्ठु—विष्णु अवतीर्ण हुए। जमलज्जुणरुक्ख-भगु—यमलार्जुन वृक्ष-भग।

१५ कट्टण—काटना। सेलियखभहत्थु—जिसके हाथ में पत्थर का खम्भा है ऐसे, श्रीकृष्ण। महुर—मथुरा। कुसलाकुसलि जाय—एक दूसरे से कुशल समाचार पूछने का काम हुआ।

सातवाँ सर्ग

१ विणिवाइए—विनिपात होने पर। धाहाविउ—जोर-जोर से चिल्लायी। वहलसु-जलोल्लिय लोयणिय—अत्यधिक अश्रुजल से गीले नेत्रो वाली। अबुरुह-समप्पहणयणजुय—कमल के समान प्रभावाले नेत्र युगलवाली।

२ वाइयउ—कहा। महोरय-विस जरणु—महोरग के विष का नाश। भगवइहे—भगवती

के। पाहिलारए जुज्झे—प्रथम युद्ध मे।

४ कालयवणु—कालयवन। कुलिसाहयउ—कुलिशाहत। हरिभयगयउ—सिंहभयगत। पायारु—प्राकार। दिसिअवदिसिहि—दिशाओ-अपदिशाओं मे।

६ एक्कोयरु—एक उदर से उत्पन्न, सहोदर। सण्णिहिउ—तैयार हो गये। महीवट्टे—धरती के मार्ग मे। अकुलीण—धरती मे नही समानेवाला, जो कुलीन न हो, अप्रतिष्ठित। कुलीन—धरती में समाने वाला, प्रतिष्ठित।

७ दारुणह-रणहु—भयकर युद्ध मे। रहु—रथ। समावडिउ—आ पडा। बद्धामरिस—जिसने क्रोध किया है।

८ रणमुहि—युद्ध मे। वधुरवधवेण—बन्धुबान्धवो ने। विसाणु—सीग। पच्चारइ—ललकारता है।

९. सवडमुहु—सामने। सज्झु—साध्य। अक्कमइ—आक्रमति, आक्रमण करता है। अणतें—श्रीकृष्ण द्वारा। कमकर सिरइ—चरण, कर और सिर।

११ पइज्ज—प्रतिज्ञा। चउरगाणीया लकरियउ—चतुरग सेना से अलकृत। मग्गाणु लग्गु—मार्ग मे पीछे लगा हुआ।

१२ चीयउ—चिता। उम्मुच्छियउ—मूच्छित हो गयीं। तहोतणेण भएण—उसके भय के कारण।

आठवाँ सर्ग

१ लच्छिय—लक्ष्मी। कोत्थुहु—कौस्तुभ। उद्दालिउ—उद्दालित, छीन लिया। सरहु—सरभ, वेग से। सरियउ—सरित, हट गया। धणउ—धनद।

२ सउरिदसारजेट्ठ—शौर्यपुर के दशार्ह मे ज्येष्ठ। अद्धुट्ठ—अर्द्धत्रि, साढे-तीन। पहरण-भरियगत्तु—जिसका शरीर हथियारो से भरा है। सक्काएसें—शक्र के आदेश से। उप्पज्जेसइ—उत्पन्न होंगे।

३ सिवएवि गब्भहो सोहण—शिवादेवी के गर्भ का शोधन करने के लिए। सवाहणाउ—वाहनो सहित। पढुक्कयाउ—पहुँची।

४ पाडिक्क—प्रत्येक। चउविसाणु—चार दाँतों वाला। जुत्तपमाणु—युक्त प्रमाण वाला। रिस-रखोलिर पुच्छसडु—ईर्ष्या से पूंछ को हिलाता हुआ बैल। सुरकरि-अहिसारी—ऐरावत पर चलने वाली। दिट्ठ लच्छि—लक्ष्मी देखी।

५ परिमल परिमिलिय चलालि-मुहलु—पराग मे मिले हुए चचल भ्रमरों से मुखर। जलयर-जीव-जम्मु—जलचर जीवो को जन्म देनेवाला। केसरिविट्ठर—सिंहासन। भोइद-धाणु—भोगीन्द्र-स्था[illegible] लोक।

६ फलित्तु[illegible] [illegible]। [illegible]चीरि णियच्छए—चन्द्रमा के दिखने पर। तिणाणी—तीन ज्ञानों से युक्त[illegible] [illegible] से युक्त।

८ मयणइ पद[illegible] जिसके गहस्थल का पार्श्वभाग प्रक्षालित है, ऐसे [illegible] [illegible] की इच्छा से सभी दिशाओ को [illegible] [illegible]र-सौदिसहिउ—सतार्हन सरोह

अप्सराओ के साथ। खणद्धणेण—आधे से आधे क्षण मे।

६ दुदुहिवमालु—दुदुभि का शब्द। सिक्करि-णिणाउ—वाद्य विशेष का शब्द। तिवाय वलएण—त्रिवातवलय के द्वारा। सयसक्करु—सौ टुकडे।

१० वसुयइ—वसुपति, कुवेर। णीसरेंहिं—नरेशो के द्वारा।

नौवाँ सर्ग

१ छत्तियभिसिय-कमडल-हत्थउ—छत्ता, आसन और कमण्डलु जिनके हाथ मे है, ऐसे नारद। जोगवट्टयालकिय-विग्गहु—जिनका शरीर योगपट्टिका से अलकृत है।

२ अवग्गेंहिं—अवग्रहों के द्वारा। अवग्रह पारिभाषिक शब्द है। शरीरप्रमाण दूरी से आकर पूज्य व्यक्ति को प्रणाम करना अवग्रह है। कुंडलपुरहो होतउ—कुण्डलपुर से होते हुए।

६ किरणावलि धिवइ तरुविंदहो—जहाँ वृक्ष-समह से किरण-समूह ग्रहण किया जाता है। मदरु--मदराचल। दारुइकसतोरवियतुरगमु—लकडी और चाबुक से जिसके घोडे उत्ते-जित हैं। सण्णए—सकेत के द्वारा। जउणदण—यदुनन्दन, श्रीकृष्ण।

७ भिच्चु—मृत्य। लउडि—लकुटी। आओसमणेण—आक्रोश मनवाले। यम का विशेपण।

६ णिट्ठइ—विस्थापित किया जाता है। सत्तताल—सप्त ताल। मुद्दावज्ज—मुद्रावज्र, अगूठी। असिगाहिणिहे—असत् को पकडने वाली। वाहिणिहे—वाहिनी को, सेना को।

१० साइउ—आलिंगन। रुप्पिणीविउय सततउ—रुक्मिणी-वियोग-सतप्त, रुक्मिणी के वियोग से सतप्त।

११ पवल्लवलवतइ—प्रवल रूप से बलवान। कुभयलोलोक्खल विंदइ—गडस्यल रूपी चचल ऊखल।

१५. विअब्भाहिव-सुयकतें—विदर्भराज की कन्या के पति, श्रीकृष्ण के द्वारा। ठइज्जइ—स्थाप्यते, स्थापित किया जाता है। परिछिज्जइ—परिक्षीयते, क्षीण हो जाता है। असइ—असती, कुलटा।

१६ णिसि-पहरणु—निशा प्रहरण, निशास्त्र। सयवत्तइ—शतपत्र, कमल। दिणयत्यु—दिन-अस्त्र। पण्णय-पहरणु—पन्नग-अस्त्र। चेइ-णरिंदें—चेदिराज ने। वहुरूवतरिंहिं—अनेक रूपान्तरों मे।

१७ सरकर-परिहत्यें—तीरो और हाथो की क्षिप्रता से। सिरिवत्यें—श्रीकृष्ण के द्वारा। चेइवें—चेदिपतिना, चेदिराज द्वारा। समजालीहूवउ—समज्वालीभूत, ज्वाला के समान हो गया। वइवस-दूवउ—यमदूत। थियउ—स्थित।

दसवाँ सर्ग

२ पडिवारउ—प्रतिवार, फिर से। रुदारविंद—विशाल कमल। तियण-विवज्जियउ—स्त्रीरत्न से रहित। जक्खिलदेवें—यक्षदेव ने। णहयलगामिणिउ—आकाशतलगामिनी।

३. सस—वहिन। लहुयारी—छोटी। रेवइहे—रेवती की। पुण्ण मणोरह—मनोरथ पूरा हुआ।